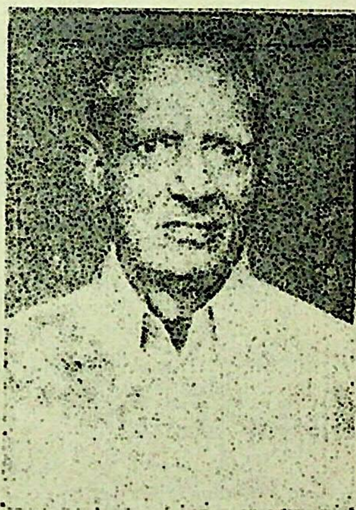
रामायण कथामृत सिंधु





रामायण

कथामृतसिंधु



स्व० जगत नारायण शर्मा एम० ए० 'विरक्त'

प्रकाशक– जितेन्द्र नारायण सिंह 'मुन्ना'
म० नं० N 1/2 A, नगवा, लंका वाराणसी-5

लेखक—स्व० जगत नारायण शर्मा एम० ए० 'विरक्त'
(सर्वाधिकार लेखक के आधीन)

मूल्य—२००

मुद्रक— अपना प्रेस
शीतल दास अखाड़ा, अस्सी-वाराणसी

विषय-सूची



रामभक्त श्री हनुमानजी

भूमिका

'रामायणकथामृतसिंधु' सत्यतः अमृतमय रामकथाओं से परिपूर्ण एक सागर है। जो इस ग्रन्थ के विद्वान तथा अध्यवसायी लेखक श्री जगतनारायण शर्मा के वर्षों किये गये अध्ययन का सुपरिणाम है। इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने विभिन्न स्थानों पर फैली तथा ग्रन्थों में आयी राम कथाओं का अद्भुत एवं सराहनीय संग्रह किया है। कथा के अमृत बिन्दुओं को एक स्थान पर लाकर ग्रन्थ को पठनीय तो बनाया ही गया है साथ ही संग्रहणीय भी बना दिया गया है। सर्वाधिक सराहनीय बात तो यह है कि लेखक ने प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के ग्रन्थों में आये राम कथा प्रसंगों को खोजने के लिए अथक प्रयास किया है। साथ ही बिना किसी खण्डन-मण्डन के उसे ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन करने से यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है। ग्रन्थ में पाठकों को अनेक ऐसी राम कथाएँ मिलेंगी जिनकी जानकारी सर्व साधारण को नहीं है। सच्चाई यह है कि लेखक का हिन्दी से कई गुना अधिक प्रवेश अंग्रेजी तथा बंगला साहित्य में है। वर्षों तक बंगाल में सामाजिक जिम्मेदारी का कार्यभार संभालने तथा बंगला साहित्य एवं अंग्रेजी साहित्य के विद्वानों के सम्पर्क में रहने के कारण लेखक को उनके साहित्य के अध्ययन का अच्छा सुयोग भी मिला। सच है कि ईश्वर जिस

व्यक्ति को जिस कार्य का निमित्त बनाना चाहता है उसे वैसा ही अनुकूल वातावरण भी प्रदान करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्री शर्मा जी को यह सुयोग खूब मिला। ग्रन्थ में उपयुक्त स्थलों पर संस्कृत, हिन्दी, बँगला तथा अंग्रेजी में दिये गये उदाहरणों से उपर्युक्त कथन अपने आप स्पष्ट भी हो जाता है। मैंने इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अवलोकन किया है। उसके आधार पर यह कहना ही उचित होगा कि मुझे एक ऐसे ग्रन्थ को पढ़ने का सौभाग्य मिला जो अपने आप में परिपूर्ण है।

रामचरित मानस में कवि कुल भूषण गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है :—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायण सत कोटि अपारा।।

भगवान श्रीराम के अवतार की एक-दो नहीं अनेक कथाएँ हैं। अत: अनेक भाँति के रामायण भी हैं। 'सत कोटि अपारा' कहकर कवि ने संभवत: यह कहना चाहा है कि राम कथाएँ अपार हैं। अर्थात उनका कोई अन्त नहीं है। बात सत्य भी है। रामायण तो जो हैं सो हैं ही किन्तु लोक साहित्य में, जन जीवन में भी ऐसी-ऐसी राम कथाएँ प्रचलित हैं जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता है। समझ में नहीं आता कि आखिर इन कथाओं को (जो लोक गीतों में भरी गई हैं और जिन्हें हजारों वर्ष से जन जीवन गाता आ रहा है) रचने वाला कौन है ? कौन है वह कवि जो इन्हें रच गया है। गीतों में तो उसका नाम-निशान भी नहीं मिलता। सचाई यह है कि ये रचनाकार नाम के भूखे नहीं थे, बस राम के और राम कथाओं के प्रेमी थे। अतः अपना काम कर गये हैं। ये जो रामकथा पर आधारित लोक गीत ग्रामीण जीवन में प्रचलित हैं उनकी रचना क्या किसी एक कवि ने की होगी ? ऐसा कभी हो नहीं सकता। ये लोक गीत विभिन्न रचनाकारों द्वारा रचे गये हैं जो कागज और लेखनी या लिपियों के मुहताज नहीं थे। बस लोक गायकों द्वारा गाये गये और लोगों ने उन्हें सुना तथा स्वयं गाया। बस श्रुति और स्मृति के सहारे आज तक जन जीवन में जीवित हैं।

राम कथा पर आधारित ये रचनाएँ तथा लोक कथाएँ अधिकतर नारियों द्वारा गायी या कही गयी हैं। ममता से भरा हुआ नारी मन पुरुष से अधिक संवेदनशील होता है। इसी का परिणाम है कि इस प्रकार के लोक गीत और लोक कथाएँ बहुत ही सरस बन पड़ी हैं। श्रोता का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेने की पूर्ण क्षमता है इनमें। साधारण लोगों को जाने दीजिए असाधारण लोगों को भी प्रभावित किया है राम संबंधी लोक साहित्य ने। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास भी प्रभावित हैं इनसे। मानस के प्रारम्भ में ही ऐसे साहित्य की ओर उन्होंने संकेत किया है :—

कीन्ह प्रस्न जेहि भाँति भवानी, जेहि बिधि संकर कहा बखानी।
सो सब हेतु कहब मैं गाई, कथा प्रबंध बिचित्र बनाई।
जेहि यह कथा सुनी नहिं होई, जनि आचरज करै सुनि सोई।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी, नहिं आचरज करहिं अस जानी।
राम कथा कै मिति जग नाहीं, अस प्रतीति तिनके मन माहीं।
नाना भाँति राम अवतारा, रामायण सत कोटि अपारा।
कलप भेद हरि चरित सुहाए, भाँति अनेक मुनीसन गाए।
करिय न संसय अस उर आनी, सुनिय कथा सादर रति मानी।

अब यहाँ यदि कोई यह शंका करे कि गोसाईं जी मात्र अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर रामकथा में रुचि या भक्ति रखने के कारण ऐसा लिखे होंगे तो इस शंका का समाधान यह है कि यदि मात्र ऐसा ही होता तो गोस्वामी जी को 'पार्वती मंगल' अथवा 'राम लला नहछू' जैसी उन पुस्तकों को रचने की क्या आवश्यकता थी जो लोक छन्दों पर आधारित हैं। उन्हें तो बस राम कथा और राम के प्रति भक्ति रखने वाले मन की आवश्यकता थी। जिनमें ये मिलीं उनके वे दास हो गये। कहते भी तो हैं :—

तुलसी जिनके मुखन से, धोखेहुँ निकसत राम।
तिन पायन की पानहीं, मोरे तन की चाम॥

अतः हमें यह मान कर चलना चाहिए कि गोस्वामी जी के मन में राम कथा के प्रति जो भक्ति थी उसकी प्राप्ति के लिए

व्यक्ति या स्थान की शर्त नहीं थी। वे तो ऐसे सभी व्यक्ति तथा स्थान को प्रणम्य मानते थे जिनसे राम का थोड़ा भी लगाव था।

इस ग्रन्थ के लेखक ने भी रामकथाओं का संग्रह किया है। वे जहाँ से भी प्राप्त हुई हैं उन्हें वहाँ से लेकर इस ग्रन्थ में संजोया है। जिसके लिए संग्रहकर्ता की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ा है।

राम कथा के अनेक प्रसंगों तथा पाठान्तरों को एक स्थान पर सहेजना कोई साधारण कार्य नहीं है। इस पठनीय ग्रन्थ को रामकथा का सजा सजाया गुलदस्ता समझना चाहिए।

भाषा :—

ग्रन्थ की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न सर्वबोधमयी है। पाठक भाषा तथा लेखन-शिल्प की दुरूहता में फँसकर उलझ जायँ, ऐसी लेखन शैली का प्रयोग ग्रन्थ में नहीं किया गया है। सरल लिखना कितना कठिन होता है, इस सचाई को सभी लेखक समझ ही नहीं पाते।

काव्यानुराग :—

संस्कृत, हिन्दी, बँगला, उर्दू तथा अंग्रेजी में लिखी गई सरस कविताओं के प्रति श्री शर्मा जी के हृदय में अद्भुत तथा सराहनीय अनुराग है। सर्वाधिक प्रेम हिन्दी में रची गयी, भक्ति रीति तथा आधुनिक काल की कविताओं के प्रति है। ग्रन्थ में अनेक श्लोक, छन्द तथा शेर दिये गये हैं। यह संग्रह भी अपने आप में अत्यधिक आनन्द दायक है। इस ग्रन्थ का अवलोकन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अपनी विद्वत्ता की धाक जमाने के लिए नहीं बल्कि रामकथा के प्रति सहज अनुराग तथा पाठकों के मन में भी राम कथाओं के प्रति प्रेम उत्पन्न करने की प्रवृत्ति के चलते उनका संग्रह किया गया है।

साहित्य जगत में निश्चित रूप से 'रामायणकथामृतसिन्धु' का समादर होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे लोग जो राम कथा के प्रेमी अथवा जिज्ञासु हैं उन्हें इस ग्रन्थ में विशेष आनन्द मिलेगा।

लेखक इस महनीय रचना के लिए प्रणम्य है।

चन्द्रशेखर मिश्र

अस्सी-वाराणसी

—: मंगलाचरण :—

असित गिरि समंस्यात कज्जलम सिन्धु पात्रे,
सुर तरु वर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहित्वा शारदा सर्वं कालम,
तदपि तव गुणानाम पारम न याति ।।

नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्गं सीतासमारोपित वाम भागम् ।
पाणौ महासायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ।।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सन्मितम् ।
पश्येत रामचरितं सर्वं पापै प्रमुच्यते ।।

अतुलित वल धामं हेम शैलाभ देहम,
दनुज बन कृशानुं ज्ञानिनामग्र गण्यम् ।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं,
रघुपति प्रिय भक्तं वातजातं नमामि ।।

मनोजवं मारुत तुल्य बेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं बानर यूथ मुख्यै श्रीराम दूतं सिरसा नमामि ।।

न तत्र सूर्योभातिन चन्द्र तारक नमा विद्युतो भाति कुवोद्ध्यमग्नि ।
तमेवभान्त मनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वं मिदं विभाति ।।
न धाम्नि ते भाँति शशि न सूर्यो न तारका भाँति न विध्यतश्च ।
त्वामभान्त मन्वेवसर्वं विभाति तस्य भाषा सर्वं मिदम् विभाति ।।
नमोस्त्वनन्ताय सहस्त्रमूर्तये सहस्त्र पादाक्षिशिरो रुलाहवे ।
सहस्त्रनाम्नें पुरुषाय साश्वते-सहस्त्र कोटि युगधारिणे नमः ।।
भयानाम भयं भीषणानाम गतिः प्राणिनाम पावनम् पावनानाम् ।
महोश्चैः पदानामनियंत्रित त्वमेकं परेषामपरम् रक्षणम् रक्षणानाम।।

त्वमेव माताश्चपिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।
या ब्रह्मा वरुणेन्दु रुद्र मरुतः स्तुन्वन्तैः दिव्यैः स्ववर्वदः
सांग पदा क्रमोपनिषदैर्य गायन्तियम् सामगाः ।
ध्यानावस्थित तदगते न मनसा पश्यन्तियम् योगिनः ।
यश्यान्तम् न विदुः सुरा सुरगणाः देवायतस्मै नमः ।।
या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्र वस्त्रावृता ।
या वीणा वर दंड मंडित करा या श्वेत पद्मासना ।।
या ब्रह्माच्युत शंकरप्रभृतिभिर्देवै सदा वन्दिताः ।
सामां पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा ।।

यस्याङ्के च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके।
भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट ॥
सोऽयंभूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
सर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभिः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले बनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा॥
सीताराम गुण ग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणायदेव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कम रुद्गणेभ्य ॥
वा. रा. सु. १३/६०
दुर्लभम् त्रयमेवैत् देवा नुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यात मुमुक्षुत्वं महापुरुषश्रयः ॥
ॐ रामाय रामचन्द्राय राम भद्राय बेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतयेनमः ॥
सदूषणापि निर्दोष सखरापि सकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्यां रामायणी कथा ॥
अक्रोधेन जयेत्क्रोधम् असाधुम् साधुनाम् जये।
जयेत्कदर्थम् दानेन जयेत सत्येन चानृतम ॥

× × ×

जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्ध गुजरात मराठा-द्राविड़ उत्कल बंगा
विंध्य हिमांचल यमुना-गंगा उच्छल जलधि तरंगा
तव शुभ नामे जागे-तव शुभ आशीष मागे, गाहे तव जय गाथा
जन गन मंगल दायक जय हे-भारत भाग्य विधाता
जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

× × ×

पतन अभ्युदय-वधुर पंथा युग युग धावति यात्री
हे चिर सारथि-तव रथ चक्रे मुखरित पथ दिन रात्री
दारुण विप्लवमाँझे तव शंख ध्वनि बाजे संकट दुख त्राता
जन गण पथ परिचायक जय हे ! भारत भाग्य विधाता
जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

बन्दे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयज-शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्
शुभ्र-ज्योत्स्नां, पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुर-भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्
त्रिंशकोटि कण्ठकलकल निनाद कराले
द्विंत्रिश कोटि-भुजैर्धृत-खरकरवाले,
के बोले मा तुमि अबले ?
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम् मातरम्
श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम् भूषिताम्
भरणीम् धरणीम् मातरम्

— आप्त वचन —

रामायण का पाठ करते समय भारत के अगणित नर-नारी युग-युग से अश्रु विसर्जन करने को बाध्य होते आये हैं। विश्व कवि श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर जी ने वर्णन किया है—

अलौकिक आनन्देर भार।
विधाता याँहारे देन, तार वक्षे वेदना अपार
ताँर नित्य जागरन, अग्नि सम देवतार दान
उर्ध्व शिषाज्वालि चित्ते अहोरात्र दग्ध करे प्रान।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।
गुह्यम् ब्रह्म तदिदम् वो ब्रवीमि,
न मानूषाच्य श्रेष्ठतरम् हि किञ्चित।
बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
मानव भी श्री राम हैं, अति मानव श्रीराम।
उसी रूप में वे सुलभ, जिसको जिससे काम।

सवार ऊपर मानुष सत्य तार ऊपर कोउ नाई ।
Man is god in Heaven without death,
And God is man on earth Subject to leath,
It is not truth that makes man great,
But it is man that makis truth great.
शक्ले इन्सां में खुदा था, मुझे मालूम न था ।
चांद बादल में छिपा था, मुझे मालूम न था ।
राम चरित अति अमित मुनीसा ।
कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ।
आदम को खुदा मत कहो आदम खुदा नहीं ।
लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं ।
When man walks fowards God runs towards him
राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुये नहीं, सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे ।
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे ।।
राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र ।
पर न हमसे भिन्न है, साकेत का गृह चित्र ।।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।

If God took shape amongst us as one of us, he did so for the purpose of giving us instruction for our parts in life, how to go through it.. ....Ram was an embodiment of the great virtues of human character. He was no doubt a god but he came into the world and so he went through wordly dealings as Will's Lecturers on Ramayan 1st Lecture. By Rt. Hon'ble V. S sriniwas Sastri.

बलिबो देवता करि मानूसेर मोर इन्दे गाने ।
बोलबो तुमार नाम आमि बोलबो नाना छले,
बोलबो एका बोसे आपन मनेर छाया तले ।
बोलबो बिना भाषाय, बोलबो बिना आशाय,
बोलबो मुखेर हंसी दिए बोलबो चोखरे जले ।।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रामायण महाकाव्य के विषय में Signor Gorrasio महोदय लिखते हैं –

Signor Gorrasio in the prefacte to the 10th Volume of his Ramayan has ably proved the Historical basis of that book and has refuted the openion of Professor weber who held that the Story of Ram and Sita was pure allegory.......

Goodness is better thon greatness
Bad name is worse than badman.

वस्तुतः गो० तुलसीदास कृत रामचरित मानस को मात्र भारत में हो नहीं वरन विश्व साहित्य में अति आदर के साथ पढ़ा जाता है। जैसे की० भी० महोदय लिखते हैं—

The most celebrated name in Hindi Literature is undoubtedly that of Tulsidas, whose Hindi Ramayan has had great and deserved fame not only in India but through out the world.

आंग्ल विद्वान श्री मैकडानेल महोदय ने भी इसो प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं।

लगभग कुछ दसेक वर्ष पूर्व डा० हाँयकास ने जावा के किसी ग्राम में एक मुस्लिम को रामायण पाठ करते देख कर पूछा ? आप रामायण क्यों पढ़ते हैं ? उसने उत्तर दिया-एक अच्छा मनुष्य बनने के उद्देश्य से पढ़ता हूँ।

तुलसीकृत रामचरित मानस के विषय में प्रशंसापत्र :—

"THE RAMCHARITA MANAS IS COMMONLY CALLED THE TULSIKRITA RAMAYANA"

It has been described as the Bible of ninety millions of people, and is certainly more familiar to every Hindu of Northern India than Bible is to the average English peasant. There is not a Hindu of Hindostan proper-whether prince or cottar, who does not know its most famous verses and whose common talk is not coloured by it. Its similies have entered even into the language of Indian Muslims, some of whose ordinary idloms, though they know it not, made their first, appearance in this work.

"One of the most striking features of the poem is the writer's capacity for seeing things. More than any other literature, Indian poetry has its stock similies-the lotus, the water-lily, the bee, the moon, and so on. Even the best Sanskrit poems often give the Impression of being largely the work of the closet, not of the open air. Tulasi-Dasa employed the same old similies-he would not have been Indian if he had avoided them-but thousands of others are his own. Little expression-the turn of a sentence or an apt epithet-show how he had seen and studied the world for himself.

It would be a great mistake to look upon him merely as an ascetic. He was a man that had lived. He had been a householder-a word of much meaning to an Indian-and had kaown the pleasures of a wedded life, the joy of clasping an infant son to his bosom, and the sorrow of losing that son ere he had attained his prime. He appealed not to scholars, but to his countrymen as a wbole, the people whom he knew. He had mixed with them, begged from them, prayed with them, shared their pleasures and their yearnings, and on the other hand, he contracted intimate friendships with the greatest men of the emperor's court. All this we find reliected in the pages of his writings.

(Journal of the Royal Asiatic Society 1903, p. 452)

"The practical result of the general adoption of Tulasi's religious attitude has been of the greatest importance to Northern India. In the poet's own time the masses of Hindostan had two religions open to them. One was the crude polytheism of the worship of vilage godlings, the other was the Krishna-cult. The first still extists, but controlled and thurst into the background by Tulasi's faith. What the Krishna cult becomes among the unenltivated masses, the religious fate of Bengal has shown. It with the most passionate, most licentious descriptions of love adventures of Krishna among the herdmaidens. All else is

lost, and there gradually developed unbearable horrors of a Shakti-cult, Upper India has been saved from this by Tulasi-Dasa."

G. A. Grierson

Encyclopaedia of Religion and Ethics. Vol. 12, pp. 471-473

TULASIDAS : THE GREATEST MAN OF THE AGE

Tulasidas was the tallest tree in the 'magic garden' of the mediaeval Hindi poesy. His name will not be found in the Ain-I-Akbari, or in the pages of any muslim annalist. Yet that Hindu was the greatest man of his age in India-greater even than Akbar himself, in as much as the conquest of the hearts and minds of millions of men and women effected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than any or all of the victories gained in war by that monarch. In a latter dated January 30, 1916, written to Vincent Smith, the great historian Sir George Grierson declares...

"I still think that Tulsidas is the most important figure in the whole of Indian literature."

V. A. Smith-Akbar Pages 302-305

"I have never been able to read Ayodhya Kand of Tulsi's Ramayana without tears"

"Some where Tulsidas has said that Rama's name is greater even than Rama himself. It is equally true that Tulsidas and Kamban are greater even than Valmiki. Tulsidas says that Rama incarnate was able to give salvation to but a few but his name remembered and repeated has been the salvation of numberless saints and sinners and will continue to be so till the end of time. Even so. Valmiki brought Rama home only to those who study and know Sanskrit which, as its very name implies, is the Language of the cultured few. Kamban touches the heart and ennobles the mind even of the unilettered. It will be doing a great service if some one were able to render Kamban into Hindi verse and Tulsidas into Tamil verse.

Reading the present translation I felt in many places as if I was reading Tulsidas. The thought, even the exprcssion, was not only similar but the same, although in places the story might have differed. Therein lies India's unity in diversity, hidden but persistent and everilasting.

22nd April, 1955. (Rajendra Prasad.)

Extracts from Foreword by Dr. RAJENDRA PRASAD to "BHARAT MILAP" Written by Rajagopalachari published by the Publications Diyision, Ministry of Information and Boradcosting in may, 1955.

रामायण और महाभारत महाकाव्य भारतवर्ष की अमूल्य सम्पदा हैं। जिसने भी इन दोनों महाकाव्यों का अवलोकन किया है या पढ़ा है वे सब पापों से विमुक्त हो जाते हैं और स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

विलियम मोनियर्स अपनी पुस्तक Indian Epic Poetry में रामायण काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—किसी भी काल या देश में ऐसी सर्वोत्कृष्ट सुन्दर रचना प्रकाशित नहीं हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं। परवर्ती काल में कविवर कालिदास ने भी इस विषय में अति प्रतिभा का परिचय दिया है किन्तु वे भी वाल्मीकि के ऋणी हैं। विलियम मोनियर्स।

संस्कृत में बाल्मीकि रामायण जैसी अनेक रामायण निर्मित हुईं। जैसे—

रघुवंश, रावणवहो, महाबीर चरित, उत्तर रामचरित, जानकीहरण, कुन्दमाला, अनर्घ राघव, बाल रामायण, हनुमन्नाटक, आश्चर्य चूड़ामणि, जैसे महाकाव्य और नाटक रामायण के ही रूपान्तर हैं।

आधुनिक काल में भी राम कथा साहित्य की अनेक पुस्तकों की रचना हुई। जैसे तामिल में कम्ब रामायण, तेलगु द्विपद रामायण, मलयालम रामचरित, कन्नड़ तोरवे रामायण, बंगला में कृत्तिवासी रामायण, हिन्दी में तुलसी कृत रामचरित मानस, बलराम दास उड़िया रामायण, असमिया रामायण, मराठी

भावार्थ रामायण, गुजराती राम बालचरित, ये रामचरित विषयक विशिष्ट ग्रंथ हैं।

आधुनिक विद्वानों में चिन्तामणि विनायक, वैद्य, डी० सी० सेन, श्रीनिवास शास्त्री, के० एस० रामस्वामी, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षित, नील माधव सेन, शिवदास बनर्जी, सी: एन. मेहता, वी० एस० सुखणांकर, सी० शिवमूर्ति, कुमारी पी० सी० धर्मा, एस० सी० सरकार, नवीन चन्द्र दास, टी० परम शिव ऐयर, जे० एन० समदार, एम० वी० किवे, नीलकंठ शास्त्री, वी० राघवन, एम० एन० राय, बी० एच० वडेर इत्यादि। इन्होंने रामायण सम्बन्धी कथा पर अनुसन्धान करके लेख व ग्रन्थ लिखे हैं। फादर कामिल बुल्के की रामकथा हिन्दी साहित्य की वृहत्तर रचनाओं में अति महत्वपूर्ण विशिष्ट स्थान रखती है। इस क्षेत्र में इनका परिश्रम, शोध एवं अन्वेषण स्तुत्य है।

पाश्चात्य विद्वानों में लैसेन, बेवर, म्योर, फ्रेडरिक, मोनियर विलियम्स, याकोवी, हेन्सविट्ज, बाँग मार्टिनर, लुडविग, ल्यूडर्स, डाँल्टमैन, लेभी, हाप्कीन्स, मैक्डानल, बिन्टरनिज, कोथ, पार्जीटर, रूबेन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दो प्रमुख रामायणों यथा बाल्मीकि और तुलसी कृत में अनेक भिन्नताएं हैं। जैसे वाल्मीकि रामायण के अनुसार परशुराम का पराभव राम विवाह के बाद मार्ग में ही दर्शाया गया है। जब कि गो० तुलसीदास ने विवाह के समय रंगभूमि में दर्शाया है। जयन्त की कथा जानकी के मुख से सुन्दरकाण्ड में हनुमान से कहलाई है। वाल्मीकि ने सेतु बांधने पर शिवलिंग स्थापना पर कोई संकेत नहीं दिखलाया है। वाल्मीकि ने युद्ध काण्ड में ही भरत मिलाप, राज्याभिषेक दिखलाया है जब कि गो० तुलसीदास ने उत्तरकांड में वर्णन किया है। जयन्त ने सीता के स्तन पर वाल्मीकि के अनुसार आघात किया, दिखलाया है—वा० रा० पर गो० तुलसीदास ने चरण पर आघात करने का वर्णन किया है। इत्यादि इत्यादि।

स्वस्ति वाचन

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में महर्षि वाल्मीकि द्वारा संस्कृत में रचित महाकाव्य रामायण का अध्ययन या पठन पाठन सुधी या पंडित वर्ग को छोड़कर अन्य भाषा-भाषियों द्वारा बहुत ही कम हुआ है। यह अर्थ, धर्म काम और सर्व प्रकार के शुभ फलों को देने वाला है। महासागर के समान अति गंभीर और श्रुतिप्रिय यह मनोहर महाकाव्य सद्ग्रन्थ तथा आचार संहिता है। यथा—

कामार्थगुणसंयुक्ताधर्मार्थ गुण विस्तरम्।
समुद्रमिवरत्नाढ्यांसर्वश्रुति मनोहरम्॥

वास्तव में भारतवर्षीय उच्चादर्श, उद्यात्त भाव सम्पदा, ज्ञान-भण्डार प्रेम और भक्ति की स्निग्धता इत्यादि का एक आदर्शमय जीवन श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में अंकित किया गया है। वह अति और अपूर्व सुखमय है। महर्षि बाल्मीकि ने उन सभी उच्चादर्शों का दिव्य और पूर्ण परिचय दिया है।

रामायण महाकाव्य की देश और विदेश के सुधीजन, चिन्तन-शील मनोषीगण ने नाना रूप में, नाना दृष्टिकोणों से बहुभांति मूल्यवान समालोचनाएँ की हैं।

संस्कृत भाषा के उपास्य मनीषी भूषण तिलक, शिरोमणि, गोविन्द राज और महेश्वर तीर्थ के अतिरिक्त अन्यान्य राम और रामायण श्रद्धालु भक्तों में अधिकांश ने तद्विषयक जो समृद्ध उपादान, उपकरण, भाषा, छन्द, नाना प्रकार के रीति नीति के साथ अन्वेषित विचार विश्लेषित किये हैं वे अति स्तुत्य हैं।

पंडित जगत नारायण शर्मा ने प्रस्तुत 'रामायण कथामृत सिंधु' ग्रन्थ में अन्यान्यों के दृष्टि कोणों से कुछ भिन्न स्वतंत्र अनु-भूति के आधार पर जो जीवन दर्शन और मीमांसा रामायण के सम्बन्ध में की है वह एक अनमोल उपभोग्य उपहार है। उनके स्वतंत्र विचारों में आधुनिकता की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

ग्रन्थकार से मेरा विगत कई वर्षों से अगाध स्नेह रहा है वह इसलिए नहीं कि वे मेरे भक्त समुदाय में एक अनन्य श्रद्धालु भक्त हैं वरन कलकत्ता नगरी में मेरे चातुर्मास निवास की अवधि में

'हरियाणा' भवन में जो सेवाएँ की हैं एवं रामायण के कुछ पात्रों के चरित सम्बन्धी कभी-कभी जो उनके हमारे सान्निध्य में प्रवचन हुआ करते थे वे अति मधुर भावपूर्ण होते थे जो श्रोताओं को मुग्ध कर देते थे। प्रस्तुत ग्रन्थ उनके अथक परिश्रम का सफल प्रयास है। सन्देह नहीं बल्कि मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ कि सुधी पाठक वृन्द ग्रन्थ का अध्ययन ध्यानपूर्वक निस्पक्ष भाव से करेंगे। अध्ययन उपरान्त लेखक को इस सफलता के लिए अपना हार्दिक आशीर्वचन प्रदान करने में तनिक भी संकोच न करेंगे। मैं भी आशीर्वचन देकर आन्तरिक अभिनन्दन करता हूँ।

रामायण की उत्पत्ति और महत्व के विषय में बृहद्धर्म पुराण (अध्याय २५) में यह वृतान्त पाया जाता है कि सृष्टि कर्ता ब्रह्मा ने सरस्वती को काव्य पुरुष की पत्नी कविता शक्ति होने का वरदान दिया था। यथा—भवतु कविता शक्ति कवीनां वदनेषु।

श्लोक ४३ बृहद्धर्म पुराण

सरस्वती क्रौंच पक्षी के विलाप जनित आह से शोकाकुल बाल्मीकि को देखकर उनके मुख में प्रवेश कर गईं जिससे बाल्मीकि की वाणी से मुखरित श्लोक की सृष्टि हुई—

कविता शक्ति रूपा च विद्या रूपा सरस्वती।
तस्य शोकापनोदाया महर्षिमुंखमाययी॥

प्रचलित रामायण में असंख्य आवृत्तियाँ अलौकिक घटनाएँ और कथा भेद के अतिशयोक्ति वर्णन मिलते हैं।

वाराणसी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संग्रहालय के अध्यक्ष (Curator) श्री राय कृष्ण दास ने प्रचलित रामायण को आधार मानकर बहुत से कथानकों का तथा प्रक्षेपों का पता लगाया है। उनमें से हनुमान का समुद्र लंघन, वृक्ष की ओट से बालिवध और सूर्पणखा का विरूपीकरण उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तावना

ऋषि वाल्मीकि भारतवर्ष के आदि कवि हैं एवं उनके द्वारा रचित 'रामायण' विश्व का एक श्रेष्ठतम महाकाव्य है। 'महाभारतमितिहास रामायणऋषि प्रोक्तम्' रामायण एक उत्कृष्ट महाकाव्य है एवं महाभारत' इतिहास है। महाभारत जीवन की शिक्षा देता है जब कि रामायण जीवनादर्श की शिक्षा देती है। हिन्दूधर्मानुसार श्रीराम विष्णु के अर्धांश अवतारी महापुरुष हैं। भगवान विष्णु हिन्दू धर्म के अनुसार परमब्रह्म माने जाते हैं। इस विषय में कोई सन्देह नहीं। इस महाकाव्य में स्थान स्थान पर मूल सत्य उपविष्ट हुए हैं। सत्य ही परमब्रह्म है। स्वयं कैकेई ने राजा दशरथ को सत्यपालन एवं सत्यादर्श हेतु श्रीराम को बनगमन के लिए बाध्य किया। इस विषय में श्रीराम की उक्ति विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। जैंसा कि अयोध्या काण्ड सर्ग १०६ श्लोक १०-१७ में वर्णन है।

महर्षि वाल्मीकि ने यद्यपि रामचन्द्र को विष्णु का अवतार माना है तथापि उन्हें दोष दुर्बलता ग्रस्त मनुष्य रूप में ही प्रदर्शित किया है। इसी कारण उनमें मानवी दुर्बलता प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है। चन्द्रमा में भी कलङ्क है, किन्तु इस कारण उसके सौन्दर्य मधुर शीतप्रकाश की कोई निन्दा नहीं करता। उसके सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आती। इसी प्रकार श्रीराम के चरित्र में यदि कहीं कोई दोष दीखता है तो महत्वपूर्ण और आदर्शमय चरित्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। केवल श्रीराम ही क्यों, लक्ष्मण, भरत अथवा जगत वन्दनीया सीता का चरित्र भी परम निर्मल-उदात्त है। रावण के चरित्र-गुण कृतघ्नतापूर्ण-दोषयुक्त थे। उसकी दुश्चरित्रता तथा दुष्कर्म के विरोध में उसके मातामह माल्यवान, मन्त्रीगण शुक व सारन, भ्राता कुम्भकर्ण व विभीषण सभी ने हितोपदेश दिया था किन्तु रावण किसी प्रकार भी सीता को वापस करने को सहमत नहीं हुआ।

रामायण की सुमित्रा देवी मानों स्वर्ग की देवी थी। उनके चरित्र की महत्ता देखने से अनायास भक्त जनों का मस्तक झुक

जाता है। इस महिषी नारी ने जब सुना कि लक्ष्मण श्रीराम के साथ वन में जाने के लिए प्रस्तुत हैं तो वे बिन्दु मात्र भी चिन्तित दुखित या बिचलित नहीं हुई। वाह रे नारी जीवन।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

पुत्र के अटूट भ्रातृ प्रेम को देखकर मन ही मन गौरव का अनुभव कर रही थीं। प्रसन्न लक्ष्मण से उन्होंने कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां बिद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्याम टवी विद्धि गच्छ तात यथा सुखम ॥

सुमित्रा ने बार बार कहा—जाओ, जाओ वा. रा. अयो. ४०-८

सुमित्रा अपने पुत्र के बन में जाने के बाद अपना जीवन कैसे बिताए। कवि के वाणी में—

कौशल्या थी स्वार्थहीन, कैकेयी स्वार्थरता थी,
सुधा-सरित के विकट मनों लहराती गरललता थी। किन्तु :—

उन दोनों के मध्य सुमित्रा! तुम रहती थी वैसे,
गंगा - यमुना के संगम में सरस्वती है जैसे।

(कवि जीवनी : साहित्य - रवीन्द्रनाथ)

बाल्मीकि के जीवन वृत्त के विषय में जो साक्ष्य उपलब्ध हैं उनको कवि का वास्तविक जीवन यथा स्वरूप सत्य मानने में सबकी एक सम्मति नहीं है। किस और कैसे आघात से बाल्मीकि का हृदय स्थल आघातित हुआ था जिससे निर्झर काव्य का स्फुरण हुआ। रामायण करुणा रस प्रधान निर्झर है। विरही क्रौंच का शोकार्त्त क्रन्दन रामायण कथा का मूल (श्रोत) है। रावण नें भी ब्याध के समान दो प्रेमियों को विलग कर दिया था। रावण ने जिस विच्छेद की सृष्टि की थी वह आघात मृत्यु के विच्छेद से भी अधिक भयावह था। मिलने के वाद भी उस विच्छेद का मधुर अन्त नहीं हुआ।

राम ने लंका जीतकर राज्य नहीं छीना। लंका का राज्य रावण के भाई विभीषण को और किष्किधा का राज बाली के भाई को समर्पित कर दिया। इस प्रकार आर्य-अनार्यों का अपूर्व

मिलन कराया। उन्होंने एक मात्र अपनी धर्मपत्नी के उद्धार के लिए ही रावण को नहीं मारा अपितु प्रजा रंजन के अनुरोध पर अन्त में अपनी धर्मपत्नी का भी परित्याग कर दिया।

— निवेदन —

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता शाखां बन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' विश्व का आदि महाकाव्य है। रामायण के आधार पर भारतीय भाषाओं में अनेक राम कथा की रचनाएँ हुई हैं। जिनमें प्रमुख हैं—

१-गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस, २-तमिल भाषा में 'कम्बन रामायण', ३-बंगला भाषा में कृत्तिवास रामायण ४-मराठी भाषा में 'राम विजय व भावार्थ रामायण' ५-गुजराती भाषा में गिरधर कृत 'रामायण' इत्यादि।

रामायण या महाभारत को केवल महाकाव्य ही कहना यथोचित नहीं होगा। इनमें ऐतिहासिक सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। रामायण महाभारत भारतवर्ष का चिरकालीन इतिहास है। भारतबर्ष की सनातन चिरकालीन साधना, आराधना और पावन संकल्प ही भारतवर्ष का इतिहास है।

वाल्मीकि रामायण के तीन प्रकार के प्रमुख संस्करण प्राप्त होते हैं। (१) पश्चिमी (२) गौड़ीय बंगाली (३) दक्षिणी बम्बई संस्करण। इन तीनों में अनेक पाठ भेद मिलते हैं। कुछ का कहना है कि इनके अतिरिक्त दो और महत्वपूर्ण रामायणं है और इन सभी पाँचों संस्करणों का अनुसंधान करने पर केवल उनमें ३३ फी सदी श्लोक ही सब में मिलते हैं। यथा मूलरूप से ६६ फीसदी श्लोक उनमें नहीं मिलते।

तपस्या और स्वाध्याय में निरत, शब्द ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ और मुनियों में प्रमुख नारद से वाल्मीकि ने पूछा—

'मुनिवर'! वर्तमान समय में इस भूमण्डल में सर्वगुण सम्पन्न

महापुरुष कौन है ? आग्रह पूर्वक पूछता हूँ। मेरे कौतुहल को निवृत्त करें ?

तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदाम् वरम्।
नारदं प्रति प्रपच्छ बाल्मोकिर्मुनि पुंगवम्॥
वा. रा. १-१-१

कोअन्वस्मिन्साप्रतं लोके गुणपानकश्च वीर्यवान।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवावे दृढ़ व्रत॥ वा. रा. १-१-२

इस समय संसार में गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्य-वक्ता और अपने में दृढ़ व्रत पुरुष कोन है ? बा. रा. १-१-२

चरित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु कोहितः।
विद्वानकः समर्थञ्चकश्चैक प्रिय दर्शनः॥ वा.रा. १-१-३

सदाचार से युक्त, सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर जीत्रद्वान, सामर्थ शाली और देखने में सबसे सुन्दर पुरुष कौन है ?

उत्तर में देवर्षि नारद ने कहा—

हे महर्षि बाल्मीकि !

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुनेलक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्त श्रुयतां नरः॥
वा. रा. १-१-७

जो जो गुण आपने गिनाए हैं, उनमें बहुत से एक ही पुरुष में दुर्लभ हैं फिर भी उनसे युक्त मनुष्य को मैं बताता हूँ।

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मामहावीर्योद्युतिमान्धृतिमान्वसी॥ वा.रा. १-१-८

इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न और लोक में प्रसिद्ध सर्वगुण सम्पन्न पुरुष 'राम' हैं। वे मनोनिग्रही, असाधारण पराक्रमी, कान्तिमान, धैर्यवान और इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं। संक्षेप में देवर्षि नारद ने राम के सर्व गुण सम्पन्नता का वर्णन किया। नारद द्वारा वर्णित यही संक्षिप्त रामायण है।

यह रामचरित आख्यान अति पावन, पाप नाशक है। यह पुण्य फलदायी है। जो भी इसका पाठ करेगा, वह पाप मुक्त हो जायेगा।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदेश्च सन्मितम् ।
यः पठेद् राम चरितं सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।।

देवर्षि नारद महर्षि वाल्मीकि को रामचरित वर्णन करके आकाश मार्ग से स्वर्गलोक चले गए। महर्षि बाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज को साथ लेकर जान्ह्वी नदी के संगम तमसा नदी के किनारे स्नानार्थ चले गये। वहीं पर विचरण करते समय महर्षि बाल्मीकि ने क्या देखा कि एक व्याध ने मिथुनावस्था में क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर पक्षी का बध कर दिया। क्रौंच पक्षी की हत्या से मादा पक्षी क्रौंची अति करुण स्वर में विलाप करने लगी। व्याध का यह निष्ठुर कर्म देख और क्रौंची का करुणाजनक विलाप सुनकर महर्षि के हृदय में दारुण हृदय विदारक दया का संचार हुआ। उसी शोकावस्था में उनके कंठ से निम्न श्लोकबद्ध वाणी मुखरित हुई—

मां निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम गमः शाश्वती समाः।
यत क्रौच्न मिथुनादेकमवधीकाम मोहितम् ।।

वा. रा. १-२-१५

कवि कुल गुरु कालिदास लिखते हैं—.

निषाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापदायतशोकः।

निषाद के वाण से विद्धपक्षी के देखने से जिसका (महर्षि बाल्मीकि शोक श्लोक में परिणित हो गया और उनकी वाणी से जो श्लोक मुखरित हुआ वही आदिम श्लोक है।

जिसके सेवन से बने पामर नर-शिरमौर।
रामरसायन से सरस है न रसायन और।।

महाभारत में भी इसी आशय का वर्णन मिलता है।

अन्वयं मयशस्यम् त्व मनुतिष्ठें भारत।
कोहि विद्वन्मृगम् हन्याच्चरन्तम् मैथुनम् बने ।।

महाभारत आदि ११७/२७

टीकाकार गोविन्दराज जी भी इससे सहमत हैं कि यद्यपि मृग, पक्षी प्रभृति व्याध द्वारा वध करना उपयुक्त धर्म युक्त है, किन्तु रति सम्भोग की अवधि में ऐसा करना धर्म विहित सर्व प्रकार

सर्जित है। क्रौंची के वियोग जनित करुणा जनक विलाप से दुखित दयार्द्र मुद्रा में महर्षि वाल्मीकि ने शोक में बधिक निषाद को श्राप दे बैठे। 'हे निषाद! तुम चिरकाल पतित रहोगे। क्योंकि तुमनें काम मोहित मिथुनावस्था में जोड़े में से एक पक्षी का बध करके महापाप कर्म किया है।' श्राप देने के तुरन्त बाद महर्षि को अति चिन्ता और ग्लानि हुई। यह क्या? इस क्रौंच पक्षी के शोक में कातर होकर मैंने श्राप देकर क्या अनर्थ कर डाला।

यही पद्य युक्त मुखरित बाणी 'श्लोक' नाम से ख्यात हुई। शिष्य भरद्वाज ने गुरु वाल्मीकि के मधुर छन्दमय श्लोक का हार्दिक अनुमोदन किया जिससे वाल्मीकि मुनि अति आनन्द विभोर हो उठे। शिष्य भरद्वाज सहित महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम को लौट आए। उसी समय महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ब्रह्मा आ पहुँचे। वाल्मीकि ने श्लोक ब्रह्मा को सुनाया। ब्रह्मा नें कहा—तुम्हारा यह वाक्य 'श्लोक' नाम से ख्यात होगा। तुम रामचरित की श्लोक बद्ध रचना करो।

यच्चाप्य विदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिद्य भविष्यति॥
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायण कथा श्लोकेषु प्रचरिष्यति॥

वा. रा. १-२-३५, ३६, ३७

जब तक संसार में सभी पर्वत और नदियाँ विद्यमान रहेंगी तब तक तुम्हारी रचित रामकथा का प्रचार रहेगा। तुम और तुम्हारा काव्य अमर रहेगा।

हे मुनि पुंगव! जो कुछ भी तुम्हें नहीं मालूम है वे सभी तुम्हें मालूम हो जायेंगे। तुम्हारे इस काव्य का कोई भी वर्णनांश मिथ्या नहीं होगा। तुम्हारी यह रचना चिरकाल तक पृथ्वी पर अमर रहेगी और तुम भी अमर रहोगे। यहाँ आदेश देकर ब्रह्मा अन्तर्ध्यान हो गए। महर्षि वाल्मीकि योगासन लगाकर ध्यान मग्न हो गए। महर्षि अपने योग बल व दिव्य दृष्टि से सकल वृत्तान्त देख लिए।

वाल्मीकिगिरि सम्भूता रामसागर गामिनी ।
पुण्यातु भुवनम् पुण्य रामायण महानदी ।।

वाल्मीकि रूपी पर्वत से उद्भूत जो रामायण रूपी महानदी रामरूपी महासागर में जा रही है, वही पुण्य महानदी भुवन को पवित्र करे ।

प्रस्तुत पुस्तक में रामायण के कथित प्रसंगों में यदा-कदा कथानक भेद, चारित्रिक गुण-दोषावली, औचित्य-अनौचित्य, कृत्यों, शंकाओं, विचित्र कथानकों का समावेश और उनके समाधान की समीक्षा करने का प्रयत्न किया गया है । वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस में बहुत से कथानक परवर्ती काल में कथाकारों ने जोड़ दिये हैं जैसे श्री सी० भी० वैद्य महोदय अपनी पुस्तक The Riddle of the Ramayan में संकेत किया है :—

Till about 7th Century A.D. the Ramayan was not divided into Cantos or Sargas at all but into chapters or Adhayayas.
The Ramayan was not at all a Sarga Bandha Kavya in Bhavabhuti's days.

In the first Sarga Valmiki asks Narad who was then the best of kings as if he did not know about Rama. Further he says to Sita in the Uttarkand that he knew her father-in-law Dasaratha, Either the first or the Second is a subsequent interpolation. Again in the Kiskindha Kanda first says that he does not know the abode of the evil Rakshasa (Ravan) nor his prowers, nor his family !

"And yet further on Sugriva gives a detailed description of the whole world to the Search parties sent by him and therein describes Lanka it self mentioning the fact the country belonges to Ravana ! Even Kabandha extols sugriva's Knoe-ledge of all the places inhabited by Rakshasas."

इन कथनों में विलकुल भेदाभेद है ।

Sri Vaidya says "Rama-appears to have had many wives.

Kalidas and later poets mention that he had one wife only, probably this has been put in by later compiler.

The Ramayan dose not represent that a bridge of floating stones was built a cross the sea betwoen Rameshwar and Ceylon.

The Story of Shanta and Rishya Shringa is an addition.

The Story of the crow and its eye having been struck Through is interpolated.

Another grave inconsistancy is the mention of the Pandyas by Sugriva in the geography of the world.

And yet with indigestible exaggeration it is represented that Ram reigned for 11000 years. Dasaratha is represented to have reignrd 60,000 years though Dasaratha himself curiously enough admits that the ordinary length of a human life was 100 years.

How could there be a golden deer, or how could Rakshasa, even if he is cannibal, have ten heads and twenty arms? How could monkey leap accross a strait which is ateast a hundred miles in breadth or two human beings only with the assistance of monkeys overcome every obstacle and destroy a whole nation of cannibals?

यह कि भवभूति के काल ख्रिस्ताब्द सातवीं शताब्दी तक रामायण सर्गों में विभक्त नहीं हुई थी।

रामायण रचना

परवर्ती काल में रामायण में काफी क्षेपक जोड़े गए।

DYNAMICES OF RAMAYAN सीता हरण

रावण ने जिस सीता का अपहरण किया वे वास्तविक सीता नहीं थी। इन्द्र ने वास्तविक सीता के वदले दूसरी स्त्री को सीता के एवज में कुटी में बैठा दिया था।

रामायण में वास्तविक सत्य घटनाएँ कितनी हैं, रूपक या nature myth कितने हैं, वाल्मीकि वास्तव में राम के समकालीन थे कि नहीं—ये समस्याएँ विचारणीय हैं।

तुलसीदास व कृत्तिवास प्रभृत कविगण वाल्मीकि का यथावत अनुसरण नहीं करते। अनेक कथानक पुराणादि ग्रन्थों से लिए गए

हैं। यद्यपि राम अवतारी पुरुष थे परन्तु वाल्मीकि ने—उन्हें सुख दुखादि रूप में ही मनुष्य जीवन सदृश्य वर्णन किया है। वस्तुतः वाल्मीकि रचित रामायण में अनेक कथानक उपन्यास सदृश्य प्राप्त होते हैं।

जैसे राम भरत कैकेयो व सुमित्रा को छोड़कर लक्ष्मण प्रिया उर्मिला को वन में साथ क्यों नहीं ले गए जब कि १४ वर्ष तक उर्मिला का अपने प्राण प्रिय पति से साक्षात्कार होना असम्भव था। सोचने का विषय है। महाभारत में प्रायः सभी प्रमुख कथानकों या घटनाओं का विस्तृत रूप में उल्लेख मिलता है, रावण वध के बाद सीता के लंका से प्रत्यागमन और अयोध्या लौट आने का वृत्तान्त है किन्तु सीता के निर्वासन और पाताल प्रवेश का उल्लेख नहीं है। यथा रामचरित मानस में भी कथानक भेद कम नहीं है। महाभारत में वर्णन है कि अर्जुन ने युधिष्ठिर के विरुद्ध दोषारोपण करते हुए कहा है कि जिस प्रकार राम ने छिप कर बाली का बध किया और उससे उनकी उज्ज्वल कीर्ति पर धब्बा लगा है वैसे ही आप पर भी द्रोणाचार्य के छल कपट से बध और मिथ्या प्रचार से दोषारोपण हुआ है।

महाभारत युद्ध में द्रोण का जिस छल कपट के द्वारा युधिष्ठिर से मिथ्या घोषणा करवा कर मारा गया उसके विरुद्ध अर्जुन कहते हैं—

चिरस्थास्यति चाकीर्ति त्रैलोक्ये सचराचरे।
रामे बालि बधाद्द्वै देवं द्रोणे च निपातिते।।

रामायण कथा

वाल्मीकि का जीवन वृत्त

साधारणतः भारतीय एवं विदेशी इतिहासज्ञ और साहित्य-कारों का सर्वसम्मति मत है कि रामायण की रचना आदि कवि वाल्मीकि ने की है। त्रेतायुग में ऋषि-मुनि प्रायः वनों में रहते थे। उसी युग में वाल्मीकि मुनि का जन्म हुआ था और उन्होंने ही रामायण महाकाव्य ग्रन्थ की रचना की।

वाल्मीकि ने रामचरित का वर्णन किया है और गोस्वामी तुलसीदास तथा केशवदास ने भी रामचन्द्र की कथाएँ लिखी हैं। विषय एक है रूप भी एक है, तीनों ने महाकाव्य की ही रचना की है परन्तु उनमें भेद प्रत्यक्ष है और उसका एक मात्र कारण है उनकी अपनी पृथक-पृथक अनुभूति, दृष्टिकोण तथा श्रद्धा और भक्ति की विचार धारा।

अतः रामायण का परिचय देने के पूर्व महर्षि वाल्मीकि के जीवन वृत्त का परिचय देना आवश्यक है। रामायण की रचना के बहुत पूर्व वाल्मीकि रत्नाकर नाम के एक दस्यु थे। वह अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण वन में निरीह पथिकों की हत्या करके, उनके सामान लूटकर करते थे। उन्होंने जितना जघन्य पाप कर्म किया उसकी कोई गणना नहीं। अन्त में जब रत्नाकर का अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंच गया तो ब्रह्मा और नारद गृहस्थ ब्राह्मण का छद्म वेश बनाकर रत्नाकर के समक्ष उपस्थित हुए। रत्नाकर उन्हीं का वध करने को उद्यत हो गए। ब्रह्मा ने रत्नाकर से कहा— "हे भाई! तुम जो यह निरीह नर हत्या कर रहे हो उसका अन्तिम परिणाम क्या होगा, कभी विचार किया? इतने पाप का फल तुम अकेले कैसे भोग सकोगे?" रत्नाकर ने कहा – 'हम अकेले ही क्यों भोग करेंगे। इसका भोग तो कुटुम्ब के सभी लोगों को करना होगा।" ब्रह्मा ने हँसकर कहा—"ऐसा भी कभी हो सकता है? ये जो जो पाप कर्म तुम कर रहे हो उनका पूरा फल तुम्हीं को भोगना पड़ेगा।" रत्नाकर क्रोधित हो उठे और बोले – "ऐसा कदापि नहीं होगा। कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य को उसका फल भोगना ही होगा।" ब्रह्मा ने कहा—"यह सम्भव नहीं जान पड़ता। अच्छा! तुम जाकर अपने घर के प्रत्येक प्राणी से पूछ आओ कि वे क्या तुम्हारे दुष्कर्मों के फल के भागी बनेंगे?" रत्नाकर ने कहा—"हम घर पूछने जाँय और तुम अपने प्राण बचाकर भाग जाओ तो। ब्रह्मा ने कहा—"जब तुमको इतना भी मेरा विश्वास नहीं है तो तुम हमको वृक्ष मे बाँध कर चले जाओ। घर से पूछ कर आओ और यदि तुम्हारी ही बात सत्य हो तो तुम हम लोगों को हत्या कर डालना"। यह युक्ति रत्नाकर को बहुत अच्छी लगी। रत्नाकर दोनों मुनियों को एक

पेड़ में बाँध कर घर गया। घर जाकर माता, पिता पुत्र इत्यादि सभी कुटुम्बियों से पूछा—जिस तरह हम पाप कर्म करके धन लाते हैं और तुम लोगों का भरण पोषण करते हैं, क्या उस पाप के भागी तुम लोग भी बनोगे या नहीं ?" घर के सभी सदस्यों ने रत्नाकर को साफ उत्तर दिया कि "हम लोगों का पालन-पोषण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अपने कर्त्तव्य (कर्म) का फल तुम स्वयं भोगो। हमसे उससे क्या लेना-देना।"

परिवार के किसी भी सदस्य ने फल-भोगना स्वीकार नहीं किया। यह उत्तर पाकर रत्नाकर को बड़ा ही शोक और संताप हुआ। अपने पाप कर्मों की चिन्ता करते हुये ब्रह्मा के पास आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा। "आप निश्चय कोई महापुरुष हैं। आपने यदि मुझ पर इतनी दया की है तो आप मेरी मुक्ति का भी कोई साधन बता दीजिये, नहीं तो मेरा कल्याण नहीं होगा।"

ब्रह्मा ने कहा—"धैर्य धरो, कुछ भय नहीं, तुम अपनी मुक्ति हेतु राम नाम का जप करो, इसी से तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायगे।" रत्नाकर ने उसी समय राम नाम जप करना आरम्भ कर दिया। किन्तु उन्होंने इतनी नर हत्या की थी कि उनके मुख से राम नाम शब्द निकल ही नहीं पाता था ? पापी के मुख से पवित्र राम नाम जल्दी निकलेगा भी कैसे ? ब्रह्मा ने उनको उपदेश देते हुए कहा—"अच्छा तुम मरा मरा जपना आरम्भ करो, ऐसा करते करते अन्त में तुम्हारे मुख से राम राम का उच्चारण होने लगेगा।"

ऐसा कह कर ब्रह्मा अन्तर्ध्यान हो गए। इस घटना के पश्चात रत्नाकर घर नहीं गये। वहीं पर राम नाम का निरन्तर जप करने लगे। जप करने में इतने लीन हो गए कि उनका बाहरी ज्ञान क्या, अपनी शरीर की भी सुध बुध न रही। उनके सिर की जटा इतनी लम्बी हो गयी कि उस पर दीमक (वल्मीक) का पहाड़ जैसा ढेर लग गया। इस घोर तपस्या करने से वे डाकू रत्नाकर से ऋषि बाल्मीकि हो गए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

तब से वे महर्षि वाल्मीकि बोले जाने लगे। ऋषित्व लाभ करने के बाद एक दिन वाल्मीकि नदी में स्नान करने जा रहे थे। जैसा कि पूर्ण परिच्छेद में वर्णन किया गया है एक दिन नदी के किनारे उन्होने दो पक्षियों का एक जोड़ा काम मोहित भाव में देखा। कुछ दूर से एक ब्याध ने पक्षी के जोड़ में से एक का अपने तीर से वध कर दिया। एक के मर जाने के बाद दूसरा पक्षी शोकार्त होकर विलाप करने लगा। सहसा पक्षी के विलाप से दुखित होकर महर्षि वाल्मीकि व्याध को श्राप दे बैठे। उस समय शोकाकुल अवस्था में महर्षि वाल्मीकि की वाणी से वही श्लोक प्रस्फुटित हुआ—

मां निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम अगमः सास्वतीसमाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधि काम मोहितम्॥
वा० रा० वा २-१५

व्याध को श्राप देने के बाद वाल्मीकि को अति ग्लानि हुई। हाय! यह मैंने क्या अनर्थ कर डाला! शोकावस्था में संस्कृत भाषा में काव्य रूप में सर्व प्रथम जो वाणी मुखरित हुई उसका ही नाम हुआ—काव्य।

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥

सर्व प्रथम दुःख जनित आघात के कारण वाल्मीकि मुनि के मुखारविन्द से निम्नलिखित प्रथम श्लोक मुखरित हुआ।

मां निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम् अगमः सास्वतीसमाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधि काम मोहितम्।

वाल्मीकि रामायण के पाठक वाल्मीकि काव्य से जिस जीवन चरित की सृष्टि करते हैं वह वाल्मीकि के प्राकृत जीवन की अपेक्षा अधिक सच्चा है। क्रौंच के आघात के कारण वाल्मीकि का हृदय व्यथित हो गया था और काव्य का अमृत निर्झर फूट निकला था। विरही क्रौंच का शोकार्त क्रन्दन रामायण की कथा के मर्मस्थल में

गूँज रहा है। रावण ने भी व्याध के समान दो प्रेमियों को अलग कर दिया है। रावण ने जिस विच्छेद को उत्पन्न किया था वह मृत्यु के विच्छेद से भी अधिक दर्दनाक और भयानक था मिलन के बाद भी उस विच्छेद का प्रतिकार नहीं हुआ।

इस अभूतपूर्व घटना के कुछ दिन बाद देवर्षि नारद वाल्मीकि मुनि के तपोवन में गए। परस्पर कुशल मंगल पूछने के पश्चात नारद ने पूछा—हे मुनिवर! यह जो श्लोक आप द्वारा मुखरित हुआ है उससे स्पष्ट आभास मिलता है कि आप एक महाकाव्य की रचना करेंगे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप किसी देवता के जीवन व कीर्त्ति का अवलम्बन करके महाकाव्य की रचना करेंगे।

महर्षि वाल्मीकि ने नतमस्तक होकर देवर्षि नारद से कहा—"नहीं, नहीं, मनुष्य चिरकाल से देवता का गुणगान करता चला आ रहा है। मनुष्य जो कुछ भी स्तुति करता है वह देवता ही के निमित्त करता है।" वाल्मीकि ने देवर्षि नारद से नम्र निवेदन करते हुए कहा—"हे देवर्षि नारद! आप मुझे ऐसा मनुष्य बतावें जिसका चरित्र लोकोत्तर हो। सर्व गुण सम्पन्न, देवतुल्य, निष्कलंक हो" नारद ने कहा—"हाँ! मैं ऐसे सर्वगुण सम्पन्न निर्मल नर चन्द्रमा का नाम बतलाता हूँ, वे हैं दशरथ नन्दन श्रीराम।" वाल्मीकि ने कहा—"हाँ! मैंने भी राम की कीर्त्ति को सुना है, परन्तु उनका सम्पूण जीवन चरित्र कौन बतायेगा?" देवर्षि नारद ने कहा—"आप इसकी चिन्ता न करें। ब्रह्मा के आशीर्वाद से आपको स्वतः सब चरित्र मालूम हो जायगा।" इसी समय ब्रह्मा जी ने स्वयं प्रकट होकर महर्षि वाल्मीकि से कहा—"मुने! आप रामायण रचना आरम्भ करें, आपको मैं दिव्य दृष्टि देता हूँ जिससे आपको जो कुछ नहीं भी ज्ञात है वह भी ज्ञात हो जायेगा। समग्र संसार आपके ग्रन्थ की अपेक्षा कर रहा है।" ब्रह्मा और देवर्षि नारद के प्रस्थान करने के बाद महर्षि वाल्मीकि ने निज कल्पनानुसार उन्हीं लोकोत्तर महापुरुष श्रीराम के जीवन वृत्त पर महाकाव्य की रचना का शुभारम्भ कर दिया।



महर्षि वाल्मीकिजी



वाल्मीकि की जय

वाल्मीकि मुनि जब रामायण महाकाव्य की रचना आरम्भ करने जा रहे थे उसी समय उनके आश्रम में महर्षि वशिष्ठ और ब्रह्मा विश्वामित्र आ पहुँचे। राक्षसेन्द्र रावण का किस प्रकार संहार होगा। तीनों महर्षि गण रामायण की रचना के पूर्व ही ऐसी परियोजना बना चुके थे। ऐसा परामर्श करके जब महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र अपने-अपने आश्रम को जाने लगे तो उन्होंने महर्षि बाल्मीकि से अनुरोध किया कि रामायण में राम को धर्म चूड़ामणि महापुरुष के रूप में प्रकाशित किया जाय। इसी समय विश्वामित्र ने वाल्मीकि से अनुरोध किया कि साथ ही साथ राम को राजा, कुशल राजनीतिज्ञ, पराक्रमी योद्धा, धर्मनिष्ठ, प्रजा रक्षक, विश्वबन्धु, सर्व गुण सम्पन्न महामानव के रूप में भी प्रदर्शित किया जाय। वाल्मीकि मुनि महर्षि बशिष्ठ और विश्वामित्र का आदेश सुनकर अत्यन्त चिन्ता में पड़ गये। सोचने लगे इतना नर संहार करने के बाद किस प्रकार राम को धर्म चूड़ामणि, सर्व गुण सम्पन्न के रूप में प्रकाशित करें। अन्ततः महर्षि बशिष्ठ और विश्वामित्र के समझाने पर उनकी शंका दूर हुई और कहा—एवमस्तु ! ब्रह्मर्षि गण ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। ऐसा ही वर्णन करेंगे। आप ऋषि गण की कृपा और आशिर्वाद से राम के चरित्र का ऐसे ही पुरुष रूप में चित्रण करुँगा जिसका अनुकरण करने से मानव युगों-युगों तक, सब काल में, आनन्द पायेंगे।

महर्षियों ने भी राम को अपनी-अपनी विद्या की शिक्षा देकर सर्व प्रकार समर्थ और सुयोग्य बना दिया। वाल्मीकि ने रामायण की रचना सम्पन्न करने के बाद उसके अनुमोदन हेतु पूरी रचना को सर्व प्रथम विश्वामित्र और वशिष्ठ को सुनाया। रचना की काव्य शैली, जीवन वृत्त और कथानक सुनकर मुनि वृन्द अति हर्षित हुए और वाल्मीकि मुनि की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। 'धन्य हो

वाल्मीकि, तुम्हारी जय हो।" विश्वामित्र ने राम से कहा—"हे राम अब तुम तीनों गुरुओं से सर्व प्रकार की पूर्ण शिक्षा पा चुके हो, अब तुम परिपूर्ण हो। तुम्हारा सब संकल्प मनोरथ सफल होगा। महर्षि वाल्मीकि तुम्हारे काव्य गुरु हैं, महर्षि वशिष्ठ धर्म शास्त्र कुल गुरु हैं और मैं तुम्हारा शस्त्र गुरु हूं।" महर्षि ! विश्वामित्र ने राम से कहा—'हे राम ! मेरी गुरु दक्षिणा तो देते जाओ।" यह सुनकर राम आश्चर्य चकित रह गये। अरे ! यह क्या ? क्या महर्षि विश्वामित्र को राज्य चाहिये, धन-सम्पदा चाहिये ? फिर मेरे पास उनको देने योग्य वस्तु भी क्या है ? विश्वामित्र ने राम को चिन्तित देखकर कहा—"हे राम ! चिन्ता मत करो। मुझे राज्य का लोभ नहीं, धन सम्पदा की आवश्यकता नहीं। महर्षि वशिष्ठ तुम्हारे धर्म गुरु हैं, महर्षि वाल्मीकि तुम्हारे काव्य गुरु हैं और मैं तुम्हारा शस्त्र गुरु हूँ। किसी को भी तुम्हारे धन धान्य, राज्य सम्पदा की लालसा नहीं है जो कुछ भी ऋषिगण ने किया है वह लोक कल्याणार्थ और तुम्हारे अभ्युदय के लिए किया है। ऐसा करो जिससे धर्म की रक्षा हो, अधर्म का नाश हो, सत्य की जय हो, लोक कल्याण हो, विश्व में शान्ति हो, देवों का उद्धार हो, आर्य भूमि आर्यावर्त सदा के लिये अनार्य राक्षसों के अत्याचार से मुक्त हो जाय।" राम ने नत मस्तक होकर विनीत भाव से निवेदन किया—"महर्षिगण ! आपकी बात मुझे समझ में नहीं आई। अन्ततः मेरे पास कौन सी ऐसी वस्तु है जिसे आपके चरणों पर अर्पण करके गुरु को प्रसन्न कर सकता हूँ। क्या यह सम्भव है ?" विश्वामित्र ने नम्रता पूर्वक कहा—"हे राम ! सुनो—जैसा कि मैंने पुर्वोक्त आदेश दिया है वैसा ही करो जिससे आर्य संस्कृति का सम्पूर्ण विश्व और मानव जाति में विस्तार हो और सूर्य कुल की मर्यादा की वृद्धि हो "कृणवन्तो विश्वमार्यम्" राक्षसों का निर्वन्स हो जाय। यही महर्षिगण की गुरुदक्षिणा है। राम ने कहा—गुरुदेव ! ऐसा ही करूंगा। आपकी कृपा और आशीर्वाद चाहिये।" महर्षि वाल्मीकि की जय हो।

वाल्मीकि की घोर तपस्या से ब्रह्मा द्रवित हो गए। प्रत्यक्ष वाल्मीकि के समक्ष आकर उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने कहा—"वाल्मीकि

सुनो ! यदि तुम स्वर्ग जाना चाहते हो तो अभी मैं तुम्हें स्वर्ग भेज देता हूँ। महर्षि वाल्मीकि ब्रह्मा का चरण पकड़ कर कहने लगे— नहीं, नहीं, सृष्टि कर्त्ता, देवाधि देव ! मैं महापातकी हूँ, नराधम हूं, मैंने जो जो दुष्कर्म किये हैं उनका कोई प्रायश्चित्त नहीं, वे कदापि क्षम्य नहीं हो सकते। दयामय ! फिर मैं स्वर्ग जाकर क्या करूँगा। मैं स्वर्ग का अधिकारी हो भी कैसे सकता हूं। दीनानाथ ! अभी भी मनुष्य जाति में भेदभाव है, अभिमान है, गर्व है। अभी मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्री हूं, मनुष्य में भेद है। यही अहम् भेदाभिमान की भावना जब मनुष्य जाति के हृदय से निकल जायेगी तभी मनुष्य जाति का उद्धार होगा। तभी मैं आपके आदेश का पालन करूँगा। अभी क्षमा करें। यह कहते हुए वाल्मीकि मुनि विलाप करने लगे।" ब्रह्मा स्तम्भित हो उठे। कहने लगे—"हे वाल्मीकि ! तुम अपना मस्तक उठाओ और मेरी तरफ देखो।" वाल्मीकि क्या देखते हैं कि उनके सम्मुख साक्षात हिरण्य गर्भ, शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी नारायण भगवान विष्णु विराजमान हैं। विष्णु ने अपना विराटरूप धारण कर लिया। इस सगुणात्मक विराटरूप में वाल्मीकि ने क्या देखा ?

अनेक बाहूदर वक्त नेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतो अनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यम् न पुनस्त वादि पश्यामि विश्वेश्वरविश्वरूपम् ॥
किरीटिनं गदिनं चक्रणिं च तेजो राशिं सर्वं तो दीप्ति मन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-दीप्तान द्युतिम प्रमेयम् ॥
गी० ११/१६१७

हे समस्त विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों सहित अनन्तरूपों वाला देखता हूं। हे विश्वरूप ! आपका न अन्त देखता हूं, तथा न मध्य और न आदि को ही देखता हूं। हे विष्णौ ! आपको मैं मुकुटधारी, गदा और चक्र युक्त, प्रकाशमान तेज पुंज प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश्य ज्योतिर्मय देखने में चतुर्दिक अति गहन अप्रमेय स्वरूप देखता हूं। हे विश्वेश्वर ! आप को बारंबार नमन है। ब्रह्मा ने कहा—"हे मुनि श्रेष्ठ ! देखो, सभी मनुष्य समान हैं, सभी भाई-भाई हैं, और सभी एक हैं, जाओ,

पृथ्वी में इसी साम्यता, भ्रातृभाव और एकता का गुण गान करो। तुम अमर हो, तुम्हारी जय हो।'

बाँगला कवि कृत्तिवास वर्णन करते हैं—

मरा मरा बलिते आइलो राम नाम।
पाइलो सकल पाप दस्यु परित्रान॥
तुलारासि जेमन अग्नि ते भस्म हय।
एक बार राम नाम सर्व पाप क्षय॥

ब्राह्मण-क्षत्री संघर्ष

आदि काण्ड के आरम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि ने जिज्ञासा की थी—

समग्रा रुपिणी लक्ष्मी कमेकं संश्रिता नरम्।

ऐसा कौन नर पुरुष है जिसके अधीन समग्र लक्ष्मी। नारद ने उत्तर में कहा—

देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम्।
श्रुयतां तू गुणैरेभिर्यो युक्ता नर चन्द्रमाः॥

ऐसा सर्व गुण सम्पन्न पुरुष तो देवताओं में भी देखने में नहीं आता। तद्यपि ऐसे गुण किस नर चन्द्रमा में हैं वह मैं सुनाता हूं। मनुष्य ही अपने गुणों से देवत्व को प्राप्त कर लेता है। वह हैं दशरथ नन्दन श्रीराम-रामायण युग में विशेषरूप से दो वर्णो, ब्राह्मण तथा क्षत्री वर्ग का महत्व था। ब्राह्मण वर्ग गोमेध, अजमेध और अश्वमेध यज्ञों में पशु बलि के घोर समर्थक थे जिसका क्षत्री वर्ग घोर विरोध करता था जिस कारण ब्राह्मण वशिष्ठ और क्षत्री विश्वामित्र में अनेक वर्षो तक आपस में विरोध और शत्रुता व्याप्त रही। एक दूसरे को समाप्त कर देना चाहते थे। यज्ञों तथा

अन्य अनेक अनुष्ठानों में ब्राह्मण वर्ग पशु बलि का अनुष्ठान करते थे। जो क्षत्री वर्ग को कदापि स्वीकार नहीं था। यही कारण है कि सहस्राजुंन ऋषि जमदाग्नि के गाय को जो बलि देने के लिये रखी गई थी, उसे बलि से बचाने के लिये बलपूर्वक छीन ले गये थे। पर जमदाग्नि के पुत्र परशुराम जो ब्राह्मण थे, सहस्राजुंन का बध कर पुनः गाय को छुड़ा लाये। इस बलि प्रथा को लेकर शताब्दियों तक ब्राह्मण-क्षत्री वर्ग में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा है—

"So in India we get glimpses of the kshatra ideal gathering round its champions for a determined and prolonged crusade against its opponents. Proofs are not wanting that often these opponents were the Brahmins"

"It is said in the Bhagavata Puran that the Kshatriya King, Kartavirya, stole a sacrificial cow from Yamadagni's a priest of the same Bhrigu clan, which was the cause of the class war led by Parasuram, the son of Yamadagni, against the whole kshatriya community. Unless the stealing of the sacrificial cow stands for an idea, such a crusade of the Brahmin against the entire kshatiya class misses its meaning. It really indicates that among a great body of kshatriyas there arose a spirit of resistance against sacrificial rites, and this gave rise to a fierce conflict between the two communities. It has to be noted that the series of battles begun by Parasuram, the descendant of Bhrigu, at last came to their end with his defeat at the hands of Ramchandra.

आंग्ल इतिहास पार्जिटर महोदय लिखते हैं—

"Much has been written about early contests between Brahmin and kshatriyas and has noticed most of them, but the subject may be discriminated more properly thuss, Contests were of these kinds, first where a king slighted, quarelled with, injured or killed a Brahmin, secondly, where he is a kshatri, arrogated the right to perform religious

Ceremonies himself and so disputed or infringed Brahmani privi leges, thirdly, where a Kskatri sought to become a Brahmin, the vast majority of Contests were of the first kind."

ब्राह्मण-क्षत्रो का संघष :—

विश्वामित्र की कल्पना :—

धिग्बलं क्षत्रियवलं ब्रह्मतेजोवलं बलम्।

अनार्यों के प्रलोभन में आकर अथवा बहकावे में कोई ऋषि अपने ही जनों के विरुद्ध युद्ध करने को उद्यत हो जाते थे। जैसे धनुष भंग होने के पश्चात रावण ने ही परशुराम को राम के विरुद्ध भड़काया था।

विश्व कवि रवीन्द्र नाथ का कहना है--प्रारम्भ में ब्राह्मण-क्षत्री वर्ग का संघर्ष पशुवलि प्रथा को लेकर था। पार्जीटर महोदय का कहना है—यह संघर्ष या स्पर्धा ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों का अपमान करने, क्षात्र धर्म को हीन् समझने, क्षत्रियों द्वारा पौरोहित्य कर्म काण्ड करने अथवा क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के कारण बहुधा हुआ करता था जिसकी परिणति राम युग में हुई।

राम युग पूर्व के ब्राह्मण क्षत्री अपनी-अपनो वर्ण वर्ग श्रेष्ठता को लेकर संघर्ष किया करते थे। एक वर्ग का दूसरे वर्ग से यौन सम्बन्ध करने की प्रथा को ब्राह्मण वर्ग हीन और निन्दित समझता था। ऐसा सम्वन्ध निषिद्ध था। इस प्रकार चन्द्रवंशी क्षत्री सोम का गुरु बृहस्पति की पत्नी के साथ दुराचरण और निषिद्ध यौन सम्भोग करने के कारण ब्राह्मणों ने सोम की घोर निन्दा भी की थी। मनु द्वारा यज्ञ किये जाने से इला की उत्पत्ति, शिव-पार्वती के परिणय का भी ब्राह्मणों ने निन्दा की थी। ब्राह्मण वशिष्ठ का विश्वामित्र क्षत्री, क्षत्री राम का परशुराम से, विष्णु का ब्राह्मण भृगु से, कृष्ण का द्रोणाचार्य से जमदग्नि ब्राह्मण का कार्तवीर्य सहस्रार्जुन क्षत्री का संघर्ष सर्व विदित हैं। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि राम युग के पूर्व ब्राह्मण क्षत्रों का आपसी वैमनस्य कितना कटु था। इन्हीं कतिपय कारणों से क्षत्री ब्राह्मणों

का विरोध करते थे। उस युग से कृष्ण युग तक प्रायः जितने ही विशिष्ट धर्मोपदेशक, सुधारक और विधि संहिता के रचयिता अधिकांश क्षत्री ही हुए हैं और परशुराम को छोड़कर अधिकांश अवतारी पुरुष क्षत्री वर्ग के ही थे जैसे—राम, कृष्ण, नृसिंह, बामन, महावीर तीर्थंकर और बुद्ध। वैदिक युग में क्षत्री तपोबल से ब्राह्मण हो सकता था। नहुष का पुत्र यती राजपाट त्याग कर ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार विश्वामित्र, माधात्री, कास्यप और गृत्समाद ने क्षत्री से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। इतना ही नहीं प्रत्युत क्षत्रियों नें कई महत्वपूर्ण धर्म ग्रन्थों की भी रचना की है—जैसे मनु ने मनुस्मृति की और कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। प्रवाहन जाबालि ने ब्राह्मण पुत्र श्वेत केतु को उपदेश दिया।

आर्यावर्त का दक्षिण भूभाग दण्डकारण्य सूर्यवंशी राजा दशरथ के पूर्वज राजा दण्डक का बसाया हुआ था। पर परवर्ती युग में आर्यों में वर्ण और वर्ग विच्छेद और आपसी मतभेद के कारण शक्ति क्षीण हो जाने पर दक्षिण में दण्डकारण्य पर राक्षसेन्द्र रावण का प्रभुत्व स्थापित हो गया था और आर्यजन वहाँ से पलायन कर उत्तराखण्ड आर्यावर्त में आ गए थे और दण्डकारण्य आर्य विहीन निर्जन हो गया था। राक्षसों का आतंक इतना बढ़ गया था कि यदा-कदा वे मिथिला तक आक्रमण कर देते थे। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि राजा जनक भी भय के कारण लंकाधिपति रावण को कर देते थे। अयोध्या नरेश भी रावण से भयभीत रहा करते थे। सूर्यवंशी आर्य राजा दण्डक के पूर्व दण्ड-कारण्य पर अनार्य द्राविणों का प्रभुत्व था। तदुपरांत आर्य कूलो-त्पन्न राक्षसेन्द्र रावण ने द्राविणों को परास्त कर इस भूभाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। राक्षस शनैः शनैः द्राविणों के साथ मैत्री और यौन सम्बन्ध स्थापित कर अपनी रक्ष संस्कृति का विस्तार करने लगे। यहीं पर रावण ने अपने उपास्य देव शिव की जो कि द्राविणों और नागों के भी आराध्य थे, मूर्ति की स्थापना की थी। द्राविड़ भी आर्यों के कट्टर विरोधी थे। लंका-धिपति रावण ने त्रिभुवन को जीतकर अपने अधीन कर लिया था

सभी देव-दानव चराचर को अपने अधिकार में कर लिया था। उसे ब्रह्मा और शिव का वरदान प्राप्त था कि देव-दानव उसकी कुछ भी क्षति नहीं कर सकते। रामायण के नायक राम महाभारत के कृष्ण हुए ॥

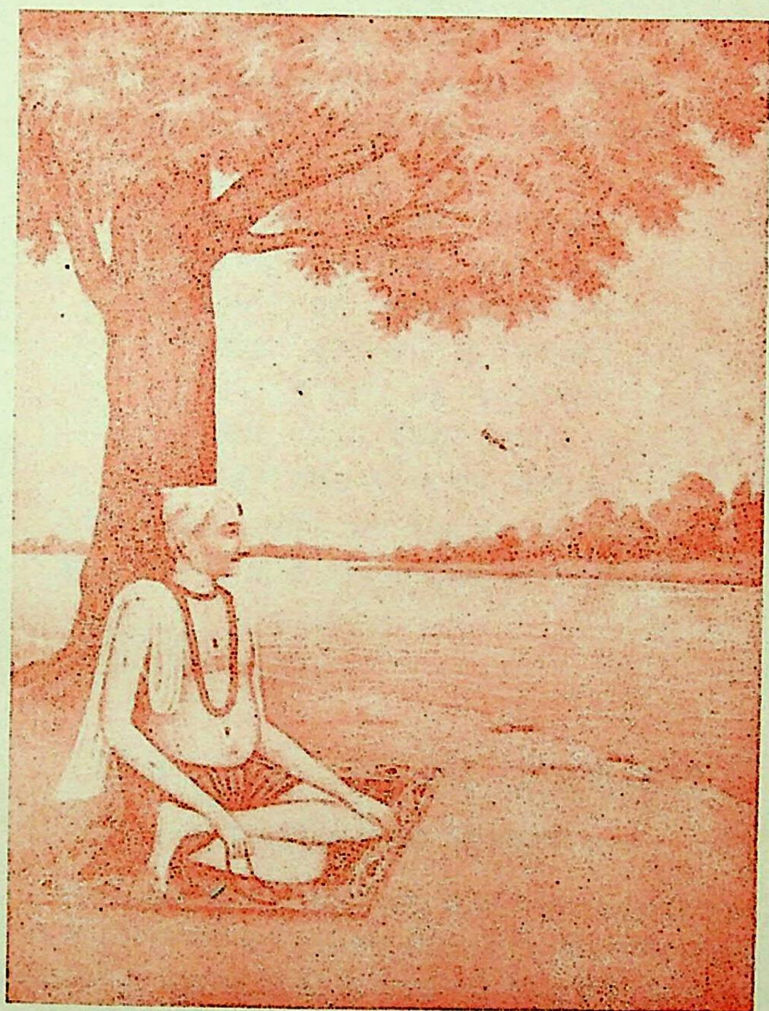
रामायण के अमित बलशाली वीर जितेन्द्रिय भ्रातृवत्सल लक्ष्मण महाभारत के अर्जुन बन गए हैं और भरत शत्रुघ्न का प्रतिविम्व नकुल सहदेव में हैं। भीम का ढंग निराला है तथापि बहुत सी बातों में उन पर कुम्भकर्ण जैसी छाया पड़ गई है। रामायण के विभीषण महाभारत में बिदुर हैं। अभिमन्यु और इन्द्रजीत एक ही ढंग के हैं। इधर राम अपने भाई और स्त्री के साथ सुदीर्घ समय तक बन में रहने को बाध्य हुए, और उधर युधिष्ठिर भी भाई और स्त्री के साथ बन को गए। दोनो ही राज्य पाते-पाते बंचित हुए। एक की स्त्री हरी गई और दूसरे की स्त्री का भरी सभा में अपमान हुआ।

रावण का आतंक

ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी।
दसमुख बसवर्ती नर नारी॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा।
रावन नाम बीर बरि बंडा॥

भुज बल बिस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र॥
देव जच्छ गंधर्व नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति वरी निज बाहुबल, वहु सुन्दर वर नारि॥

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला।
सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि।
नगर गाउँपुर आगि लगावहिं॥



गोस्वामी तुलसीदासजी



सुभ आचरन कतहुं नहिं होई।
देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भगति जज्ञ तप ज्ञाना।
सपनेहुं सुनिअ न बेद पुराना।

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्हके पापहि कवनि मति॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
अतिसय देखि धर्म के ग्लानी।
परम सभीत धरे अकुलानी॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता।
कहि न सकइ रावन भय भीता॥

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवन मिति॥

गो० तुलसीदास का जीवन-वृत्त

—: रामचरित मानस की रचना :—

वैष्णव शिरोमणि परमपूज्यनीय काव्य पुरुष गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त का असंदिग्ध स्पष्ट बाल्य जीवन का बिल्कुल विश्वसनीय वृत्तान्त किसी ने वर्णन नहीं किया है। प्राय: प्रत्येक अन्वेषकों ने अपने स्वतन्त्र विचार प्रदर्शित करने का प्रयास किया है जो अनुमानित आधार पर ही स्थित है, प्रत्येक के मत में भेद है।

डा० किशोरी लाल गुप्त का कहना है कि गो० तुलसीदास के जन्मभूमि, कुल, वंश परम्परा, माता पिता का नाम व पालन पोषण इत्यादि विषयों का पुष्ट व सर्व सम्मत साक्ष्य व्यक्त नहीं है।

प्रमाणित रूप से इतना साक्ष्य निश्चित रूप से काव्य पुरुष प्रातः स्मरणीय परम पूज्यनीय गो०तुलसीदास का जन्म सं० १५५१ में होने का अधिकांश आलोचकों का मत है। इनके जन्म भूमि के विषय में अनेक मत-मतान्तर हैं। कोई हस्तिनापुर कोई चित्रकूट, कोई हाजीपुर कोई राजापुर या तारी का मूल निवासी बताते हैं। इनके साहित्यिक ग्रन्थों और रचनाओं और भाषा का अनुसन्धान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये राजापुर के समीपस्थ क्षेत्र के वासी थे।

जाति और जननी--

अधिकांश अन्वेषकों का कहना है और विश्वास है कि गो० तुलसीदास ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। यह गो० तुलसी-दास के ग्रन्थों से संकेत प्राप्त होता है। कोई इन्हें कान्यकुब्ज कोई सरयुपारीय ब्राह्मणीकुलोद्भव होना बताते हैं। इनके ब्राह्मण वंशीय होने में कोई मतभेद नहीं है।

गो० तुलसीदास के माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आतमाराम दूबे और पत्नी का नाम रत्नाबली वर्णित है।

दूबे आतमा राम हैं, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान।।
प्रह्लाद उधारन नाम है गुरु का सुनिये साध।
प्रगट नाम नहिं कहत जो, कहत होय अपराध।।
दीन वन्धु पाठक कहत, जो कहत होय अपराध।
रत्नावली तिय नाम है सुत तारक गत होइ।।

माता-पिता ने उन्हें जन्मा कर तज दिया। इनका विवाह भी हुआ था। तदुपरान्त कुछ अप्रिय घटना के कारण इन्होंने पत्नी का परित्याग कर विरक्त हो गए। विरक्त होने का कारण उनके पत्नी की फटकार है। अर्धरात्रि में अपने पत्नी के मायके में जाकर पत्नी से भेंट करने के प्रयास में उन्हें पत्नी की तीव्र भर्त्सना सुनने के बाद उन्हें पत्नी को त्याग कर बिरक्त होना पड़ा। पत्नी का उपदेश गो० तुलसीदास को वरदान स्वरूप हो गया। स्त्री ने सोते हुए वैराग्य को जगा दिया जिससे तुलसी तुलसीदास हो गए।

बाद में वे काशी चले आए। काशी शेष सनातन जी के सान्निध्य में पन्द्रह वर्ष तक वेद वेदाङ्ग का अध्ययन किये। बाद में काशी में ही राम कथा कहने लगे। काशी में ही उन्होंने कई एक राम भक्ति काव्य ग्रन्थों की रचना की जिनमें रामचरित मानस कवितावली व गीतावली प्रमुख हैं। अन्त में काशी में पतित पावनी गंगा के पावन तट अस्सी घाट पर उनका पार्थिव सदा के लिए शान्त हो गया। अमर हैं गो० तुलसीदास, अमर हैं उनकी काव्य रचनाएँ। गो० तुलसीदास के विरक्त होने का मूल कारण उनकी पत्नी ही हैं। अर्ध रात्रि में गो० तुलसीदास का ससुराल में पत्नी से मिलने का प्रयास उनके पत्नी को अरुचिकर लज्जाजनित लगा और उन्होंने अपने इष्ट पति को जिन शब्दों में फटकारा है वही गो० तुलसीदास के विरक्त होने का मूल कारण है। जैसे—

लाज न लागत आपको, दौड़े आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुं मैं नाथ॥
अस्थि - चर्ममय देह मम तामें जैसो प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भयभीति॥

पत्नी का कठोर अप्रिय वचन गो० तुलसीदास के जीवन का शुभारम्भ है।

गो० तुलसीदास का बहुमुखी व्यक्तित्व, मानवता, भक्त कवि, सुधारक के रूप में चिरस्मरणीय हैं। इन्होंने अपने उपास्य इष्ट देव राम में सौन्दर्य, सदाचार, लोक मर्यादा का पूर्ण निर्वाह किया है और ये श्रीराम के अनन्य भक्त थे।

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म प्रभु रामपद यह वरदान न आन॥
पन्द्रह सौ चौवन तिथि कालिन्दी के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरयो शरीर॥
संबत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥

गताभिषेकतः

संक्षिप्त रामचरित मानस

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज - श्रीरघुनन्दनस्यमेसदास्तु सा मंजुल - मंगल - प्रदा ।।

सत संगति महिमा—

सुनि आचरज करै जनि कोई । सत संगति महिमा नहि गोई ।।
बिनु सतसंग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ।।
बंदउ संत असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु वरना ।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दुःख दारुन देही ।।

भक्ति काव्य—

सीय राममय सब जग जानो । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

भजन प्रभाव—

दोहा—सारद सेस महेस विधि, आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरंतर गान ।।
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ।।
व्यापक विश्वरूप भगवाना । तेहिं धरिदेह चरित कृत नाना ।।

राम नाम—

बदउँ नाम राम रघुबर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ।।
महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ।।
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ।।
जान आदि कवि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।।

नाम-नामी तुलना—

समुझत सरिस नाम अरुनामी । प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ।।
नाम रूप दुइ ईस उपाधो । अकथ अनादि सुसामुझि साधो ।।
अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगध अनादि अनूपा ।।
उभय अगम जुग सुगम नामं ते । कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ।।

ब्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।।
राम भगत हित नर तनु धारी । सहि संकट किए साधु सुखारी ।।
राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ।।
राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सबु कोऊ ।।
राम सकुल रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ।।

दो०—ब्रह्म राम ते नामु बड़, बर दायक बरदानि ।
रामचरित सत कोटि मह, लिय महेस जियँ जानि ।।

राम महिमा—

नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ।।
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगति सिरोमनि भे प्रहलादू ।।
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।।
सुमिरि पवन सुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ।।
अपतु अजामिल गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।
रामनाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितुमाता ।।
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।
राम नाम कर अमित प्रभावा संत पुरान उपनिषद गावा ।।
संतत जपत संभु अविनासी । सिव भगवान ग्यान गुनरासी ।।
राम कथा ससि किरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ।।

राम कथा—

जागवलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनि बरहि सुनाई ।।
कहिहउँ सोइ संवाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी ।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । राम भगत अधिकारी चीन्हा ।।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ।।

रामगुण महिमा—

राम चरित चिंतामनि चारू । संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ।।

दोहा—राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार ।
सुनि अचरजु न मानिहहिं, जिन्हकें विमल विचार ।।

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउँ सो दसरथ अजिर बिहारी ।।

ग्रन्थ प्रस्तावना—

संवत सोरह सै एकतीसा। करउं कथा हरी पद धरी सीसा ।।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।
रची महेश निज मानस राखा। पाइ सूसमउ सीवा सन भाषा ।।

भगवत्-कथा महिमा वर्णन—

राम कथा सुन्दर करतारी संसय विहग उड़ावन हारो ।।
राम कथा कलि विटप कुठारो। सादर सुनु गिरिराज कुमारी ।।
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ।।
हरि माया बस जगत भ्रमाही। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ।।

राम महिमा—

सगुण-निर्गुण व्याख्या—

सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध बेदा ।।
अगुन अरूप अलख अजजोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ।।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ।।
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ।।
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ।।
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुनधामू ।।

दो०-रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुःख अहई ।।
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम असगावा ।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करइ करम बिधिनाना।
आनन रहित सकल रसभोगी। बिनु वानी बकता बड़ जोगी ।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।
अस सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।।

अवतार हेतु कथा—

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए ।।

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थम् कहिजाइ न सोई॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब सब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विसद जस, राम जन्म कर हेतु॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब संता॥

रावण चरित्र—

दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरि बंडा॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥

रामावतार—

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीतधरा अकुलानी॥
सकल धर्म देखइ विपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता॥
धेनुरूप धरि हृदयं बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥
बैठे सुर सब करहिं विचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदयँ भगति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊं। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

दोहा—जानि सभय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥

आकाश वाणी—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहऊँ नर बेसा॥
असन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
तब ब्रह्मां धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

जगनिवास प्रभु प्रगटे—

नौमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक विश्रामा ।।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ । हरषित सुर संतन मन चाऊ ।।

दोहा—सुर समूह बिनती करि, पहुंचे निज निज धाम ।
जग निवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ।।

करत चरित्र अनूप—

बालचरित हरि बहु विधि कीन्हा । अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ।।
भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेउ गुरु पितु-माता ।।
जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ।।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु-पिता गुरु नावहिं माथा ।।

दोहा—व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ।।

मख-रक्षण—

यह सब चरित कहा मैं गाई । आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।।
विस्वामित्र महामुनि ग्यानी । बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी ।।
जहँ जप जग्य जो मुनि करहीं । अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ।।
देखत जग्य निसाचर धावहिं । करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।।
गाधितनय मन चिन्ता ब्यापी । हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ।।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ।।
एहूँ मिस देखौं पद जाई । करि बिनती आनौं दोउ भाई ।।

विश्वामित्र का यज्ञ रक्षा हेतु दशरथ के पास जाना—

केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउँ बारा ।।
असुर समेत सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउ नृप तोही ।।
अनुज समेत देहु रघुनाथ । निसिचर बाध मैं होब सनाथा ।।

दोहा—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बाहु विधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ।।

ताड़का वध—

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिस्वामित्र महानिधि पाई ।।
चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।

मारीच-सुबाहु मोक्ष—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई।।
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी।।
सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही।।
बिनु फरबान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा।।
पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु संघारा।।

अहल्योद्धार—

धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा।।
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछहिं मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।

दो० – गौतम नारि श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर।।

एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार-बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी।।

जनकपुर गमन—

हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया।।
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए।।
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी।।
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनंद दाता।।

फुलवारी प्रसंग –

देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए।।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।
चली अग्रकरि प्रिय सखी सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।।
कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृह दीप सिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी।।

दो०— सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचिमन अनुज सन, बचन समय अनुहारि।।

तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लैं आई। करत प्रकासु फिरइ फुलवाई॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु शोभा॥

रंगभूमि प्रवेश—

रंग भूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥
जिनकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

धनुष भंग—

रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयं बिनवति जेहि तेही॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

परशुराम आगमन—

तेहिं अवसर सुनि सिव धनु भंगा। आयउ भृगु कुल कमल पतंगा॥
समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहिं केउ एक दास तुम्हारा॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा॥

लक्ष्मण-परशुराम-संवाद—

सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥

राम-परशुराम संवाद—

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी।।
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहिं जानिअ आपन अनुगामी।।

परशुराम कोप शान्ति—

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।।
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चापु मिटै संदेहू।।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ।।

नारद का आगमन-नारदानुग्रह—

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी।।
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनहि अस अवसरु आई।।
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना।।
गावत रामचरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी।।
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उरलाई।।
स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।।
तब नारद बोले हरषाई। असबर मागउँ करउँ ढिठाई।।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एकतें एका।।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।

राम का धर्म रथ—

रावन रथी विरथ रघुबीरा। देखि विभीषन भयउ अधीरा।।
नाथ न रथ नहिं तन पद आना। केहि बिधि जितब वीर बलवाना।।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्पंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय असरथ जाकें। जीवन कहँ न कतहुं रिपु ताकें।।
गिरजा संदेह-सुनि कथा उमा हरखानी।
गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति यथा।।
राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा।।
राम अनन्त अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।।

मोहि परम संदेह—

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन नाहीं।।

भव सागर यह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥

दोहा—बिरति ग्यान विज्ञान दृढ़ रामचरन अति नेह।
बायश तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह ॥

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गोध गजादि खल तारे घना।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।
रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुवर हरै।
सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन की।
जाकी कृपा लवलेस ते मति मंद तुलसी दास हूं।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूं ॥

दो०—मोसम दीनन दीन हित, तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु विषम भव भीर ॥

सीता-का सतीत्व-विरह-पति भक्ति—

तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किए बनावा ॥
बहु विधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरी करऊँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥
सुनु दस मुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करइ विकासा ॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहि रघुबीर बान की ॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसियान ॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहऊँ तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिंत सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर । प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ।।
चन्द्र हास हरु मम परितापं । रघुपति बिरह अनल सजातं ।।
सीतल निसित बहसि वर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ।।
सुनत वचन पुनि मारन धावा । मय तनयाँ कहि नीति बुझावा ।।

सीता का विरह—

त्रिजटा सन बोली कर जोरी । मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ।।
तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ।।
आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि भगाई ।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनै को श्रवन सूल सम बानी ।।
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि।प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ।।
निसि नअनल मिल सुनु सुकुमारी।अस कहि सोनिज भवन सिधारी।।
कह सीता विधि भा प्रतिकूला । मिलहि न पावक मिटहि न सूला ।।
देखिअत प्रकट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकउ तारा ।।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ।।
नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगनि जनि काहि निदाना ।।
देखि परम बिरहा कुल सीता । सो छन कपिहि कलप सम बीता ।।

सीता मिलाप—

बूढ़त विरहजलधि हनुमाना । भयउ तात मो कहुं जलजाना ।।
अब कहु कुसल जाऊँ बलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ।।
कोमल चित कृपाल रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ।।
सहज बानि सेवक सुखदायक । कबहुंक सुरति करत रघुनायक ।।
कबहुं नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ।।
बचन न आव नयन भरे बारी । अहइ नाथ हौं निपट बिसारी ।।

प्रभु संदेश—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तव दुःख दुःखी सुकृपा निकेता ।।

दो०—रघुपति कर सँदेसु अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ।।

कहेउ राम बियोग तव सीता । मो कहुं सकल भए बिपरीता ।।
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू ।काल निसा सम निसि ससि भानू ।।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ।।
कहेहु तें कछु दुःख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ।।
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।।
कह कपि हृदय धीर धरु माता । सुमिरु राम सेव सुख दाता ।।
उर आनइ रघुपति प्रभुताई । सुनि मम बचन तजहु कदराई ।।

दो०—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु ।
जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु ।।

सीता—

दो०—कहि प्रिय बचन बिबेक मय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोष ।।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ।।
लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देवि बढ़ि अबिनय मोरी ।।
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ।।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय बियोग सम दुख जग नाहीं ।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल बिधु बदन निहारे ।।

दो०—खग मृग परिजन नगरु बनु, बल कल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल ।।

बन दुःख नाथ कहे बहु तेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ।।
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपा निधाना ।।
अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाड़ि अजनि ।।
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ।।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहुं भोगू ।।
देखि दसा रघुपति जियँ जाना । हठि राखें नहि राखिहि प्राना ।।
कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा ।।
कहहु तात केहि भांति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्रान की ।।

दो०—नाम पाहरु दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहि प्रान केहि बाट ।।

तरु पल्लव महुँ रहो लुकाई। करइ बिचार करों का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। सँग नारि बहु किए बनावा॥
बहु विधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय तनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु विधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस कहुं कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

दो०—भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद॥

सीता—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। रामचरन रति निपुन विबेका॥
त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनी तैं मोरी॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुं मोहि जानि हतभागी॥
देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

दोहा—कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह, हरषि उठि कर गहेउ॥

राम दूत मैं मातु जानकी—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर॥
कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए बिपरीता॥
कहेउ ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत वैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही॥
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु रामसेवक सुखदाता॥
मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बलसानी॥

प्रति बिम्ब पावक महुं जरे ।

प्रभु के बचन सीस धरि सीता । बोली मन क्रम बचन पुनीता ।।
लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम बेगी ।।
सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह बिबेक धरम निति सानी ।।
लोचन सजल जोरिकर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न कोऊ ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए ।।
पावक प्रबल देखि बैदेही । हृदय हरष नहि भय कछु तेही ।।
जौं मन क्रम मम उर माहीं । तजि रघुबीर आन गति नाहीं ।।
तौ कृसान सब कै गति जाना । मो कहुँ होउ श्री खंड समाना ।।

दोहा—जनक सुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार ।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार ।।

छन्द—श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलेसमहेस बंदित चरन रति अति निर्मली ।

सेवक-स्वामि सम्बन्ध-पवनसुत हनुमान—

प्रभुपहिचानि परेउ गहिचरना—

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत निअराया ।।
तह रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सींवा ।।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जिय सयन बुझाई ।।
पठए बालि होहिं मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह सैला ।।
बिप्र रूप धरि कपि तह गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।।
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन बीरा ।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी । कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ।।
कोसलेस दशरथ के जाए । हम पितु बचन मानि वन आए ।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई । सँग नारि सुकुमारि सुहाई ।।
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । विप्र फिरहिं हम खोजत तेही ।।
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु विप्र निज कथा बुझाई ।।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।।
पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष कै रचना ।।
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्हीं । हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्हीं ।।

मोर न्याउ मैं पूछा साइं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥
तब माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥

दोहा—एकु मंद मैं मोहबस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन बंधु भगवान ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे ॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउं नहिं कछु भजन उपाई ॥
सेवक सुतपति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥

दोहा—सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥

देखि पवनसुत पत अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

दोहा—तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥

इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरनावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ॥
जनक सुता कहुं खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई ॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥
पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ॥
जो नाथइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर ॥
कहइ रीछ पति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जल निधि खारा ॥

सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोहीं॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहिं देखि कहहु सुधि आई॥

विभीषण भेंट—

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर-मंदिर प्रति करि सोधा। देखेउ जहँ तहँ अगनित जोधा॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुं तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
विप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तहँ धाए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥

दोहा—तब हनुमंत कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

सीता संदर्शन—

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥
सुनहु विभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही विधि हीना॥

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि विधि जनक सुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥
देखि मनहि महुं कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

कह सीता विधि भा प्रतिकूला—

तरु पल्लव महुं रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहिं कलप सम बीता॥

सो०—कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ।।

राम दूत मैं मातु जानकी—

तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुन्दर ।।
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ ।।
राम दूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुना निधान की ।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ।।
नर बानरहि संग कहु कैसे । कहो कथा भइ संगति जैसे ।।

दोहा—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपा सिधु कर दास ।।

देखि परम बिरहा कुल सीता । बोला कपि मृदु वचन विनीता ।।
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ।।
जनि जननी मानहु जिय ऊना । तुम्ह ते प्रेम राम के दूना ।।

दोहा—रघुपति कर संदेसु अब, सुनु जननी धरि धीर ।
असि कहि कपि गदगद, भयउ, भरे बिलोचन नीर ।।

कहेउ राम वियोग तब सीता । मो कहुं सकल भए बिपरीता ।।
कहेऊ ते कछु दुख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ।।

भरत चरित—

विस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।

भरतागमन : मातुल घर से-अयोध्या दशरथ के मृत्योपरांत—

कहु कहँ तात कहाँ सब माता । कहँ सियराम लखन प्रिय भ्राता ।।

दोहा—भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौनु ।।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सियरामु लखनु दोउ भाई ।।
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ।।
करत विलाप बहुत यहि भाँती । बैठहिं बीति गई सब राती ।।
पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी।सोमुख लाख जाइ नहिं बरनी।।
हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ।।

भरतहि कहहिं सराहि सराही । राम प्रेम मूरति तनु आही ।।

गुह समागम—

कारन कवन भरतु बन जाहीं । है कछु कपट भाउ मन माहीं ।।

भरद्वाज मुनिवर यहिं आए ।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिवर यहिं आए ।।
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ । कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।।
भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।।

भरतहि होइ न राज मद—

बहुरि सोचबस भे सिय रवनू । कारन कवन भरत आगवनू ।।
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ।।
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।।
विषई जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ।।
भरतहि दोसु देइ को जाएं । जग बौराइ राज पदु पाएँ ।।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब ते कठिन राजमदु भाई ।।
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।।

दोहा—भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ ।।

जौं न होत जग जनम भरत को।सकल धरम धुर धरनि धरत को।।
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।
प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ।।

विदा किए सब सानुज रामा—

जथा जोग करि विनय प्रनामा । विदा किए सब सानुज रामा ।।
सई उतरि गोमती नहाए । चौथे दिवस अवधपुर आए ।।
नंदि गांव करि परन कुटीरा । कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ।।

छ०– सिय रामप्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को ।
मुनि मन अगम जमनियम सम दम विषम व्रत आचरत को।।
दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

सो०—भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु, अवसि होइ भव रति बिरति ।।

रावण चरित्र—

दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

दोहा—भुजबल बिस्व त्रस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र॥

सो०—बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापहिं कवनि मिति॥

रावण की आशंका-सीता हरण—

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महिभारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥

मारीच कपट मृग भयऊ—

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए राम सरसन साजी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कहु लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥

दोहा—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ॥

एहि विधि सीतहिं सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥
रावन जबहि बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥

मंदोदरि मन महु अस ठयऊ—

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥
बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
मंदोदरि मन महुं अस ठयऊ। पियहिं काल बस मति भ्रम भयऊ॥

रावण मुक्ति—

नाभि कुंड पियूष बस याके। नाथ जिअत रावन बल ताके॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहेकर बान कराला॥
सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सिर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
राम बिमुख असहाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥

सुग्रीव से मैत्री—

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तब अहई॥
तेहिसन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तह मरकट कोटि पठाइहि॥

दोहा—तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलहिं नाथ मिथिलेस कुमारी॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिह जानकी आई॥

दोहा—सखा बचन सुनि हरषे, कृपा सिंधु बल सींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु संग लागा॥
गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बाली मोहिं कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहिं एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरा रुधिर धार तहँ भारी॥

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलउँ पराई॥
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआई॥
बालि ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहिं जियँ भेद बढ़ावा॥
रिपु सम मोहिं मारे अतिभारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरुनारी॥
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥
इहाँ साप उस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुनि सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठेउ दोउ भुजा बिसाला॥

दोहा—सुनु सुग्रीव मारिहूं, बालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्रान॥

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बलपावा॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

दोहा—कहि बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहिं मारहिं, तौं पुनि होउँ सनाथ॥

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहिं जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुष्टिक मारि महाधुनि गर्जा॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एक रुप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहि रघुराई॥

दोहा—बहु छल बल सुग्रीव कर, हियं हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदय माझ सर तानि॥

दोहा—राम चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग॥

दोहा—लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कह, अंगद कहं जुबराज॥

रावण दरबार में अंगद—

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहिं तोहि रही मिताई। तब हित कारन आयउँ भाई ॥
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहिं प्रभु तोरा ॥
सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे ॥
रे कपि पोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी ॥
पुनि सकोप बोलेउ जब राजा। गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा ॥
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दस सीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥

दोहा—कोटिन्ह मेघनाद सम, सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन, पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥

गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा ॥
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥

युद्ध का पहला दिन—

गर्जेहिं तर्जेहिं भालु कपीसा। जय रघुवीर कोसलाधीसा ॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥
जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ॥
कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचर पति भय पावा ॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहिं सो फल लेहू ॥

युद्ध का दूसरा दिन—

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरहि मम प्राना ॥
बीर घातिनी छाड़िसि सागी। तेज पुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥

दोहा—मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठै चले खिसिआइ ॥

युद्ध का तीसरा दिन—

कुंभ करन बूझा कहु भाई। काहे तब मुख रहे सुखाई ।।
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। मड़ा महा जोधा संघारे ।।
कुंभकरन रन रंग विरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ।।
कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ।।
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ ।।

युद्ध का चौथा दिन—

दोहा मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि, भइ कपि कटकहि त्रास ।।

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि विकल सकल बल सीला ।।
पुनि लछिमन सुग्रीव विभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन।।
ब्यालपास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अधिकारी ।।

दोहा—गिरिजा जासु नाम जपि, मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ, ब्यापक बिस्व निवास ।।

मेघनाथ वध—

लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा ।।
छोड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा ।।
सुत वध सुनत दसानन जबहीं। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं ।।
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा ।

दोहा— तब दसकण्ठ बिबिध विधि समुझाई सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय विचारि ।।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।

युद्ध का पाचवां दिन—

कहइ दसानन सुनहु सभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ।।
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाइ ।।

धर्म रथ—

रावन रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषन भयउ अधीरा ।।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।

दसकंधर अंगद-हनुमान—

दोहा—उत पचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन ।।

दोहा—निज दल विचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ।।

लक्ष्मण पराक्रम—

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोक तोर मैं कालू ।।
पुनि सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तक सुधि कछु नाहीं।।
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी ।।

छन्द—सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति, अनंत उर लागी सही।
पर्‍यो वीर विकल उठाव, दसमुख अतुल बल महिमा रही ।।
ब्रह्मांड भवन विराग जाके एक सिर जिमि रजकनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनो ।।

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र पहारा ।।
मुरछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल विपुल सराहन लागा ।।
धिगधिग ममपौरुष धिग मोहीं। जौ तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही ।।

राम रावण युद्ध -

तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ।।
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले ।।
सुनि दुर्बचन काल बस जाना। विहँसि वचन कह कृपा निधाना ।।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ।।

दोहा—राम बचन सुनि बिहँसा, मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान ।।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छोड़े सर ।।
पावक सर छाड़ेउ रघुवीरा। छन महुं जरे निसाचर सीरा ।।
विफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे ।।

विभीषण-हनुमान-जामवत-पराक्रम—

देखि विभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो ।।
राम विमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा ।।

देखा श्रमित विभीषन भारी। धायउ हनूमान गिरिधारी॥
बुधि बल निसिचर परइ न पार्यो। तब मारुत सुत प्रभु संभार्यो॥
मुरछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥

दोहा—मुरछा विगत भालु कपि, सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि, घेरि रहे अति त्रास॥

युद्ध का सातवाँ दिन—

माया विस्तार और निस्तार—

दोहा—देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचार।
अंतर हित होइ निमिष महुं, कृत माया विस्तार॥

छन्द—लछिमन कपीस समेत भए सकल बीर अचेत।
हा राम हा रघुनाथ कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
प्रभु देखि हरष विषाद ऊर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुं माया हरी॥

दोहा—काटे सिर भुज वार बहु, मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि, व्याकुल देखि कलेस॥

मरइ न रिपु श्रम भयउ विसेषा। राम विभीषन तन तब देखा॥
नाभिकुंड पियूष बस याके। नाथ जिअत रावनु बल ताके॥

दोहा—खैंचि सरासन श्रवन लगि, छोड़ा सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहुं काल फनीस॥

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं पचारी॥
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥

दोहा—कृपा दृष्टि करि बृष्टि प्रभु, अभय किए सुरबृंद।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुंद॥

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरछित विकल धरनि खसि परी॥
भुज बल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनि हारा॥

काल विवस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥

दोहा—अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि वृंद दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान॥

आइ बिभीषन पुनि सिर नायो। कृपा सिंधु तब अनुज बोलायो॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥

रावण का आतंक

रावण ने सम्पूर्ण उत्तरी और पूर्वी आर्यावर्त में आतक फैला रखा था। उस समय राम को छोड़कर ऐसा कोई अन्य महापुरुष नहीं था जो रावण को परास्त कर सकता था। कारण राम तात्कालिक एक उदीयमान पराक्रमी राज कुमार थे। उनको ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवों एवं महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र एवं बाल्मीकि जैसे तपोवली गुरुओं का पूर्ण रूपेण वरद आशीर्वाद एवं शिक्षण भी प्राप्त था। सत्व, रजो और तमो गुणों त्रिदेवा का अजेय वर-दान प्राप्त था। गंगा, यमुना और सरस्वती त्रिवेणी के संगम का पावन जल प्राप्त था।

राजा जनक की भूमिजा कन्या सीता थीं। राजा जनक को राम की प्रसिद्धि पूरी तरह मालूम थी। अतः उन्होंने अपनी कन्या के विवाह हेतु स्वयम्वर का आह्वान किया जिसमें देश-देश के राजा एकत्रित हुए थे। उसी समय महर्षि विश्वामित्र भी राम को साथ लेकर मिथिला नरेश राजा जनक के यहाँ पहुँच गए। राजा जनक ने राम की उपस्थिति देख कर यह घोषणा की कि उनके यहां धरोहर रूप में रखा हुआ शिव धनुष उठाकर उसकी प्रत्यंचा जो खींच सकेगा उसीके साथ सीता का विवाह होगा। राजा जनक को ऐसा पूर्वाभास हो गया था कि राम के सिवा और किसी में इतना बल नहीं है जो शिव धनु की प्रत्यंचा को चढ़ा सके। हुआ भी ऐसा ही और सब राजा परास्त हो गये। राम

ही सफल हुए। ऐसा संकल्प राजा जनक ने केवल इस उद्देश्य से किया था कि उनका और अयोध्या का घनिष्ट सम्बन्ध हो जाय तदुपरान्त रावण को परास्त करने का भार राम को सौंप दिया जाय। इस तरह राजा जनक रावण से निर्भय और कर मुक्त हो जायेंगे। जिन राक्षसों को सूर्य वंशोत्पन्न राजा अनरण्य और मान्धाता भी परास्त करने में असफल रहे उन्हें राम ने अपने बाहु वल से परास्त कर आर्य संस्कृति की विजय पताका लंका में फहरा दो।

अहिल्योद्धार

जब विश्वामित्र राम को लेकर मिथिला में सोता स्वयंबर के यज्ञ में जा रहे थे, तो मार्ग में उन्हें मुनि गौतम का आश्रम मिला जो बिलकुल सुनसान पड़ा था और उसमें केवल गौतम मुनि की त्यक्त पत्नी ही रहती थी। जिज्ञासा करने पर ज्ञात हुआ कि यह मुनि गौतम की त्यक्त्य पत्नी अहिल्या हैं जो अकेले ही इस आश्रम में बास करती हैं और ऋषि गौतम द्वारा परित्याग के कारण सदा दुःखी उदास रहती हैं। उनका जीवन निर्जीव शिला तुल्य हो गया था। राम ने अपने आशीर्वाद से उनको शुद्ध निर्मल बना दिया और अहिल्या राम के दर्शन मात्र से प्रफुल्लित हो उठीं। परन्तु राम भक्तों का कहना है कि राम के चरणस्पर्श से पाषाण रूपी अहिल्या ने सुन्दर नारी रूप धारण कर लिया। यह विचारणीय है कि यदि किसो साध्वी पत्नी का किसो कारणवश उसका पति परित्याग कर दे तो उसका जीवन नीरस निर्जीव शिला तुल्य नहीं होगा तो और क्या होगा? विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने जो व्याख्या की है वह नीचे उद्धृत है:—

When Ramchandra set out under his master Vishwamitra on what became his life mission he started, even at that carly age, by emerjing triumphant through three severel tests. First he seem the foremost of the obstructive barba-

riaus in the vicinity, Next, at his skilled fonch, the desert soil which had been forlong years bound in the hardness of stone-becoming Ahalya, Not fitfor ploughing, reseemed the bloom of life. It was the self same soil which Rishi Goutam, the foremost of the early Aryan Pioneers who had striven to drive the plongh south wards, had found Treacherous and had abondoned in despair.

अथवा ऋषि गौतम के आश्रम के आस-पास की भूमि पथरीली थी और वहाँ कृषि न हो सकने के कारण गौतम ने वहां कृषि करने का प्रयास छोड़ दिया था जिसे राम ने जोतकर कृषि योग्य बना दिया जिससे गौतम मुनि ने कहा--अरे ! यह भूमि तो हमारी अहिल्या हो गयी। रमणीय हो गई। इसी प्रकार राजा जनक के क्षेत्र की जो अनुर्वरा पथरीली भूमि थी, राजा जनक ने अपने अथक परिश्रम से जोतकर उसे उर्वरा बना दिया था और इसी कारण राजा जनक को कृषि का जनक कहते हैं। और सीता का जन्म भी जनक द्वारा खेत जोतने के समय—उनकी पत्नी सुनयना वहीं जनक को देखने गई थीं और उसी खेत हो में कन्या उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता या भूमिजा पड़ा। राजा जनक ने कठोर कर्म करने के कारण सिद्धि प्राप्त की थी जैसा गीता में कहा है—

कर्मणैव हि संसिद्धि आस्थिता जनकादयः। गीता ३-३०

राजर्षि जनक ने कर्म योग के बल पर ही सिद्धि प्राप्त किया था।

अतः श्री राम के चरण पड़ने से अहिल्या उठ खड़ी हो गई।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ करजोरि रही।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय वड़ भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार वही।।
विन्ध्य के वासी उदासी तपो व्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि बृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू। करुना करि कानन को पगु धारे।

रामायण में सबसे अधिक और महत्वपूर्ण विषय है राम का अरण्य वन में जाना। राम को किसी ने भी ऐसा आदेश नहीं दिया था कि वे अरण्यका बन में ही जांय। हिमालय तथा किसी अन्य बन में भी जा सकते थे। इसका मूल कारण है रावण के आतंक और अत्याचार को रोकना और रावण का निरवंश करना। क्योंकि उन्होंने इस महान कार्य सम्पादन के लिए आर्य ऋषि मुनियों के समक्ष हांथ उठाकर प्रतिज्ञा की थी।

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछो मुनिन्ह लागि अतिदाया।।
जांनत हूं पूछिअ कस स्वामी। सम दरसी तुम अन्तर जामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए।।

दोहा—निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
सा० ३ दो० ८१ रा० च० मा० अर० दो० ९

रामायण का संक्षिप्त पूर्वाभास बाल काण्ड

सूर्य वंश का वर्णन

रामायण एक रमणीय और महनीय महाकाव्य है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दायक सागर सदृश्य गंभीर है।

कामार्थं गुण संयुक्तं धमार्थं गुणविस्तरम्।
समुद्रमिवरत्नाढच सर्वं श्रुति मनोहरम्।।

इक्ष्वाकु वंशोद्भव नर श्रेष्ठ नयनाभिराम राम चरित्र का आश्रय लेकर वाल्मीकि मुनि ने जिस वृहद् महाकाव्य ग्रन्थ की रचना की है उसी को रामायण कहते हैं।

राम का जन्म सूर्यवंश में हुआ था। इसी वंशमें नृपति काकुस्थ हुए थे। एक बार देवराज इन्द्र असुरों के साथ युद्ध करते पराजित हो गये थे। उस समय राजा कुकुस्थ से सहायता की अभ्यर्थना की

थी। देवराज इन्द्र सांड़ का रूप धारण कर राजा काकुस्थ का बाहन बने थे। सांड़ रूपी इन्द्र की पीठ पर बैठकर नृपति कूकस्थ ने असुरों से युद्ध किया था और ककूत अर्थात पृष्ठ पर बैठ कर युद्ध करने के कारण उनका कूकस्थ नाम पड़ा।

इनके बाद इसी सूर्यवंश में मान्धाता नाम के विख्यात राजा हुए। इनका सारे पृथ्वी में राज्य विस्तृत था। महाराज मन्धाता के बाद उल्लेख योग्य राजा हुए त्रिशंकु। त्रिशंकु के मन में हठात ऐसी बात आई कि वह सशरीर बैकुण्ठ में कैसे जा सकेंगे। तदर्थं उन्होंने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के पौरोहित्य में महान यज्ञ कराया। उस युग में ब्राह्मण का बल था मनोबल, क्षत्रिय का शारिरिक बल था। यह लेकर एक बार बुद्धिवादी वशिष्ठ और बाहुबली विश्वामित्र में घोर संघर्ष छिड़ गया। अन्त में वशिष्ठ ब्राह्मण बल के सामने क्षत्री विश्वामित्र को झुकना पड़ा। इसके बाद घोर तपस्या करने के उपरान्त ब्रह्मा के वरदान से विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ। ब्राह्मणत्व प्राप्त होने के बाद महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का हार्दिक अभिनन्दन किया और वशिष्ठ विश्वामित्र का जातीय संघर्ष सदा के लिये समाप्त हो गया।

विश्वामित्र ने अपने तपोबल से त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग में भेज दिया था परन्तु वशिष्ठ ने उन्हें अपने तेज से मर्त्य लोक में गिराने का संकल्प किया था और ज्योंही त्रिशंकु स्वर्ग लोक से गिरने लगे उसी समय ब्रह्मर्षि विश्वामित्र अपने तपोबल से स्वर्ग और मर्त्य लोक के बीच एक नये लोक का निर्माण कर डाला और तब से त्रिशंकु उसी नये लोक में पड़े हैं।

त्रिशंकु के पश्चात विख्यात राजा हरिश्चन्द्र हुए। वह परम सत्यव्रती थे। परम दानी भी थे। इन्होंने विश्वामित्र को अपना सम्पूर्ण राज्य धनधान्य दान में अर्पण कर दिया था। यहाँ तक दान का कुछ मुद्रा न दे सकने के कारण इन्हें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा परन्तु सत्य नहीं छोड़ा।

इसी सूर्यवंश में राजा सगर हुए। उनके साठ हजार पुत्र ऋषी पुलस्त्य के श्राप से सागर में भस्मक्षार हो गये थे। उन साठ हजार सगर पुत्रों को तारने के लिये महाराज भगीरथ ने घोर तपस्या

करके पावनी गंगा नदी को सागर तक लाए। गंगा का नाम भागीरथी के नाम से विख्यात हो गया। जैसा कि कवि पद्माकर ने वर्णन किया है—

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध,
यह हरिपद पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीस सीस मंडल को,
मुंडन की माल तत्काल अघहर है।
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुण्य पथ,
जन्हु-जप जोग फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल की जहर है।

प्राचीन काशी अथवा वर्तमान वाराणसी के कुछ मील उत्तर में अयोध्या नगर है। इसी भूखंड में राम का जन्म हुआ था। अयोध्या किसी समय एक विस्तृत समृद्धशाली राज्य था। प्राचीन काल में यह राज्य सूर्यवंशी एवं क्षत्री शासकों के अधीन था। उस समय अयोध्या आज जैसी श्रीहीन अवस्था में न थी। अयोध्या उत्तर कौशल राज की राजधानी थी। उस काल में अयोध्या प्रायः लगभग १०० मील लम्बा और चौबीस मील चौड़ा विस्तृत राज्य था। सुसम्पन्न, समुन्नत एवं सुव्यवस्थित राज्य था। सम्पूर्ण नगर अमरावती के सदृश्य सुसज्जित भव्य था। नगर चारो तरफ से ऊँची प्राचीरों से सर्व प्रकार सुरक्षित बनाया गया था। प्रजा के लिये सर्व प्रकार के सुख साधन सुलभ थे। सम्पूर्ण राज्य में शान्ति का वातावरण था। प्रजा निर्भीक जीवन यापन करती थीं। किसी को किसी से भय नहीं था।

सती मोह प्रसंग

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में सती मोह का प्रसंग नहीं है। इस प्रसंग का गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी अमर कीर्ति श्रीराम-चरित मानस में बाल काण्ड के आरम्भ में वर्णन किया है। यह

प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास ने शिव पुराण के सती खण्ड से लिया है। कथा है कि देवर्षि नारद ने ब्रह्मा से पूछा कि आपने प्रथम रुद्र को शंकर जो के पूर्णांशो वाला और विष्णु आदि देवों से सेवित निर्विकार ब्रह्म कहा है। ऐसे रुद्र ने विष्णु जी की प्रार्थना पर सती से विवाह करके किस प्रकार गृहस्थ आश्रम को ग्रहण किया ? ये सती और पार्वती एक ही शरीर से दो स्थानों पर कैसे उत्पन्न हुईं और वह सती पार्वती के रूप में पुनः शिव जी को कैसे प्राप्त हुईं। यह तथ्य समग्र अन्यान्य शिव चरित्र आप मुझे सुनाने की कृपा करें।

ब्रह्मा जी बोले—नारद जी ! जब मैं काम के वशीभूत होकर अपनी ही कन्या सन्ध्या से मैथुन की इच्छा करने लगा तो धर्म द्वारा स्मरण किए जाने पर भगवान शिव ने प्रकट होकर मुझे समझाया। अपने पुत्रों के सामने तिरस्कृत और अपमानित होने पर शिव जी की माया से विमोहित मुझमें प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो गई परन्तु पुत्रों के साथ विचार विमर्श करने पर भी मैं शिव जी से बदला लेने का कोई उपाय न निकाल सका। भगवान विष्णु ने मुझे बहुत कुछ समझाया पर शिव जी की मायाजाल के फंदे से मैं अपने हठ पर ही डटा रहा। भगवान शिव को मोहित करने के लिए दक्ष की स्त्री से शक्ति के जन्म लेने के लिए मैं उपासना करने लगा। मेरी साधना सफल हुई। शक्ति ने दक्ष के गृह में उमा के रूप में जन्म लिया और उसने कठोर तप करके रुद्र का वरण किया। उमा सहित शिव जी कैलाश पर विहार क्रीड़ा करने लगे।

शिवजी की माया से दक्ष मदमस्त शिवनिन्दक हो गया। उसने अपने यज्ञ में शिव जी को छोड़कर सभी आर्य देवों को निमन्त्रित किया। उसने अपनी पुत्री शिव पत्नी तक को भी आमंत्रित नहीं किया। फिर भी उमा पिता-माता के स्नेहवश शिव जी से आज्ञा लेकर अपने पिता के यज्ञ में चली गईं। वहाँ अपने पति शिव जी को न देखकर अपमानित होने के कारण वहीं यज्ञाग्नि में समर्पित हो गईं। इस अपमानजनित व्यवहार से क्रुद्ध होकर शिव जी ने अपनी जटा से उत्पन्न पुत्र वीरभद्र द्वारा सभी आर्य देवताओं

सहित ब्रह्मा विष्णु आदि को पराजित कर दक्ष का शिरोच्छेद कर दिया।

सब देवताओं के अनुनय विनय करने पर भगवान शिव प्रसन्न होकर दक्षको पुनर्जीवित कर दिया। फिर दक्ष यज्ञ सम्पन्न हुआ। सती की देह से अग्नि-ज्वाला उत्पन्न होकर जिस स्थान पर गिरी उसी का नाम ज्वालामुखी पर्वत पड़ा। यही सती हिमाचल की कन्या पार्वती के रूप में उत्पन्न हुई और पुनः शिव प्रिया हो गई। यही सती मोह की पुरातन कथा है।

इसी कथा का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने शिवपुराणान्तर्गत वर्णित अपने श्रीरामचरित मानस के बाल काण्ड में किया है जो निम्न प्रकार है।

शैव मत

अरण्यक और उपनिषदों में रुद्र का उल्लेख नहीं मिलता। बृहदारण्यक उपनिषद में अन्य देवताओं के साथ एक दो बार रुद्र का भी उल्लेख हुआ है। हाँ, ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से रुद्र देव का कितना उत्कर्ष हो चुका था इसका स्पष्ट आभास प्राप्त होता है। इस अवधि में उनको सामान्यतः ईश, महेश्वर शिव और ईशान कहा जाता है। श्वेतश्वेतर उपनिषद में वह पुरुष रुद्र ही थे। जिनको शिव और ईश भी कहा गया है। परवर्ती काल में वैदिक युग समाप्त होते होते रुद्र उपासना के स्वरूप में आमूल परिवर्तन हो गया। और रुद्र का नाम भी बदल गया और तत्पश्चात वह महेश्वर कहलाने लगे।

पाणिनी काल में शिव के विकसित स्वरूप का सबसे विश्व-सनीय प्रमाण के सूत्र हैं जिनको महेश्वर कहा गया है।

रामायण में भी शिव की उपासना केवल देवताओं द्वारा और मनुष्यों द्वारा ही नहीं अपितु दानवों द्वारा भी की जाती थी। हम देखते हैं कि शिव मनुष्यों और सुरों के ही देवता नहीं थे अपितु

दानवों के भी उपास्य देव थे। वही एक ऐसे देवता थे जिन्हें देव और दानव दोनों पूजते थे। कालान्तर में शिव भक्त शिव को देवाधिदेव परम परमेश्वर के रूप में मानने लगे। और यह भी ध्यान देने का विषय है कि वाल्मीकि रामायण में लिंग का कोई उल्लेख नहीं है। हाँ, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में स्पष्टतः लिंग शिव का उल्लेख किया है जैसे—

लिंग थापि विधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।

यद्यपि यह विवरण वाल्मीकि रामायण में नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है। वाल्मीकि रामायण में कहीं एकाध बार लिंग शिव का उल्लेख आया है जो प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

वाल्मीकि रामायण में किसी शिव मंदिर या मूर्ति का उल्लेख नहीं है। यह प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस में अति उदात्त भाव से वर्णित है, जो शिव पुराण के आधार पर वर्णित है। यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि आर्यों के आदि पूज्य देवता रुद्र थे न कि शिव। यह प्रमाण आज भी विद्यमान है। हिन्दू विवाह संस्कार रुद्री पाठोच्चार से होता है न कि शिव से। कुछ विद्वानों में ऐसे मत भी प्रचलित हो गये हैं कि शैव धर्म प्राग्वैदिक अथवा द्रविड़ संस्कृति की देन है। सोचने का मुख्य विषय यह है कि पुराणों मे यह कथा आती है कि ऋषियों ने शिव पर क्रोध किया और उन्हें श्राप दे दिया जिससे उनके लिंग के नौ टुकड़े हो गये। एक कथा यह भी है कि दक्ष ने अपने नियोजित यज्ञ में जिसमें पार्वती भी आई थी उसमें शिव को आमंत्रित योग देने का निमंत्रण नहीं दिया गया था। जिस कारण शिव ने यज्ञ को ही अपने और स पुत्र वीरभद्र द्वारा विध्वंस करा डाला। यह आर्य प्रथा के बिलकुल विरुद्ध था और इसी विद्वेष को लेकर आर्य अनार्यों में अनेक काल तक आपसी द्वन्द, विरोध और वैमनस्य चलता रहा। शिव पुराण में उल्लेख है कि आर्य हिन्दू शिव का प्रसाद नहीं खाते थे और कट्टर वैष्णव शिव देवालयों में नहीं जाते जो आज भी यह भावना कट्टर शिव और वैष्णव भक्तों पंथियों में विद्यमान है। क्योकि आर्य समुदाय यह प्रथा स्वीकार

करने में बिलकुल असहमत थे कि आर्य जन शिव को आर्य देवता के रूप में ग्रहण करें। सम्भवतः जब आर्य और अनार्यों में यौन और विवाह सम्बन्ध होने लगे तब द्राविण स्त्रियों का साथ शिव की भावना आर्यों के घर में पहुंची और निरन्तर बढ़ती गई और आर्यों में घुल मिल गए।

आचार्य क्षिति मोहन सेन शास्त्री का कहना है कि शिव जो अश्लील व्यभिचारियों की तरह नग्न भेष में आर्य बस्तियों में आया जाया करते थे। जिससे आर्य महिलाएँ काम मोहित हो जाती थीं और आर्यों द्वारा शिव लिंग के काट गिराने पर भी जहां शिव लिंग गिरा था वहीं जाकर पवित्र शिव लिंग की पूजा करती थीं और तब से शिव लिंग की पूजा आर्यों द्वारा भी होने लगी। चूंकि महादेव नग्न वेष में नवीन तापस का रूप बनाकर मुनियों के तपोबन में निर्भय जाया करते थे। अपने आश्रम में मुनियों ने आर्य महिलाओं की ऐसी अभव्य कामातुर दशा को देखकर मारो, मारो कहकर शिव के उर्ध्व लिंग को निपातित कर दिया।

पातयन्तिस्म देवस्य लिंगमूर्ध्वं विभीषणम्। वामन पुराण ४३/७१

इन कारणों से आर्य और अनार्य देव शिव से कई शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा। अंत में देव और दानवों के प्रतिनिधियों के संयुक्त संधि हो जाने के बाद निश्चय हुआ कि यदि शिव समुदाय विष्णु को सर्वोपरि देव मान लें और उनके यज्ञ में पूर्णतः योग दें तो आर्य जन भी उन्हें मान लेंगे। अन्त में जब शिव विष्णु उपासक भक्त दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित हुए तो उस दिन से विष्णु ने कहा आज से तुमको यज्ञेश्वर महादेव कहा जायगा और तब आर्यों अनार्यों का आपसी द्वन्द संघर्ष समाप्त हो गया।

दक्ष यज्ञ शिव द्वारा विध्वंस करने के कारण आर्य अनार्यों, शैव वैष्णवों में अनेक काल तक विद्रोह-वैमनस्य चला आ रहा था अंत में शिव पार्वती के परिणय सूत्र, में बँध जाने के पश्चात आपस में संधि हो गई। जैसा कि पूर्व और निम्न सती मोह प्रकरण में दर्शाया गया है।

सतीमोह

एक बार त्रेता युग माहीं। शंभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जग जननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी ॥
राम कथा मुनि बर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी ॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कहीं संभु अधिकारी पाई ॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहां रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छ कुमारी ॥
तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राज उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु विसेखी ॥
संकर जगत ब्रह्म जगदीसा। सुरनर मुनि सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
भए मगन छवि तासु बिलोकी। अजहु प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दोहा—ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥

बिष्णु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यान धाम श्रीपति असुरारी ॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥
यद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाई परीक्षा लेहू ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। समदरसी सब अंतरजामी ॥
सती कीन्ह चह तहहु दुराऊ। देखउ नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतु ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठी मग माहीं ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत संभु सुजाना ॥

सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ।।
जौ अब करउं सती सन प्रीती । मिटइ भगति पथ होइ अनीती ।।
दच्छ सकल निज सुता बोलाई । हमरे बयर तुम्हउ बिसराई ।।
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुं न दीख संभु कर भागा ।।
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सबसे कठिन जाति अपमाना ।।

दोहा—सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस ।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्ह मुनीस ।।

जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन बिधिवत फलु दीन्हा ।।
एहि कर नाम सुमिरि संसारा । तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा ।।
समरथ कहुं नहिं दोषु गोसाईं । रबि पावक सुरसरि की नाईं ।।
जब ते सती जाइ तनु त्यागा । तब ते सिव मन भयउ बिरागा ।।
जपहि सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं रामगुन ग्रामा ।।
नारद सिख जे सुनहिं नर नारी । अवसि होहि तजि भवन भिखारी ।।
जब जदुबंस कृष्न अवतारा । होइहि हरन महामहि भारा ।।
कृष्न तनय होइहिपति तोरा । वचन अन्यथा होइ न मोरा ।।
कत बिधि सृजीं नारि जगमाहीं । पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।।
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहुं न सोहाहीं ।।
सिव सम को रघुपति ब्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असनारी ।।

बाल काण्ड

रामचन्द्र जी की जन्म कथा

रामचन्द्र के पिता दशरथ परम धार्मिक महा प्रतापी राजा थे । उनके पिता महाराज अज ने असुरों के विरुद्ध युद्ध करने में देवताओं की सराहनीय सहायता की थी और युद्ध भी किया था । देवताओं ने असुरों के विरुद्ध युद्ध करने हेतु महाराज दशरथ

को भी कई एक बार बुलाया था और उन्होंने देवताओं के पक्ष से युद्ध में पूरा योगदान भी दिया था। राजा दशरथ की अनेक महिषीं थी। जिनमें तीन प्रधान थीं—यथा कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। महाराज दशरथ को संतान नहीं होती थी। एक बार महाराज दशरथ को चिन्ता हुई—

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।।

अतः उन्होंने निःसन्तान होने का दुःख चिंता राज गुरु मुनि वशिष्ठ को सुनाया। मुनि वशिष्ठ जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—महाराज धैर्य रखें। आपके एक नहीं चार पुत्र होंगे। इस कामना सिद्धि के लिए आप पुत्रेष्ठि यज्ञ करावें जिसके फलस्वरूप आपके चार दिव्य पुत्र प्राप्त होंगे।

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी।।

कुल गुरु वशिष्ठ जी के आदेश से उन्होंने पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाया पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न होने के बाद भगवान विष्णु ने तीनों रानियों के गर्भ से स्वयं चार पुत्र रूपमें जन्म धारण किया। रानी कौसल्या के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम वशिष्ठ ने राम रखा दूसरी कैकेयी के गर्भ से एक पुत्र हुआ, जिनका नाम भरत रखा गया और तीसरी सबसे छोटी रानी सुमित्रा थी जो कहीं कहीं कथानकों में दूसरी महिषी कहकर सम्बोधित की गई हैं और कैकेयी को दूसरी महिषी कहा गया है। सुमित्रा के गर्भ से दो पुत्रों का जन्म हुआ जिनका नामकरण क्रमशः लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा गया। प्रत्येक राजकुमार दिन प्रतिदिन चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। सभी राजकुमारों मे आपस में अगाध भ्रातृत्व प्रेम-स्नेह था।

जब राजकुमार बड़े हुए तो महाराज दशरथ उन्हें राज और धर्म गुरु वशिष्ठ के अधीन शिक्षा ग्रहण करने हेतु छोड़ दिया। चारो राजकुमार असाधारण मेधावी कुशाग्र बुद्धि के थे। अल्प समय में ही सभी राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर सर्व विषय में सर्व प्रकार से परिपूर्ण हो गये।

राम विवाह

राम के सर्व शास्त्र एवं शास्त्र विद्या में पारंगत होने के बाद एकदा महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ से मिलने आये। राजा दशरथ सिंहासन से उठकर स्वयं महर्षि विश्वामित्र का स्वागत अभिनन्दन करने आये। मुनि को प्रणाम करके अति आदर के साथ उनको आसन पर बैठाया। विश्वामित्र मुनि का अकस्मात आगमन देखकर सभी सभासद विस्मित हो उठे। कहने लगे यह क्या हुआ? यह क्या हुआ? सभी मुनि विश्वामित्र के तपो शक्ति और भयंकर क्रोध से भलीभाँति परिचित थे। ये ऋषि कोई साधारण ऋषि नहीं थे। राजा हरिश्चन्द्र के दुर्गति के यही मूल कारण थे। उन्होंने क्षत्री नरपति होकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। ये ब्रह्मा के विरुद्ध एकदा स्वतंत्र सृष्टि करने को उद्यत हो गये थे। इनका ऐसा ही तपोबल था। इन्होंने ही राजा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजा था। जितनी इनकी कठोर तपस्या थी उतना ही इनमें दम्भ और क्रोध था। जरा से में आग बबूला हो जाते थे। राजा दशरथ ने प्रसन्न मुद्रा में देखकर मुनि विश्वामित्र से निवेदन किया– हे मुनि! आज्ञा दीजिये आपकी क्या सेवा और प्रिय कार्य कर सकता हूं। जिससे आप प्रसन्न हों वही मैं करूँगा। मुनि विश्वामित्र ने कहा-- महाराज! मैं आग्रह करता हूं कि आप अपने पुत्र राम को मेरे साथ जाने के लिये दे देवें। मुनि विश्वामित्र का आदेश सुनकर महाराज दशरथ सहित सभी सभासदगण का मुख म्लान हो गया। महाराज दशरथ ने कहा– मुने! रामचन्द्र अभी मेरा बालक है, उनसे कौन सा आपका कार्य सिद्ध हो सकता है। विश्वामित्र मुनि ने कहा—राजन! मैं एक महायज्ञ कर रहा हूं। किन्तु मेरे यज्ञ अनुष्ठान में मारीच व सुबाहू नाम के दो राक्षस विघ्न डाल रहे हैं और राम को और उनके अनुज लक्ष्मण को तदर्थ ले जाना चाहता हूं—

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर वध मैं होब सनाथा॥

स्थिर मिच्छति राजेन्द्र रामं मेदातुमहेसि। वा. रा. १-२०-१६

विश्वामित्र ने कहा--

हे महाराज—आप राम को हमें देदें। राक्षस मेरा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न नहीं होने दे रहे हैं, राजन! आपके पुत्र रामचन्द्र धनुर्विद्या में विशेष दक्ष हो गये हैं, उनका तेज और बल भी अमित है। महाराज! रामचन्द्र ही दोनों राक्षसों का वध करने में सक्षम है। इसी हेतु हम राम को लेने आये हैं। महाराज दशरथ यह सुनकर स्तब्ध रह गये। सर्वनाश! राम अभी नितान्त बालक हैं उसे इतना दुर्दान्त काम करने के लिये कैसे दे सकते हैं। कुल गुरु महर्षि वशिष्ठ के समझाने बुझाने पर राम को महर्षि विश्वामित्र के साथ जाने के लिये महाराज सहमत हुये। मुनि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को भी साथ लेकर अपने आश्रम को आये विश्वामित्र राम को नाना प्रकार बला और अतिबला सहित अस्त्र शस्त्र विद्या की शिक्षा देकर राक्षसों के बध करने हेतु पूर्ण रूपेण सक्षम बना दिया। जाते समय मार्ग में कुछ दूर जाने के बाद महर्षि विश्वामित्र ने कहा—वत्स देखो! इसी वन में ताड़का नाम की राक्षसी वास करती है।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहि वान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।

उसी ताड़का का पुत्र मारीच है। पूर्व जन्म में यह मारीच यक्ष था, तदुपरान्त अगस्त्य के अभिशाप से वह राक्षस हो गया। हे राम! तुम इस राक्षसी का वध करके दूसरे लोक को भेज दो। राम को देखकर ताड़का ने विकराल रूप धारण कर लिया। वह राम और लक्ष्मण को निगलने दौड़ी। उसी समय राम ने अपने तेजस्वी वाणों द्वारा उसको मार कर निहत कर दिया और वह धरती पर गिर पड़ी। विश्वामित्र मुनि ने यज्ञ आरम्भ कर दिया। यज्ञ आरम्भ करने के पूर्व महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को चेतावनी देते हुये कहा—वत्स देखो! अब ताड़का के दोनों पुत्र मारीच और सुबाहू यज्ञ विध्वंस करने के निमित्त निश्चिन्त रूप से यहाँ आवेंगे। इन राक्षसों के आते ही राम ने मारीच को ऐसा वाण मारा कि वह कई योजन दूर मृत सदृश्य जाकर गिर पड़ा और सुबाहु को राम ने ऐसा वाण मारा कि उसका प्राणान्त हो गया।

महामुनि विश्वामित्र ने कहा—हे राम! यहाँ का काम शेष हो गया। अब हम तुम लोगों को साथ लेकर मिथिला चलेंगे। मिथिला नरेश जनक ने वहाँ एक बृहद यज्ञ का आयोजन किया है उसमें सम्मिलित होना नितान्त आवश्यक है। वहीं पर देवाधिदेव शंकर का एक विशाल हरधनु है वह भी तुमको दिखलायेंगे। चलो तुमको वह हरधनु दिखला लावें। मार्ग में राम और लक्ष्मण ने एक जीर्णशीर्ण निर्जन आश्रम देखा। राम ने महर्षि विश्वामित्र से पूछा—महर्षि! यह किसका आश्रम है? महर्षि ने कहा—वत्स! यह महर्षि गौतम का आश्रम है। मुनि गौतम किसी कारण विशेष वश अपनी पत्नी अहिल्या को श्राप दे अन्यत्र चले गए हैं। श्राप वश अहिल्या पाषाण सदृश्य आश्रम में अकेली पड़ी है। राम ने कहा—गुरुदेव! इसके उद्धार का भी कोई उपाय है? गुरुदेव ने कहा—हाँ! यदि तुम अपने कमल रूपी पद से इसका स्पर्श कर दो तो इसका उद्धार हो जायेगा। राम ने वैसा ही किया। पाषाण सदृश अहिल्या को पाँव से स्पर्श कर देने से अहिल्या शाप मुक्त होकर उठकर बैठ गई। राम ने ऋषि पत्नी अहिल्या की पदधूलि लेकर अपने माथे लगाया और अहिल्या ने भी राम का विधिवत पूजा की। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ का कथन है—

Next at his skilled Touch the desert soil when had fallen for long years bound in the hardness of stone becoming Ahalya not fit for ploughing resumed the blossom of life; It was the self samesoil which Rishi Goutam the foremost of the eacrly Aryan Pioneers who has striven to drive the plough southern wards, had found the acherous and had abondoned in despair.

ऋषि गौतम ने पुनः अहिल्या को ग्रहण कर लिया और सपत्नी आनन्द पूर्वक रहने लगे। महर्षि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को साथ लेकर मिथिला में उपस्थित हुये। राजा जनक महर्षि विश्वामित्र के मिथिला नगरी में आने का संवाद सुनकर अति प्रसन्न हुए और बड़े आदर सत्कार के साथ दोनों राजकुमारों सहित महर्षि को मिथिला राज महल में ले गए। महर्षि विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों का राजर्षि जनक से परिचय कराया। राजर्षि जनक

के प्रासाद में विशाल हरधनु रखा था जिसे सीता के सिवा अभी तक अन्य कोई उठा न सका था। अतः राजर्षि जनक ने प्रण किया था कि जो दिव्य पुरुष इस हरधनु की प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा उसी के साथ सीता का व्याह होगा सीता के व्याह के निमित्त स्वयम्वर का आयोजन किया गया और तदर्थ देश देश के भूपति निमन्त्रित किये गये और आए।

दीप दीप के भूपति लाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना।।
देखन बाग कुंअर दोउ आए। वय किसोर सब भाँति सुहाए।।
श्याम गौर किमि जाय बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।

उस समय की कैसी मनोहर झाँकी थी।

रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

यथा—

राम देखे सिया को सिया राम को,
चार आँखें लड़ी तो लड़ी रह गई।
राम को जब से देखी जनक नन्दिनी,
बाग में वो खड़ी की खड़ी रह गई।।
एक सखी ने कहा ये सिया के लिए,
कैसी जोड़ी रची है विधाता के घर।
पर धनुष कैसे तोड़ेंगे बारे कुंवर,
दिल में शंका पड़ी तो पड़ी रह गई।।
दूसरी सखी ने कहा ये हैं बारे कुंवर,
पर चमत्कार इनका निराला सुनो।
बाग में थी खड़ी राक्षसी ताड़का,
वो गिरी तो गिरी कि गिरी रह गई।।

सभी राजा हरधनु की प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर रहा उसे टस से मस भी न कर सके।

रावन बानु महा भट भारे। देखि सरासन गवँहि सिधारे।।
भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।।
दीप दीप के भूपति लाना। आए सुनि हम जो पन ठाना।।

कहहु काहि यह लाभु न भावा। काहू न संकर चाप चढ़ावा॥
रावन बान छुवा नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥

अन्त में राम उठे—

लेतु चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देखु सबु ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

राम ने देखते देखते हरधनु की प्रत्यंचा को इतनी सरलता पूर्वक चढ़ा दिया कि वह टूटकर दो खंड हो गया। सभा मंडप के बीच में ही राजर्षि जनक ने घोषणा की कि राम ने हरधनु भंग किया है। अतः हम सीता को राम के साथ में सुपुर्द करते हैं। पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करने के निमित्त अयोध्या से दशरथ सभी पुत्रों और पुरोहितों सहित मिथिला गए और राम का जनक सीर-ध्वज की ज्येष्ठा कन्या सीता और कनिष्ठा उर्मिला का ब्याह क्रमशः राम और लक्ष्मण से तथा सिरध्वज के कनिष्ठ भ्राता कुश-ध्वज की दो कन्याओं यथा माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का ब्याह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न के साथ सम्पन्न हुआ। तदुपरान्त महा-राज दशरथ सभी पुत्रों, पुत्रवधुओं और वर यात्रियों सहित अयोध्या वापस आये। मिथिला से वापस आते समय मार्ग में महाराज दशरथ की शिवभक्त परशुराम से भेंट हो गई। परशुराम को इसके पूर्व ही हरधनु भंग होने की सूचना मिल चुकी थी। परशुराम ने क्रुद्ध होकर राम से कहा। हरधनु भंग करके तुमने मेरा अपमान किया है। तुम्हारे में इतना बल वीर्य बढ़ गया है कि तुमने जरा भी हरधनुभंग करने में संकोच नहीं किया। अच्छा! लो, यह धनु भी हमारा हरधनु के सदृश्य ही कठोर है और इसका भी विश्वकर्मा द्वारा ही निर्माण किया गया है, इसकी प्रत्यंचा को खींच कर चढ़ा दो तो हमें धैर्य और संतोष हो जायेगा कि तुम अति बलवान महावीर्यवान हो।

परशुराम राम की शक्ति परीक्षा

परशुराम महर्षि जमदग्नि और रेणुका के औरस पुत्र थे। जमदग्नि के पाँच पुत्रों में परशुराम सबसे छोटे थे। अन्य चार

भाई थे रुमणवान, सुषेण, वसु और विश्वावसु परशुराम का अस्त्र परशु था। इस कारण इनका नाम परशुधर-परशुराम पड़ा।

एक समय जमदग्नि ने किसी कारणवश क्रुद्ध होकर अपने पाँचो पुत्रों को अपनी प्रिया रेणुका को मार डालने की आज्ञा दी। परशुराम को छोड़कर अन्य चारो पुत्र ऐसा करने से विमुख हो गए। केवल सबसे कनिष्ठ पुत्र परशुराम ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी माता रेणुका का वध कर डाला। पिता जमदग्नि ने प्रसन्न होकर परशुराम से कहा—बेटा वर माँगो। परशुराम ने कहा—पिता जी यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे पहला वर यह दें कि माता जीवित हो जांय और दूसरा यह कि यह घटना किसी अन्य को न मालूम हो सके। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर रेणुका को जीवित कर दिया।

पुराणों में परशुराम के चरित्र वीरगाथा और प्रभुत्व का अतिविस्तृत रूप में वर्णन दिया गया है। जैसे एक समय वीर सहस्त्रार्जुन को जिसने परशुराम के पिता जमदग्नि का वध कर डाला था उसके प्रतिशोध में इन्होंने वीर सहस्त्रार्जुन का वधकर डाला था। इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रीविहीन कर डाला था। 'तव एक विंशति वेर में विन क्षत्र की पृथ्वी करी'। जनकपुर में जनक नन्दिनी सीता के स्वयम्बर के समय परशुराम व राम के आपसी द्वन्द युद्ध ने बड़ा ही विकराल रूप धारण कर लिया था जिसका वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

परशुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यो क्रोधित वचन सुनाए॥
विप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि सिर नायौ।
बहुत दिनन कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुवत उठि आयौ॥
तुम तौ द्विज, कुल पूज्य हमारे हम-तुम कौन लराई।
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक-धनुष चढ़ाई॥
तबहूं रघुपति कोप न कीन्हौ, धनुष न बान संभार्‌यौ।
'सूरदास' प्रभु-रूप-समुझि, वन परशुराम पग धार्‌यौ॥

जनक राजा द्वारा आयोजित धनुष यज्ञ में पराभूत होकर परशुराम भारत के दक्षिण क्षेत्र में जाकर पर्वत पर निवास करने लगे। ये अति क्रोधी स्वभाव के उग्र, कठोर शौर्य और अति पराक्रमं स्वभाव के महावीर थे। इन्होने इक्कीस बार भूमि को क्षत्री विहीन कर डाला था। विजित राजाओं के सम्पूर्ण सम्पत्ति भूमिका अगस्त को दान स्वरूप दे दिया था। ये द्रोण के शस्त्र गुरु थे। इन्होंने जम्भासुर और शतदुन्दुभी दैत्यों का विनाश कर डाला था। इनसे पितामह भीष्म से घोर संग्राम हुआ था। देवों की मध्यस्थता और आग्रह पर संधि हो गई। ये अति वीर, क्रोधी.. पराक्रमी और हठी योद्धा थे। क्षण में क्रोध क्षण में शान्त प्रकृति के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने और ब्राह्मण होने पर भी इनमें क्षत्रियत्व गुण की अधिक भावना थी। ये भारतीय अवतारों में विष्णु के छठे अवतार थे।

राम ने परशुराम के हाथ से धनुष लेकर क्षण भर में प्रत्यंचा खींच कर चढ़ा दिया। परशुराम को निःसन्देह विश्वास हो गया कि यह निश्चितरूप से महापुरुष विष्णु स्वरूप हैं। परशुराम विस्मित होकर महेन्द्र पर्वत पर जाकर वहीं वास करने लगे। दशरथ निर्विघ्न एवं निरापद अयोध्या वापस आये। अयोध्या नगरी आनन्द विभोर हो उठी। घर घर उल्लास मनाया जाने लगा। महाराज दशरथ सानन्द पुत्रों, पुत्र वधुओं सहित रहने लगे।

अयोध्या काण्ड

राम का राज्याभिषेक

महाराज दशरथ वृद्ध हो चले थे। उन्होंने विचार किया कि राज पाट का काम छोड़कर राम का राज्याभिषेक करके राज्य का शासन भार राम को सौंप दें। मंत्रियों से परामर्श करके इसका आयोजन करने लगे। कैकेयी की दासी मंथरा को छोड़कर प्रायः

सभी को राज्याभिषेक का समाचार सुनकर अति आनन्द हुआ। मंथरा चाहती थी कैकेयी पुत्र भरत राज सिंहासन पर आसीन हों। कारण मंथरा भरत की शैशवावस्था में सेवा करती थी। राज्याभिषेक का समाचार मंथरा ने कैकेयी से जाकर कहा—तुम विश्राम कर रही हो और दूसरी तरफ तुम्हारे सर्वनाश का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इसकी कुछ भी तुमको खबर है कि राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है? कंकेयो प्रथम यह समाचार सुन अति प्रसन्न हुई और प्रफुल्लित होकर अपने कंठ का हार उपहार स्वरूप मंथरा को दे दिया। मंथरा ने विरक्त होकर हार को फेंक दिया और कहा—तुमको कुछ खबर है कि तुम्हारे परोक्ष में क्या हो रहा है। मंथरा ने कुमंत्रणा से कंकेयी के विचार को विषाक्त बना दिया और उनके मति को बिलकुल भ्रम में डाल दिया। मंथरा ने कहा—जिस दिन राम राजसिंहासन पर आसीन हो जायंगे तुम महारानी कौशल्या की दासी बनकर रहोगी और तुम्हारा पुत्र राम का दास बनकर रहेगा। कैकेयी का विचार बिलकुल बदल गया। वह मन्थरा से अपने मंगल का उपाय पूछने लगी। राजा दशरथ 'शम्बरासुर युद्ध' में घायल अवस्था में कंकेयी की सेवा से प्रसन्न होकर उनको दो वरदान दिया था। मन्थरा ने उन्हीं दोनों वरदानों का कैकेयी को स्मरण कराया। कंकेयी ने दशरथ से दोनों वरदान मांगकर जैसा कि पूर्वप्रकरण में कहा गया है, प्रथम द्वारा राम को १४ वर्ष का वनवास और दूसरे द्वारा भरत का राज्याभिषेक। राम १४ वर्ष के लिये सीता और लक्ष्मण सहित वन को चले गये। पुत्र राम के वनगमन के कारण दशरथ की मृत्यु हो गई। जिस समय यह दारुण दुखदायी घटना हुई उस समय भरत अपने ननिहाल में थे। राजा दशरथ के मृत्यु के बाद भरत मातुल गृह से अयोध्या बुलाए गये। दशरथ की मृत्यु और राम वनवास का समाचार सुनकर भरत मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। सचेत होने पर भरत ने अपनी माता कैकेयी को बहुत धिक्कारा। इस अनर्थकारी काण्ड को सुनते ही वे अचेत हो गए। सचेत होने के बाद भरत, शत्रुघ्न, माताओं और मंत्रियों सहित जिस मार्ग से राम वन को गये थे उसी मार्ग से राम को मनाने और अयोध्या वापस लाने

के लिये चल पड़े। बहुत दूर यात्रा करने के बाद राम को खोजते-खोजते चित्रकूट पहुंचे, जहाँ पर राम विश्राम कर रहे थे। भरत को सेना सहित आते देख कर लक्ष्मण अति क्रुद्ध हो उठे कि भरत राम और हमको मार कर निष्कंटक राज करने हेतु ही सेना सहित आये हैं। अतः आज ही हम भरत का बध कर डालेगें। राम ने हंसकर लक्सण से कहा—हे लक्ष्मण! तुम्हारी धारणा बिल्कुल अनर्गल है, भरत एेसे नहीं, अच्छी तरह देखो और विचार करो। लक्ष्मण ने भली-भांति देखा कि भरत पदयात्रा करते हुए दीन भाव में आ रहे हैं। लक्ष्मण यह देख कर लज्जित हो गये। भरत के मुख से पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर राम शोकार्त हो गए। शोक विमुक्त होने के बाद पिता को श्राद्ध क्रिया की। तदुपरान्त भरत ने राम से कहा—आर्य! आपको अयोध्या वापस चलना होगा, आपके बिना अयोध्या सूनी है, दिन में भी (अन्धकार) रात्रि जंसा मालूम पड़ता है। राम ने उत्तर दिया—हे भाई! पिता के सत्य वचन की रक्षा और पालन करने हेतु एेसा कदापि नहीं हो सकता। भरत ने कहा—आर्य! यह सब हमारी माता कैकेयी का षडयन्त्र था। राम ने कहा—हे भाई भरत! कैकेयी केवल तुम्हारी ही माता नहीं हैं, वे हमारी भी माता हैं। इनका अपमान न करो। वे तो वैसे ही अनुताप से दग्ध हो रही हैं। तुम अयोध्या लौट जाओ। हम अयोध्या वापस नहीं जायेगें। चौदह वर्ष तुम्हीं हमारे प्रतिनिधि रूप में अयोध्या का शासन करना। भरत राम का एक जोड़ा खड़ाऊँ लेकर अयोध्या वापस आये और उन्हीं खड़ाऊं को प्रतिदिन पूजा करके अयोध्या का शासन चलाते थे। चित्रकूट से विदा होते समय भरत ने राम से अनुनय निवेदन किया था—हे राम! यदि चौदह वर्ष उपरान्त एक दिन भी आपके अयोध्या लौटने में विलम्ब हुआ तो हम या तो अग्नि में भस्म हो जायेंगे या सरयू नदी में डूब मरेंगे। राम ने वचन दिया—हे भाई भरत! यह कुछ भी तुमको नहीं करना पड़ेगा। हम ठीक समय के भीतर अयोध्या लौटेंगे। इसका तनिक भी संकोच मत करो और मेरा विश्वास करो। दुःख इस बात का है कि अयोध्या लौटने पर हम पिता को न देख सकेंगे। तुम अयोध्या जाकर गुरुजनों को मेरा प्रणाम कहना। सबको मेरा

यथोचित और प्रजा जन को मेरा आशीर्वाद ज्ञापन करना। सबको कहना—हम अच्छी तरह हैं। यह सुनकर भरत की आंखों में अश्रु की धारा बहने लगी और थोड़ा रुक कर भरत ने कहा -आर्य ! राज प्रासाद में सुख-विलास में भोग करने वाले आज बन में चीर वस्त्र धारण कर फल-मूल खाकर व्यतीत कर रहे हैं, यह हमको सह्य नहीं है। भरत, शत्रुघ्न ने रोते-रोते राम को प्रणाम किया, सीता की चरण धूल ली और लक्ष्मण का आलिंगन करके नतमस्तक हो करके सिर पर लाया पादुका का जोड़ा राज सिंहासन पर रख कर भरत ने राज प्रासाद से कुछ दूर नन्दो ग्राम में रह कर चौदह वर्ष राम के ध्यान में (तप रूप में) व्यतीत किया।

अरण्य काण्ड

राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट छोड़कर पंचवटी बन में आये। यह स्थान दण्डकारण्य का भूभाग था। दण्डकारण्य इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा दण्डक का बसाया हुआ अति रमणीय स्थान था। पंचवटी की शोभा अतुलनीय थी। कालान्तर में इस पर राक्षसों का अधिकार हो गया था और इसके समीप (रावण भगिनी क्षेत्र में) सूपर्णषा का शासन था। इसी पंचवटी के समीप सर्व प्रथम राम की जटायु से भेंट हुई थी। जटायु दशरथ का सखा था। पंचवटी में राम व लक्ष्मण द्वारा कुटी तैयार करने में जटायु ने काफी सहयोग दिया था। सूपर्णषा एक दिन राम के समीप आई और राम के सौंदर्य और सौम्य मूर्ति को देखकर मोहित हो गई। उसने राम के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। राम ने सूपर्णषा से कहा—कि मैं विवाहित हूं परन्तु मेरा छोटा भाई अविवाहित है उससे कहो। लक्ष्मण ने सूपर्णषा के दूषित विचार को देखकर उसके नाक-कान काट कर उसे सदा के लिए कुरूप बना दिया।

नाक-कान बिन भइ बिकराला—

नाक कान विच्छेद होने के बाद सूपर्णषा रोती हुई अपने भाई रावण के पास गई। रावण सूपर्णषा की दशा देख कर अति क्रोधित हुआ और प्रतिशोध लेने की भावना से षड्यन्त्र रचने लगा। रावण

ने राम से प्रतिशोध हेतु ताड़का पुत्र मारीच को मिलाया। मारीच सोने की माया मृग का रूप धारण कर राम की कुटी के सामने घूमने लगा। सीता स्वर्ण मृग देख कर मोहित हो गई और राम को स्वर्ण मृग पकड़ कर लाने को कहा। राम के बहुत समझाने पर कि स्वर्ण मृग कदापि नहीं होता। फिर भी सीता के हठ पर स्वर्णमृग को पकड़ने हेतु धनुष वाण लेकर राम मृग के पीछे दौड़ पड़े। स्वर्णमृग राम के आश्रम से बहुत दूर भाग गया। स्वर्णमृग ने वहाँ से लक्ष्मण को धोखा देने के लिये लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा-हे लक्ष्मण! हम राम हैं और मेरी रक्षा निमित्त तुम शीघ्र मेरे पास आ जाओ। यह मायाजाल और छल कपट सीता की समझ में नहीं आई और उन्होंने हठवश लक्ष्मण को भाई की रक्षा हेतु राम के पास भेज दिया। इधर सीता को आश्रम में अकेली पाकर रावण छद्म भेष बनाकर छलपूर्वक उनका अपहरण कर अपने नगर लंका में उठा ले गया। राम और लक्ष्मण लौट कर आश्रम में आये। वहां पर सीता नहीं दिखाई पड़ी और आश्रम बिलकुल सूना मिला। वे समझ गये कि सीता का अपहरण हुआ है इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं। सीता को खोजने राम और लक्ष्मण आगे बढ़े। जाते समय मार्ग में उनको सीता का एक आभूषण मिला जिससे यह और निश्चय हो गया कि निःस्सन्देह कोई सीता का अपहरण करके ले गया। कुछ दूर और जाने पर सीता का एक और आभूषण मिला। हाय, हाय। राम ने कहा—सीता का जैसे भी हो उद्धार करना ही होगा और आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने जटायू को देखा, जटायू ने राम को देखा और कहा—कौन, राम! राम ने कहा—हाँ चाचा! हम राम और लक्ष्मण हैं। आप यहाँ पर ऐसी अवस्था में क्यों पड़े हैं। जटायू ने कहा—लंका का राजा सीता का अपहरण करके ले गया है। हमने बाधा दिया तो उसने ऐसी हमारी अवस्था कर डाली है।

नाथ दसानन यह गति कीन्हीं।
तेहि खल जनक सुता हरि लीन्ही॥

यह कहते-कहते जटायु ने अपना प्राण त्याग दिया। राम लक्ष्मण जटायू का दाह संस्कार करके सीता के अन्वेषण के लिए आगे बढ़े।

आगे चले बहुरि रघुरायी। ऋष्यमूक पर्वत नियरायी ॥ रा.च.मा.४

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव राम की मित्रता हुई।

तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥
रा. च. मा. ४-४

किष्किन्धा काण्ड

राम आगे चले। चलते-चलते किष्किन्धा राज में पहुंचे। वहाँ का राजा बालि था। उसका छोटा भाई सुग्रीव था। सीता का अन्वेषण करते करते राम लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुंचे जहाँ सुग्रीव रहता था। राम लक्ष्मण को आते देखकर सुग्रीव के मन में शंका हुई कि निश्चय वालि ने इनको हमारा पता लगाने के लिये भेजा है। सुग्रीव के सचिव हनुमान थे। सुग्रीव ने हनुमान को आदेश दिया और कहा—हनुमान! तुम जाकर देखो। यदि ये बालि के भेजे हों तो हम लोग इस पर्वत को छोड़कर कहीं अन्यत्र सुरक्षित स्थान को भाग जाँय। हनुमान ने राम लक्ष्मण से भेंट करके राम और सुग्रीव की मित्रता करा दी। राम और सुग्रीव दोनों ही पत्नी वियोग से दुखी थे। कारण सुग्रीव के ज्येष्ठ भ्राता बालि ने सुग्रीव के पत्नी रूमा को बलपूर्वक अपनी भार्या बनाकर रख लिया था। राम और सुग्रीव ने अग्नि की सपथ खाकर एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। राम ने वालि का वध करके सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बना दिया। बालि और सुग्रीव बानर राजा थे। सुग्रीव ने राम को बताया कि सीता को हर कर रावण अपने राज्य लंका में ले गया है।

रावण जब सीता को अपने वायुयान (रथ) पर बैठाकर ले जा रहा था तो सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे सुग्रीव आदि को देखकर अपने कुछ आभूषण पर्वत पर गिरा दिये थे। जो सुग्रीव ने पहिचानने के लिए राम को दिखाया। राम ने लक्ष्मण से पूछा—लक्ष्मण! इनमें से किसी आभूषण को पहचान सकते हो? लक्ष्मण ने कहा—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात् ॥
वा. रा. ४-६-२२

लक्ष्मण ने कहा—भैया ! हमने तो माता जानकी का आजतक मुख मंडल देखा ही नहीं, फिर उनके केयूर और कुंडल को कैसे पहचान सकता हूं। मैं तो सदा उनके पावों की ही वन्दना करता रहा हूं। राम ने कहा—यह कैसे हो सकता है ? फारसी में इसका बड़ा ही सुन्दर उत्तर है।

तन सरा पै रहम न उरिया न दीदम।
कि चूं जान दर ते न तन जान दीदम ॥

जिस प्रकार शरीर आत्मा को नहीं देख सकती किन्तु आत्मा शरीर को देखती है उसी प्रकार शरीररूपी लक्ष्मण ने माता मुख को नही देखा पर आत्मरूपी सीता ने लक्ष्मण को देखा है। हनुमान सागर पार करके लंका गए। लंका को भस्म कर अविलम्ब हनुमान सीता को सुधि लेकर राम के पास वापस आए। हनुमान ने सीता को लंका में जिस प्रकार रहते देखा सब वृत्तान्त राम को कह सुनाया। लंका में हनुमान ने रावण के भाई राम भक्त बिभीषण से मित्रता करके उसे राम से मिला दिया। विभीषण के मिलने से राम को लंका पर विजय पाने में काफी सहायता मिली। राम ने प्रतिज्ञा की—हे विभीषण ! तुम्हें आज ही लंका का अधिपति वना देता हूं। रावण के मृत्योपरान्त तुम्हीं लंका के राजा होगे।

सुन्दरकाण्ड

सीता का अन्वेषण करके हनुमान ने सीता के दिये हुए चूड़ामणि को लाकर राम को दिया। हनुमान ने राम से कहा ! भगवन ! लंका में सीता दारुण कष्ट भोग रही हैं। आपके बिना उनका एक-एक क्षण काल के समान बीत रहा है। अतः उनके उद्धार का आप कोई शीघ्र उपाय करें, नहीं तो वह प्राण त्याग देंगी। सीता का दिया हुआ चूड़ामणि लेकर राम हृदय से लगाकर रोने लगे।

सीता ने लंका में हनुमान को अपना चूड़ामणि आभूषण देते हुए कहा था—

त्रिक्षाप्यश्च नर व्याघ्रो रामो वायु सुत त्वया।
अखिलेनेह यद् दृष्ट मिति सामाह जानकी॥
वा० रा० सुन्दर ६५-२१

एष चूड़ामणिः श्रीमान् मया सुपरि रक्षितः।
ब्रुवता बचना न्येवं सुग्रीव स्योपश्रृण्वतः॥
वा० रा० ५-६५-२२

हनुमान ने कहा—इस मणि को मैं बड़े यत्न से लाया हूं। लंका में जाकर हनुमान ने जब सीता का अनुसंधान कर लिया तो रावण को बहुत चिन्ता हुई और सोचने लगा कि अब कुशल नहीं है। राम और लक्ष्मण निश्चय सीता का उद्धार करने हेतु लंका पर चढ़ाई करेंगे। विजया दशमी के दिन शुभ मुहूर्त में राम ने बानरी सेना सहित लंका पर चढ़ाई कर दो। सागर पार कर सेना सहित लंका में जाकर लंका को घेर लिया। सम्पूर्ण रावण वश और रावण की सेना का संहार कर राम ने लंका पर विजय पाई। सीता का उद्धार हुआ। सोताराम की शरण में आ गई। राम और सीता की जय जय कार होने लगी।

उत्तर काण्ड

लंका पर विजय पाने के बाद राम ने रावण के छोटे भाई विभीषण का अभिषेक करके लंका का अधिपति बना दिया। तदुपरान्त विमान में बैठकर बानरो सेना सहित राम, लक्ष्मण सीता अयोध्या आये। चौदह वर्ष के बनवास का यह अंतिम दिन था। यदि चौदह वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त राम अयोध्या लौट कर न आते तो भरत अपना प्राण त्याग देते। राम के अयोध्या लौटने पर सम्पूर्ण अयोध्या नगर आनन्दमय हो गया। सर्वत्र राम की जय जयकार होने लगी। राम को अयोध्या के सिंहासन पर आसीन करके सबकी अभिलाषा पूर्ण हुई और राम सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

दशरथ का पुत्रेष्ठि यज्ञ

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विशाला॥
निज दुखसुख सब गुरहि सुनायउ। कहि वशिष्ठ बहु विधि समझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुतचारो। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी॥
सृंगिहि रिषिहि वशिष्ठ बोलावा। पुत्र काम प्रभु जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रकटे अगिन चारु कर लीन्हें॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

दशरथ

महाराज दशरथ की तीन प्रमुख रानियों यथा कौसल्या सुमित्रा व कैकेयी के अतिरिक्त उनकी और भी रक्षिता रानियाँ अथवा पटरानियाँ थीं जिनमें क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र जातियों की थी ऐसा भी वर्णन मिलता है परन्तु यह सर्वमान्य नहीं है।

होताध्वर्युस्तथोद्गाता हस्तेव समयोजयन्।
महिष्या परिवृत्या च बावातामपरां तथा॥
बा० रा० १।१४।३५

इनमें से किसी से भी सन्तान नहीं हुई थी। संतान हेतु महाराज ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया जिससे कौशल्या के गर्भ से राम, सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और कैकेयी के गर्भ से भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। यज्ञ में पायस का बंटन सभी रानियों को सम भाग में नहीं किया फिर भी किसी महिषी ने इसका विरोध नहीं किया कि ऐसा पक्षपात या भेद क्यों किया गया। इसका यही कारण हो सकता है कि पायस यज्ञ का प्रसाद था और धार्मिक प्रसाद वितरण में कोई भी प्रश्न नहीं करता। मिथिला नरेश राजा जनक कुशध्वज की दो पुत्रियों यथा जानकी सीता का राम से और उर्मिला का व्याह लक्ष्मण से तथा सिरध्वज जनक की दो कन्याओं यथा माण्डवी और श्रुतकीर्ति का व्याह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से

हुआ। दशरथ यथा समय राज्य के मंत्रियों, सभासदों एवं प्रजा की सहमति से राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करने लगे और तदर्थ देश के प्रायः सभी सम्बन्धियों एवं राजाओं को राज्याभिषेक के अवसर पर सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण भेजा परन्तु प्रधान सम्बन्धी राजा जनक एवं कैकय नरेश का शंकावश निमंत्रण नहीं भेजा, यही महाराज दशरथ की प्रच्छन्न नीति सभी विपदाओं का कारण हुई।

दशरथ का जीवन वृत्त

जो भी रामायण का पाठ करता है दशरथ का कैकेयी को दो वरदान देकर राम को वन भेजवाने पर अवश्यमेव वह कुछ न कुछ असन्तोष प्रकट करता होगा। किन्तु उन्होंने क्या अन्याय किया सर्व प्रथम इसी पर विचार करना है। उस युग में सत्य वचन का पालन करना ही परम धर्म समझा जाता था। मुख से जो प्रतिज्ञा की उसका पालन करना ही परम धर्म समझते थे। जो वचन दिया गया वह कभी मिथ्या न होने पावे यही उस समय की मर्यादा थी। मिथ्या से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं समझते थे। महाराज दशरथ उसी युग के पुरुष थे जो अतिशय धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ और विवेकशील राजा थे। सुतरां कैकेयी को जो प्रति श्रुति दिया था उसी के कारण राम का वनबास हुआ और इसी कारण जैसा कि साधारणतः समझा जाता है उनका प्राण विसर्जन हुआ।

यहाँ मुख्य प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने ऐसा प्रतिश्रुति दिया क्यों? कारण धर्म परायण सत्यनिष्ठ राजा का कर्तव्य है कि वह दिये हुए वचन का किसी भी मूल्य पर पालन करे। दूसरे कैकेयी के प्रति उनका कुछ अधिक प्रेम था। अवश्य किन्तु कैकेयी ने भी उनके लिये कुछ कम त्याग और सेवा नहीं किया था। कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ की जो सेवाएं की हैं वह असाधारण हैं। यह स्वभाविक है कि जो अधिक सेवा करता है उसके प्रति स्नेह भी अधिक होता है। पूर्व परिच्छेद में कहा जा चुका है कि

वाल्मीकि ने रामायण के प्रत्येक पात्र पात्री का चरित्र मनुष्य रूप में ही चित्रित किया है। मनुष्य के लिये जो स्वाभाविक है वही दशरथ ने किया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह करने के समय कैकेयी के पिता से प्रतिज्ञा किया था—राम ने कहा—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्य शुल्कमनुत्तमम्॥

तुम्हारो कन्या कैकेयी से जो पुत्र उत्पन्न होगा, राज्य पायेगा। राम ने भरत से कहा—

देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभु॥

देवासुर संग्राम में तुम्हारी माता ने पिता जी की विशेष सेवा की थी। उससे प्रसन्न होकर तुम्हारी माता को वरदान भी दे चुके थे।

कैकेयी को दो वर देने का बचन बहुत दिन आगे विवाह के समय ही दिया था और उसका पालन करना अनिवार्य था, अन्यथा उन्हें सत्यभ्रष्ट होना पड़ता। कैकेयी और भरत से शंकित होने के कारण राम के राज्याभिषेक के अवसर पर भरत को मातुल गृह भेजना ही दशरथ की महती अदूरदर्शिता और भूल थी। उन्होंने सोचा कि भरत के राम के राज्याभिषेक के समय उपस्थित रहने से राज्याभिषेक में बाधा पड़ सकता है। इसी कारण महाराज ने भरत को मातुल गृह से नहीं बुलाया।

दशरथ चरित्र

भरत के प्रति महाराज दशरथ का शंका करना ही सब अनर्थों का मूल कारण था। जैसे—

भरत से सुत पर भी सन्देह। बुलाया तक न उसे जो गेह॥
मैथिली शरण साकेत

ऐसी आशंका के कारण भरत को मातुल गृह भेज दिया। दशरथ को ऐसा कदापि विश्वास नहीं था कि कैकेयी ऐसे वरदान

माँग ही लेगी। यद्यपि वे सशंकित थे कारण कैकेयी भरत को अपेक्षा राम से अधिक स्नेह करती थीं। यह बात सभी जानते थे। कैकेयी को वरदान देने से दशरथ को कितना कष्ट हुआ यह भी सभी जानते हैं। इसके उपरान्त दशरथ ने कैकेयी का कितना विनय प्रार्थना, भर्त्सना, कितना कटु शब्द और अपमान किया फिर भी कैकेयी प्रतिश्रुति वर लेने से लेश मात्र भी विमुख नहीं हुई। यहाँ तक कि दशरथ लज्जावश राम के सम्मुख भी नहीं जा सकते थे। राम वनगमन के समय राम से दशरथ ने यह भी कहा था– हे राम! हमारी आज्ञा का उल्लंघन कर जाओ। अन्त में राम राज्य, प्रजा, माता गुरु सबको छोड़कर वन को चले गए। राजा ने कैकेयी से कहा—अब तुमसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। तदुपरान्त राजा दशरथ का सात दिन के बाद देहावसान हो गया।

दशरथ

कैकेयी पर हुए आप आसक्त वृथा क्यों ?
दशरथ ! नृप को नहीं जानते रहे प्रथा क्यों ?
जो होगा आसक्त वधू के भूप रूप में,
क्यों न गिरेगा वही अन्ध ही काम कूप में।

अबलाओं के चरित जानना अति दुस्तर है,
दशरथ ! उनका शास्त्र कठिन है, अति विस्तर है।
फिर तुमने कामान्ध उसे पहिचाने कैसे ?
भव सागर का तरण अज्ञजन जाने कैसे ?

क्यों न बुलाये गए भरत राज्याभिषेक में ?
दशरथ ! क्यों गिर गए आप बालाऽविवेक में ?
निश्चय ही इस हेतु दाल में था कुछ काला,
हुआ अन्त में वही, रहा जो होने वाला।

मिले राम जो तुम्हें. भले कर्मों का फल था,
पापों का परिणाम आपका किन्तु अचल था,
नहीं हुई अन्त्येष्टि इसी से उनके कर से,
भूप ! मरे भी आप राम के विरह-ज्वर से।

दशरथ की अनैतिकता—

दशरथ और कैकेयी दोनों ही प्यार के अत्याचार में प्रवृत्त हैं कैकेयी दशरथ के ऊपर और दशरथ कैकेयी के ऊपर प्यार के वशीभूत आचरण करते दीखते हैं। इनमें से कैकेयी का काय स्वार्थपरत और कुकृत्यों से परिचित हैं। कैकयी का कार्यपरत और दुष्कृत अवश्य है किन्तु उसके प्रति इतनी कटोक्तियों का प्रयोग शायद विहित नहीं कहा जा सकता। कैकयी ने अपने किसी इष्ट की कामना नहीं की अपने पुत्र की भलाई के लिए की। यह सत्य है कि पुत्र क मंगल से ही माता का मंगल है; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो एतद्देशीय माता पिता अपनी जाति के भय से पुत्र को पढ़ने के लिए विदेश नहीं जाने देते उनके कार्य की अपेक्षा कैकेयी का यह कार्य सौगुना अस्वार्थपरत है।

सत्य सदा सर्वत्र पालनीय है? इसके निर्णय करने के पहले प्रश्न यह है कि सत्य पालनीय क्यों है? सत्य पालन न करने से दूसरों का अनिष्ट होता है इसलिए सत्य पालनीय है। किन्तु जब सत्य पालन से दूसरों का भारी अनिष्ट होता है और सत्य का पालन न करने से वैसा न होता हो, तब सत्य पालनीय नहीं। दशरथ के सत्य पालन से राम का भारी अनिष्ट हुआ। और सत्य का पालन न करने से कैकेयी का वैसा कुछ अनिष्ट होता रहा। दृष्टान्त स्वरूप से जनमानस का अनिष्ट सो राम को उनके अधिकार से भ्रष्ट करने में ही उसकी आशंका अधिक है। अतः ऐसी परिस्थिति में दशरथ ने सत्य का पालन करके ही महापाप किया। यहाँ पर दशरथ स्वार्थपरता से खाली नहीं है। सत्य भंग होने के कारण जगत में उनके कलंक की घोषणा होगी, इसी भय से उन्होंने राम को उनके अधिकार से च्युत और बहिष्कृत कर दिया। अतएव यशोरक्षार्थ स्वार्थ के वशीभूत होकर उन्होंने राम का अनिष्ट किया। सच है उन्होने अपने प्राणों की हानि भी स्वीकार की, किन्तु ऊनके निकट प्राणों की अपेक्षा यश ही प्रिय था। अतएव ऊन्होंने अपने इष्ट की ही रक्षा की। इसलिए वे स्वार्थ पर हैं। स्वार्थपरता के दोष से युक्त पराया अनिष्ट निस्सन्देह घोरतर पाप है।

कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ।
नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ।।

दशरथ ने कहा—ओ पापिनी, दुराचारिणी और इस कुल का नाश करने वाली डाइन ! वे इतने क्रुद्ध हुए मानों अपने तेज से कैकेयी को जलाकर भस्म कर देगें । फिर दशरथ ने कहा—

तस्यैव त्वमनर्थाय किं निमित्तमि होद्यता ।
त्वं मयात्म विनाशाय भवनं स्वं निवेशिता ।।
अविज्ञानान्नृपसुता व्याली तीक्ष्णविषा यथा ।
जीव लोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ।।

उस राम का अनर्थ करने के लिए तू कमर कसे हुई है ? क्या मैंने अपना सर्वनाश करने के लिए ही तुझे अपने घर में बसाया है अनजाने में एक तीक्ष्ण विषवाली नागिन को मैं रजपुत्री समझ बैठा था । जब कि सारा संसार राम के गुणों की प्रशंसा करताहै ।

चिरं खलु मयापापे त्वं पापेनामि रक्षिता ।

ओ पापिनी ! मुझ पापी ने तुझ डाइन को इसी तरह गले लगा रखा था जैसे कोई धनी धनरूपी रस्सी को गले लगा रखा हो ।

न ते करिष्यामि बचः सुदारुणं ममाहितं केकय राज पांसने ।
क्षुरोपमां नित्यमसत्प्रियंवदां प्रदुष्टभावां स्वकुलोप घातिनीम् ।।

ओ केकय नरेश की कलंक ! अब तू चाहे कितना ही शोक कर आग में कूद कर जल जा, विष खाकर प्राण दे दे अथवा गहरा गढ़ा खोदकर ऊसी में समा जा, तेरे इन अतिशय कठोर वचनों को मैं कदापि न मानूँगा ।

न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव ।
छन्नया चलित स्त्वस्मि स्त्रिया छन्नाग्नि कल्पया ।।
वञ्चना या तुलुब्धा मे तां त्वं निस्ततुंमिच्छसि ।
अनया वृत्त साधिन्या कैकेय्याभि प्रचोदितः ।।

हे राघव ! मैं शपथ खाकर कहता हूं कि तुम्हें वन भेजना मुझे पसन्द नहीं है । यह तो राख से ढकी आग के समान इस स्त्री के धोखे में पड़ कर मुझे यह अनर्थ देखना पड़ रहा है ।

हे पुत्र ! इस डायन के द्वारा मुझे जो धोखा खाना पड़ा है तुम

उससे किसी तरह मुझे पार करना चाहते हो अथवा सत्य से भ्रष्ट करना चाहते हो। महाराज दशरथ ने राम के राज्याभिषेक के पूर्व भरत को दुर्भावना वश मातुल गृह को भेजकर भयंकर भूल किया था और भरत के प्राकृत चरित्र का भी ठीक-ठीक मुल्यांकन अथवा अनुमान न कर सकने के कारण नाना प्रकार का कष्ट भोगना पड़ा। यदि भरत को मातुल गृह न भेजे होते तो राम के बनवास जैसा अनर्थकारी काण्ड ही नहीं होता।

विप्रोपितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
लाव देवाभिषेकस्तेप्राप्त कालो मतोमम ॥

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः।
ज्येष्ठानुवर्ती धमात्मासानुक्रोशो जितेन्द्रियः ॥

किं तु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिते मे मतिः।
सतां च धर्मं नित्यानां कृत शोभि च राघव ॥

संयोग की बात है कि भरत के चले जाने पर तुम्हारे अभिषेक का विचार ऊत्पन्न हुआ। निःसन्देह तुम्हारे भ्राता भरत सदाचारी, तुम्हारे अनुगामी धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय हैं। फिर भी मनुष्यों का चित्त चंचल होता है। बड़े बड़े विवेकियों का मन भी कभी-कभी रागद्वेष से विषाक्त हो जाया करता है। महाराज दशरथ ने कैकेयी से विवाह करने के समय जो दो वरदान दिए थे कि एक के अनुसार अयोध्या के राजसिंहासन पर कैकेयी ही का पुत्र बैठेगा इसका अर्थ यह नहीं रहा होगा कि ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटा पुत्र राज सिंहासन पर बैठाया जायगा और ऐसा होता भी नहीं तथा राजधर्म के विलकुल विपरीत था। उनका तात्पर्य तो यह रहा होगा कि यदि कैकेयी का पुत्र ज्येष्ठ होगा तो वह राज्य का अधिकारी होगा अन्य नहीं। क्योंकि भरत ने भी कहा है—

रामस्य बचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह।
किं में धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति ॥
शाश्वतोयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासुनरर्षभ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राज्ञां कनीयन्न भवेन्नृपः ॥ २।१०२।२

सुसमृद्धांमया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव।
अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः॥ २।१०२।३

भगवन्! मैं अपने धर्म से च्युत हो चुका हूं। अतएव हमारे लिए धर्मोपदेश व्यर्थ है। हमारे कुल में सदा से यह रीति चली आ रही है कि बड़े भाई के रहते छोटा भाई राजा नहीं होता। अतएव हे राम! आप इस कुल के कल्याणार्थं हमारे साथ अयोध्या को लौट चलें और वहाँ अपना अभिषेक करायें।

दशरथ के मृत्यु का कारण राम का वनवास नहीं अपितु अन्ध मुनि सान्त्वन का श्राप था। यह बिलकुल सत्य है कि राम को बनगमन के कारण दशरथ को दुःसह कष्ट उठाना पड़ा पर यह कहना कि इसी कारण उनकी मृत्यु भी हुई सर्वथा उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। महाराज दशरथ जैसे पुरुषार्थी धैर्यवान पुरुष का केवल पुत्र गमन के शोक के कारण मृत्यु हो जाय कदापि स्वीकार करने योग्य नहीं है। वास्तव में दशरथ की मृत्यु अन्ध मुनि सान्त्वन के एक मात्र पुत्र विद्या श्रवण कुमार का दशरथ द्वारा आखेट करते समय वध करने के कारण हुआ था। दशरथ ने वन में आखेट करते समय जब श्रवण कुमार जलाशय से अपने माता पिता के जोने के लिये जल लेने गया था और मटकी में पानी भर रहा था उसी समय पानी भरते समय मटकी में से निकलते हुए शब्द को दशरथ ने किसी हाथी को जल पीते समझ कर श्रवण कुमार को तीर से मार दिया और उसका प्राणान्त हो गया।

त्वयातु यद विज्ञानान्निहतो में सुतः शुचिः।
तेन त्वाम भिशप्स्यामि स दुःखमति दारुणम्॥
पुत्र व्यसनजं दुःखं यदे तन्ममसाम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्र शोकेन राजन कालं गमिष्यसि॥

महाराज दशरथ वन में आखेट करते समय अन्ध मुनि सान्त्वन के बेटे का अनजान में वध कर डाला था। बेटे के मृत्यु से दुखित होकर अन्ध मुनि ने दशरथ को श्राप दिया था कि जैसे तुमने मेरे पुत्र का वध किया है मैं तुमको भी बहुत कठोर दुःखदायी श्राप दूंगा। तुम्हें भी पुत्र वियोग का दारुण दुःख भोगना होगा।

राम जन्म

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा ।।

दोहा—सुर समूह विनती करि, पहुंचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ।।

सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा ।।

भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न—

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत मैं ओऊ ।।
विस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ।।
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा ।।

दोहा—लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ।।

सगुनहि अगुनहि नहि कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज सोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना ।।
हरि अनन्त हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब संता ।।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरूपाधि अरूपा ।।
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थम कहि जाइ न सोई ।।
राम जनम कै हेतु अनेका। परम विचित्र एक ते एका ।।
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नानाविधि करही ।।
संभु विरंचि विष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ।।

दोहा—विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तन, माया गुन गोपार ।।

नाना मति राम अवतारा। रामायण सत कोटि अपारा ।।
कलप भेद हरि चरित सुहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए ।।

रामचरित्र—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ।।

महर्षि बाल्मीकि मुनि नारद से पूछते हैं—

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतुहलं हिमे।
महर्षे त्वं समर्थऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ।।
बा. रा. १-१-५

अर्थात—इस समय संसार में गुणी, पराक्रमी, धर्मज्ञ, सत्य-वक्ता और दृढ़ व्रती पुरुष कौन है ? सदाचारी, सब प्राणियों का कल्याण कारी, विद्वान, सामर्थ्यवान तथा सुन्दर पुरुष कौन है ? मुझे बताएँ। उत्तर में नारद ने कहा—

समग्रा रूपिणी लक्ष्मी: कमेकं संश्रृता नरम्।
देवस्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम् ।।

अर्थात– ऐसा कौन पुरुष है जिसका आश्रय लेकर समग्र लक्ष्मी उसका वरण करती है ?

उतना गुणवान पुरुष तो देवताओं में भी दुर्लभ है परन्तु जिस चन्द्र रूपी नर में ये सर्व गुण है उसकी कथा सुने। वाल्मीकि के ये वचन सुनकर नारद जी ने कहा—आप ने जो जो गुण गिनाए हैं, उनमें बहुत से दुर्लभ हैं। फिर भी हे मुने ! उन गुणों से युक्त मनुष्य को मैं बताता हूँ। आप सुने।
नारद मुनि कहते हैं—

हे वाल्मीकि मुनि ! मैंने उन्हीं दशरथ नन्दन श्री राम के गुणों का वर्णन किया जो नरों में नरोत्तम और पुरुषों में पुरुषोत्तम हैं। पुरुषों में उत्तम जिसकी सीमा है राम। राम चरित की महिमा और विचित्रता अकल्पनीय है।

वाल्मीकि ने यद्यपि राम चरित का नर श्रेष्ठ रूप में ही वर्णन किया है परन्तु स्थान स्थान पर समय समय पर उनका विष्णु के अवतारी रूप में भी वर्णन किया है। अनेको का कहना है कि अवतारी रूप में जो वर्णन किया गया है वह प्रक्षिप्त है। यदि इसे प्रक्षिप्त भी मान लिया जाय तो भी रामायण के प्रत्येक संस्करण में अवतारी रूप में वर्णन पाया जाता है। साधारण मनुष्य भी देवत्व को प्राप्त कर सकता है यही दर्शाने हेतु वाल्मीकि मुनि ने उन्हें यदा कदा अवतारी रूप में वर्णन किया है। इसीं

प्रकार प्रत्येक मनुष्य में देवत्व प्राप्त करने की आकांक्षा रहती है परन्तु सबको ऐसा फलित नहीं होता। किन्तु रामचन्द्र ने मनुष्य होते हुए भी देवत्व को प्राप्त किया।

रामचरित त्रिवेणी का संगम, गंगा यमुना व सरस्वती तीन वहिनों का मिलन, भक्ति रूपी गंगा, प्रेम रूपी यमुना, भक्ति रूपी सरस्वती, ज्ञान, प्रेम व भक्ति का भव्य मिलन। राम का चरित जटिल विचित्र और बहुमुखी धारा में प्रवाहित हुआ है। संसार में एक ही मनुष्य के चरित्र में ऐसी विचित्रता देखने को नहीं मिलती। राम ने बारह वर्ष की आयु से मृत्यु पर्यन्त एक से एक महत कार्य सम्पादन किया है। आधुनिक विचारधारा एवं सामाजिक मानदण्ड के दृष्टि से यदा कदा धर्म विपरीत कार्य भी करते पाये जाते हैं। जैसे—बालि बध, सीता के प्रति यदा कदा कर्कश शब्दों का प्रयोग, सीता की अग्नि परीक्षा एवं सीता परित्याग की घटनायें ? परन्तु सूक्ष्म लौकिक सर्वांगीण दृष्टि से देखा जाय तो उनके सभी कृत कर्म सनातन धर्मानुकूल, शास्त्रानुकूल आर्योचित और राष्ट्रहित के लिये उपयुक्त थे। राम के दोषारोपण की विषद व्याख्या, उनके समाधान और निरुपण परवर्ती परिच्छेद में किया जायगा।

गो० तुलसीदास जी ने कहा है—

जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त जी ने भी ऐसा ही कहा हैं यथा—

मानव भी श्रीराम हैं, अति मानव श्रीराम।
उसी रूप में वे सुलभ, जिसको जिससे काम॥

अयोध्या काण्ड में राम के अनेक मानवीकृत कार्य और चरित्र का अपूर्व वर्णन मिलता है। आदि काण्ड में उनके पराक्रम और शौर्य का अद्भुत परिचय मिलता है। जैसे–ताड़का वध, हर धनुषभंग, परशुराम की पराजय, इत्यादि। अवतारीरूप में उनका चरित्र अलौकिक है और मानवी दृष्टि से लौकिक है। मानवी दृष्टिकोण से अवश्य उनमें दुर्बलता भी थी पर साथ ही साथ अ-

मानवी अवतारी गुण भी थे और देवत्व गुण होते हुए भी मानवी स्वभाव से वंचित नहीं रहे। इस तरह एक ही पुरुष में देवत्व और मनुष्यत्व देखने को नहीं मिलता। यही आदि कवि बाल्मीकि मुनि के आदि काव्य का महत्व और विशेषता है।

अयोध्या काण्ड में मानवरूपा राम के चरित्र की महिमा का अपूर्व वर्णन प्रकाशित है। अयोध्या काण्ड में राम के चारित्र्य आदर्श का जो वर्णन किया गया है उसी के आधार पर भारत-वासी चिरकाल से प्रभावित हैं। राजपुत्र होते हुए भी सन्यासी जीवन व्रतधारी, त्यागी व सांसारिक भोग विलासिता के प्रति आशक्तिहीन पितृ भक्ति, मातृ भक्ति, भ्राताओं के प्रति स्नेह परायणता, आदर्श पत्नी प्रेम इत्यादि का विस्तृत विवरण अयोध्या काण्ड के श्लोक में वर्णित है। यद्यपि राजतिलक के समय राम ने अपने मन में भरत के प्रति कुछ आशंका प्रकट की थी कि भरत इसके विरोध में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं परन्तु ऐसा सोचना प्राकृत था। राज्याभिषेक की आकांक्षा राम को भी थी और ज्येष्ठ: राजकुमार होने के कारण ऐसा सोचना स्वाभाविक है और राज्य प्राप्ति की संभावना से राम साधारण मनुष्य की भाँति आनन्दित भी हुए थे। राम कंकेयी के वनादेश का संवाद सुनकर किंचित मात्र भी दुखित नहीं हुए। उन्होंने कहा कि पिता माता की आज्ञा पालन करना पुत्र का धर्म है। सहर्ष वन को जाना स्वीकार कर लिया।

कांगर कीर ज्यों भूषन-चीर सरीर लस्यो तजि नारि ज्यों काई।
मातु पित पिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।।
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजीव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।
कीर के कागर ज्यो नृप चीर, विभूषन उप्पम अंगन छाई।
औध तजीमग वास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।।
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजीव लोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।

कैकेयी ने इसी समय दशरथ द्वारा प्रदत्त दो वरदानो की कथा राम को सुनाया। महाराजा दशरथ के आदेश का पालन करना

राम ने अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा और महाराजा दशरथ के सत्य वचन की रक्षा हेतु बनवास से उनको लेशमात्र भी दुःख नहीं हुआ। राम नें कहा—

एवमस्तु गमिष्यामि वनं बस्तुमहं त्विता।
जटा चीर धरोराज्ञः प्रतिज्ञामनु पालयन्॥ वा.रा. २-१९-२

अर्थात्—महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए और बल्कल वस्त्र धारण करके वन को चला जाऊँगा। पुनश्च राम नें कहा—

अलीकं मानसंत्वेकं हृदयं दहतीव मे।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेकेनम्॥ वा.रा.२-१९-४

अर्थात्—हाँ, एक ही बात का मुझे संताप है कि महाराज नें स्वयं भरत के अभिषेक की बात क्यों नहीं कही ? राम ने कहा—

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्ठान्धनानि च।
दृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताया प्रचोदितः॥ वा.रा.२-१-१७

अर्थात्—सीता, राज्य, अपने प्राण इष्टजन और धन तक अति हर्ष के साथ बिना कहे भ्राता भरत को दे सकता था।

पुनश्च राम माता कैकेयी से कहते हैं—

तद्ब्रूहि बचनं देवी राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रति जाने च रामो दुर्लाभि भाषेत॥
वा. रा. २-१ -३०

अर्थात—हे देवि ! आप राजा की अभिलाषित बात कहें मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि उनकी बात पूरी करुंगा। राम ने कहा—

नाहमर्थ परो देवि लोक मानस्तु मुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम्॥
वा. रा. २-१९-२०

अर्थात—हे देवि ! धन के पीछे बावला बनकर मैं दुनिया में नहीं रहना चाहता। मुझे तुम धर्म मार्ग में स्थित ऋषि समझें। बन गमन का संबाद सुनकर राम के मन में लेश मात्र भी संताप नहीं हुआ। राम कहते हैं—

त्वया मया च वैदेह्यालक्ष्मणेन सुमित्रया।
पितुर्नि योगे स्थातश्यमेव धर्मः सनातनः।।
वा. रा. २-२१-४६

अर्थात—आप का, हमारा, सीता, लक्ष्मण तथा माता सुमित्रा का कर्त्तव्य है कि मेरे पिता की आज्ञा मानें।

तत्पश्चात राम सीता के कक्ष में गए और उनको अपने वन-वास की कथा सुनाई। सीता भी उनके साथ वन जाने को उद्यत हो गई। राम ने सीता को अपने साथ जाने से मना किया। तब सीता ने राम के विरोध करने पर कहा—यदि मुझे अपने साथ वन को नहीं ले जायेंगे तो मैं विष पान करके आत्महत्या कर लूँगी। इस पर राम सीता को बन में साथ ले जाने को सहमत हो गए।

आरभस्व गुरुश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते।।
वा. रा. २-३०-४२

अर्थात—हे सुश्रेणी! अब तुम बनवास के लिए तैयारियाँ कर लो। हे सीते! अव तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगेगा। यदि राम सीता को सर्व प्रथम ही साथ चलने की अनुमती प्रदान कर देते तो भविष्य में सिता अरण्य वास को अवधि में दारुण कष्ट के समय पद पद पर राम को प्रति दोषारोपण कर सकती थी।

बन गमन के समय जब राम अपनी धन सम्पदा ब्राह्मणों को दान दे रहे थे। उन्हीं दान लेनेवालों की गर्ग वंशोय त्रिजटी नामक ब्राह्मण भी थे। वह दुपट्टा ओढ़ राम के समक्ष आ खड़ा हुआ और राम से कहा आप मेरे ऊपर भी कुछ ध्यान दीजिए। राम ने उस ब्राह्मण की याचना पर सरयू पार की एक विशाल गायों से भरी गोशाला राम ने उस ब्राह्मण को दान में दे दिया। बन गमन के समय विदग्ध पिता महाराज दशरथ को सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

नवाहं राज्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ्।
नैव सर्वा निमाम् कामान्न स्वर्गं नैव जीवितम्।।

त्वामहं सत्य मिच्छामी नानृतं पुरुषर्षभम्।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन चते शपे॥

बा. रा. २-३४-४७-४८

अर्थात—मैं राज्य, सुख, भूमि, सर्व प्रकार की कामनायें, स्वर्ग तथा जीवन भी नहीं चाहता हूँ कि आप का वचन सत्य हो मिथ्यारोपण आप को स्पर्श न करे। यह बात मैं शपथ खा कर कह सकता हूँ। आप की सत्य रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व यहाँ तक की सीता को भी नहीं चाहता।

बन गमन के समय राम ने समस्त प्रजागण से कहा—हे प्रजा गण! हमारे प्रति जो आप लोगों की श्रद्धा और प्रीति थी वैसी ही श्रद्धा और प्रीति भरत के प्रति भी रखना। यद्यपि अपरोक्ष रूप से भरत ही राम वनवास के कारण थे किन्तु राम का भरत के प्रति लेशमात्र भी विद्वेष नहीं था। हाँ! कैकेयी के प्रति राम निसन्देह संशकित थे। उन्होंने कहा था कि महाराज दशरथ और मेरे विनाश और भरत के राज्याभिषेक हेतु ही कैकेयी मेरे गृह में आई हैं। लक्ष्मण तुम अयोध्या लौट जाओ। मुझे सन्देह होता है कि कैकेयी मेरी और तुम्हारी माता को विष देकर मरवा सकती हैं। राम का अभिमान, शोक, क्रोध, कैकेयी भरत के प्रति सन्देह, दशरथ के प्रति कटुक्ति के कारण राम को प्रकृत मानव समझना भी उचित है।

राम को वापस लेने भरत ससैन्य चित्रकूट गये। भरत को ससैन्य देखकर लक्ष्मण आग बबूला हो उठे कि भरत निश्चित रूप से हम लोगों का समूल विनाश करने के निमित्त ससैन्य यहाँ आए हैं। राम लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं—लक्ष्मण! भरतके प्रति इस प्रकार सन्देह करना निर्मूल है। कारण कुल मर्यादा का विचार करके भ्रातृ प्रेम वश यहाँ आये हैं यथा—

मन्येऽहमागतोऽयोध्या भरतो भ्रातृ वत्सलः।
मम प्राणात्प्रियतरः कुल धर्ममनुस्मन्॥

बा. रा. २-९७-९१

जो राम अरण्य वन में बास करने के समय प्रथम रात्रि को भरत के प्रति तीव्र विषादोद्गार किये थे उनके मन में एकाएक इस प्रकार का परिवर्तन अद्भुत है। इसी से ऐसा प्रतीत होता है कि भरत के प्रति राम का विद्वेष सामयिक निर्मल केवल क्षणिक प्रकाश मात्र था। उनको यह भी आभास मिल गया था कि महाराज दशरथ के जीवित रहते भरत का कभी भी यहाँ आगमन न होता। यह राम के आत्मदर्शिता का उत्कृष्ट दृष्टान्त है।

चित्रकूट में भरत ने भी राम की प्रशंसा करते हुए कहा था—

न त्वां प्रव्यथ येद् दुःख प्रोतिर्वान प्रहर्षयेत्।
संमतश्चासि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि सशयान्॥
बा. रा. २-१०६-३

अर्थात—राम को न दुःख व्यथित कर पाता है और न सुख ही हर्षित करता है।

जाबालि व धर्म गुरु वशिष्ठ के आग्रह और उपदेश देने पर भी राम अयोध्या लौट जाने के लिए बिलकुल सहमत नहीं हुए और कहा—

सहि राजा जनयिता पिता दशरथो मम।
अज्ञातं यन्मया तस्यां न तन्मिथ्या भविष्यति॥
बा. रा. -१११-११

अर्थात—महाराज दशरथ मेरे जन्म दाता पिता थे। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दी थी, मैं उसके विपरीत असत्य का आचरण कदापि न करुंगा। अन्ततः भरत राम का पादुका लेकर सदल अयोध्या वापस आए। तदुपरांत राम पंचवटी गए। उस समय लक्ष्मण ने एक मध्यम भ्राता भरत की प्रशंसा करते हुए मध्यमा जननी कैकेयी को निन्दा करना आरम्भ किया तो प्रथम ही राम ने लक्ष्मण को ऐसा करने से मना करते हुए कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितब्या कथंचन।
ता मेवेक्ष्वाकु नाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥
बा. रा. ३-१६-३७

अर्थात—भाई लक्ष्मण ! तुम मझली माता की निन्दा न करके केवल महाराज दशरथ और भरत के सम्बन्ध की ही बातें करो।

द्रष्टव्य—यहाँ पर कैकेयी को तृतीया माता न कहकर द्वीतीया माता कहकर सम्बोधित किया है।

इस से यह प्रमाणित होता है कि राम का भरत जननी किसी के प्रति सहजाति विद्वेष नहीं था। यदा कदा राम में भरत या भरत जननी तथा अन्यान्यों के प्रति क्रोध करते देखा जाता है वह विपदजनित मानव मानसिक व्यथा के कारण ही ऐसा हुआ। यह मानवी कमजोरी है। रावण भगिनी सूर्पणखा के नासिका छेदन के पश्चात स्वर्णरूपी बनावटी मृग का पहिचान न कर सकना यह राम के अदूरदर्शिता का परिचय है। ऐसा प्रतीत होता है राम जानते हुए कि स्वर्ण मृग कहीं और कभी नहीं हुआ और सीता तथा लक्ष्मण को कुटी में छोड़कर माया मृग मारीच का बध करने जाना राजनीतिक योजना और कपट से उद्देश्य सिद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। जिस प्रकार भी हो रावण का वध करना मूल उद्देश्य और प्रयोजन था और आपदा जब आती है तो विवेकी पुरुष को भी कभी कभी बुद्धि भ्रम में पड़कर भ्रष्ट हो जाती है 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' ऐसा ही राम का भी हुआ। क्योंकि यह सभी जानते हैं कि स्वर्ण मृग होना असम्भव है।

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामोलुलुभेमृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्ति कामेधियोदपिपुंसात् मलिनीभवन्ति ।।
म० भा० सभापर्व । ७६-५

इसी अदूरदर्शिता के कारण राम को अनेकानेक दुःखदायी कष्ट भोगना पड़ा। अथच अन्ततोगत्वा सीता का रावण द्वारा हरण हुआ। कारण—

न ज्ञायेत कुत्र न दृष्ट पूर्वा, न त्रायते हेममयी कुरंगी।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाश काले विपरीत बुद्धि ।।

सीता हरण के उपरान्त सीता के विरह में राम विवेक सहजात मनोबल धैर्य, युक्ति बोध इत्यादि खो बैठे थे ये नर चरित्र के स्वाभाविक गुण-अवगुण है।

हो लछिमन। सीता कौन हरी ?
यह जु मढ़ी बैरिन भई हमकौं, कंचन-मृग जो छरी ।।
जो पै सीता होय मढ़ी मैं, झाँकत द्वार खरी।
सूनी मढ़ी देख रघुनन्दन, आवत नैन भरी ।।
एक दुख हतौ पिता दशरथ कौ, दूजो सीय करी।
'सूरदास' प्रभु कहत भ्रात सौं, बन मैं बिपत परी ।।

राम के अधीर हो जाने पर लक्ष्मण ज्येष्ठ भ्राता राम को अनेक उपदेश और सान्त्वना देते हुए उन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं। अवश्य इति मध्ये जटायु के मृत्यु से दुःखित होकर राम लक्ष्मण से कहते हैं—

शूरा शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि।
सीता हरणजं दुःखे- मे सौम्य तथागतम् ।।
वा० रा० ३-६८-२५

हा! प्रिय बन्धु! उठो तुमको खो, रह न सकेंगे मेरे प्राण,
तुम यदि गये गया सारा जग, चूल्हें जाय न्याय निर्माण।
नारी की क्या खोज, गँवाया मैंने आकर प्यारा बन्धु,
टूटा सबसे सुदृढ़ सहारा, मैं सब ही बिधि हारा बन्धु।
शोकाकुल सुग्रीव बिभीषण, हनुमान आदि चुपचाप,
देख रहे हो व्यथा व्यथित श्रीरामचन्द्र का करुण विलाप।
कहा विभीषण ने प्रभुवर, जब तक स्वासा तब तक अ स,
विपन क्रिया ही से कटती है, रोने से तो बढ़ती त्रास।

हे सौम्य लक्ष्मण! अब मुझे सोताहरण का वैसा दुःख नहीं रहा जैसा कि इस समय मेरे लिए मरनेवाले इस पक्षी के विषय में है। इसके पश्चात राम के बाली का छिपकर बध करने के कारण अनेकानेक उनके आचरण के विपरीत दोषारोपण एवं समालोचना हुए हैं और राम की निन्दा भी हुई है। इस विषय को लेकर राम सर्वत्र निन्दित हुए हैं। परन्तु आर्य धर्म, संस्कृति और आचार संहिता के अनुसार देखा जाय तो यह कार्य धर्मानुकूल ही था। इन दोषारोपणों की विस्तृत व्याख्या एवं समाधान परवर्ती परिच्छेद में करने की चेष्टा करेंगे।

अपने भाई रावण द्वारा तिरष्कृत विभीषण जब राम की शरण में गया तो सुग्रीव तथा राम के अन्यान्य सहयोगियों ने विभीषण को आश्रय देने को सहमत नहीं हुए, फिर भी राम ने उन्हें समझाते हुए कहा—

अभयं सर्वभूतेभ्यो दादाम्येतद्व्रतं मम ।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयंमया ।।
बा० रा० ६-१८-३४

अर्थात—एक बार भी जो मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूं' इतना कह देता है, तो मैं उसको सर्वथा निर्भय कर देता हूं। यहा राम को सबसे महत्वपूर्ण महिमा है। विभीषण ही क्यों, यदि रावण भी शरणागति हो जाय तो उसे भी आश्रय दूंगा, ऐसी उदारता केवल राम में ही हो सकती है। विभीषण को आश्रय देकर राम ने अपने राजनीतिज्ञ दूरदर्शिता का अपूर्व परिचय दिया है। विभीषण को आश्रय देने से ही रावण के बल, इन्द्रजीत की माया एवं युद्ध कौशल इत्यादि के सम्बन्ध में सब भेद मिल सका। विभीषण के आश्रय देने के विषय में राम ने कहा था—

इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ।
न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।।
वा० रा० ६-१८-१५

जब भाई भाई में द्वेष हो जाता है तो एक दूसरे के प्रति हिंसा जनित विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वैसे ही रावण के विरुद्ध विभीषण का होना भी स्वाभाविक है। सब भाई भरत जैसा नहीं होता। युद्ध भूमि में जब रावण राम द्वारा आहत होकर भूमि पर गिर पड़ा तो राम कहते हैं—

तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्यन्न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ।
गच्छानुजानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिचरराज लङ्काम् ।।
बा० रा० ६-५६-१४२-१४३

हे! राक्षसाधिपति इस समय मैंने थका हुआ जानकर तुझे अपने बाणों से मारकर यमलोक को नहीं भेजा। अब तू यहाँ से चला जा, क्योंकि मैं देखता हूं कि तू लड़ते लड़ते थक गया है।

अब तू लंका में जाकर अपनी थकावट दूर करो और दूसरे रथ में बैठ तथा दूसरा धनुष लेकर लौट आना तभी तू मेरा बल देखेगा। ऐसी उदारता एवं आदर्श शायद ही किसी योद्धा में देखने को मिले। रावण पुत्र इन्द्रजीत ने वानरी सेना के समक्ष माया सीता का बध करने का जब प्रदर्शन किया तो सारे रामादल में शोक की लहर फैल गई और राम भी मूर्छित होकर गिर पड़े। विभीषण ने वास्तविक सीता का बध न होने बल्कि माया सीता के बध का रहस्योद्घाटन किया तो रामादल में उत्साह की लहर उमड़ पड़ी। माया सीता बध के रहस्य को राम भी नहीं समझ पाये थे। उन्होंने विभीषण से पूछा—

नैऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्॥

अर्थात—हे राक्षस राज! तुमने जो कुछ कहा है मेरी समझ में नहीं आया। तुम उसी बात को फिर से कहो। यह सुनकर विभीषण फिर उसी बात को कहने लगे। बा० रा० ६-८५-३

यहीं पर राम के अधीरता का आभास मिलता है कि विपत्ति काल में वे भी साधारण मनुष्य की तरह ही हतबुद्धि हो जाते थे। रावण वध के उपरान्त रावण के प्रति किसी प्रकार का राम के मन में विद्वेष नहीं रहा। विभीषण भी राम के व्यवहार को समझने में असमर्थ रहे। राम विभीषण को समझाते हुए कहते हैं—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥
बा० रा० ६-११२-२६

मरणोत्तर क्या बैर बन्धु, अब मेरा भी है रावण तात।
उसी भाँति की प्रेत क्रिया हो, जैसा था वह जग विख्यात।
कहा विभीषण से, रावण की गुण गाथा बहु भाति बखान।
मंदोदरी आदि को सहृदय, होकर ही सांत्वना महान।

यथा रामचन्द्र ने कहा—हे विभीषण! वैर तक तब रहता है, जब तक मनुष्य जीवित रहता है। मर जाने पर वह जिस प्रकार

तुम्हारा बन्धु है उसी तरह मेरा भी है। इसलिये तुम जाकर इसका प्रेत कर्म सम्पन्न करो। यही शत्रु और आदर्श योद्धा का उत्कृष्ट धर्माचरण है। राम का आदेश मिलने पर विभीषण ने सीता को आभूषणों से सुसज्जित करके राम के समक्ष उपस्थित किया। सीता को देखकर उन्होंने सीता से कहा—मैंने तुम्हारे उद्धार के लिये रावण से युद्ध नहीं किया, वरन् तुम्हारे अपहरण जनित अपवाद व प्रख्यात रघुवंश के कलङ्क को बचाने के निमित्त ही ये सब काण्ड किये। सीता ने अपने पातिव्रत चरित्र का प्रमाण देने हेतु अग्नि में प्रवेश किया और उसमें वे निर्मल निर्दोष व पवित्र सिद्ध हुईं और अग्निदेव स्वयं सीता को अपने कोष में लेकर राम के समक्ष उपस्थित होकर बोले—

अब्रबीञ्च तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः।
एषा ते राम वैदेही पाप मस्यां न विद्यते॥
बा० रा० ६-१२१-५

अर्थात—सम्पूर्ण लोकों के साक्षी अग्निदेव ने रामचन्द्र के हाथों में सीता को सौंपकर कहा—हे रामचन्द्र! यह निष्पाप सीता तुम्हारी है, तुम इनको ग्रहण करो।

इसके प्रत्युत्तर में राम ने कहा—हे अग्नि देव! सीता के चारित्र्य शुद्धता और पतिव्रता के सम्बन्ध में मेरे मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। यदि सीता की अग्नि परीक्षा न होती तो साधारण जनता और समाज यही कहता कि राम ने चरित्रहीन सीता को कामवश ग्रहण कर लिया। इसीलिए सीता की अग्नि परीक्षा सामाजिक दृष्टि से उचित थी।

लंका विजय के पश्चात राम ने प्रमुख प्रमुख सहयोगियों के साथ अयोध्या के लिये प्रत्यावर्तन किया। भरद्वाज के आश्रम में पहुंचने के बाद राम ने हनुमान को आदेश दिया—हे हनुमान! अयोध्या में पदार्पण करने के पूर्व तुम एक बार अयोध्या जाकर हमारे यहाँ आने की सूचना भरत को दो और यह भी देखने और समझने की चेष्टा करना कि हमारे अयोध्या वापस आने का समाचार सुनकर भरत के मुख वर्ण और भाव देखकर उनके आन्तरिक भाव का निरीक्षण करना। यदि उनके मुखारवृन्द पर

किसी प्रकार शंका का आभास मालूम पड़े कि उनके मन में राज्य के प्रति मोह है तो हम यहाँ से फिर बन को वापस चले जायेगें जिससे भरत निःसंकोच निर्भय अयोध्या का राज्य शासन करें। हम राज्य के लोभ और मोह में भाई भरत से विद्रोह करना नहीं चाहते। यहीं पर हमें राम के विशाल उदारता और भ्रातृ प्रेम का उत्कृष्ट दृष्टान्त मिलता है। जो विश्व के किसी भी साहित्य या इतिहास में दुर्लभ है। कारण मनुष्य के मन में ऐसी परिस्थिति में प्राकृत सहज भाव से परिवर्तन हो जाना असम्भव नहीं। चौदह वर्ष राजत्व करने के बाद भरत के मन में राज्य के प्रति आशक्ति होना स्वाभाविक है। राम द्वारा इस प्रकार राज्य के प्रति निर्मोह और त्याग की भावना अति विश्व विश्रुत है। परन्तु राम के सभी सन्देहजनक भावनाएं निर्मूल सिद्ध हुई और राम अयोध्या के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। इसी बीच वयस्क रुद्र से मालूम हुआ कि रावण द्वारा अपहृत सीता को राम ने बिना सोचे विचारे ग्रहण कर लिया यह उचित नहीं था। इस प्रकार के सामाजिक निन्दा के कारण अपनी मर्यादा की रक्षा के निमित्त उन्होंने सीता का परित्याग करके बाल्मीकि मुनि के आश्रम में भेज दिया। कुछ समय बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ का संकल्प किया जिसमें सम्मिलित योगदान देने हेतु वाल्मीकि मुनि को भी आमंत्रित किया। वाल्मीकि मुनि आश्रम से लेकर राम के पुत्र द्वय लव व कुश सहित यज्ञ सभा में उपस्थित हुए। दोनों बालकों द्वारा रामायण गान सुन कर राम ने विस्मित भाव से कहा कि बालक द्वय मेरे पुत्र के सिवाय और कोई नहीं हो सकता। अतः राम ने वाल्मीकि मुनि के आश्रम से दूत भेजकर सीता को अयोध्या लाये। सीता अपनी पातिव्रत शुद्धता का प्रमाण देने के लिये पृथ्वी में समा गई। इस प्रकार कुछ काल राज्य भोग करने के पश्चात राम ने सरयु नदी में प्राण विसर्जन कर दिया। विसर्जन के पूर्व वे प्रजागण को एक पावन उपदेश दे गए।

भूयोभूयो भाविन भूमिपालः नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
मद्भूदयम धर्म सेतुर्नराणाम काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

हे भावी भूमिपालों ! मैं आपसे याचना करता हूं कि जिस धर्म

सेतु का मैंने निर्माण किया है उसका प्रत्येक काल में पालन करना। तथैव—वर्तमान युग के लिये नीतिबोध कर्तव्य परायणता, सामाजिक उदारता, भ्रातृ स्नेह, पारिवारिक सद्भावना तथा पूजनीय गुरुजनों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन प्रभृति विशाल, अद्भुत, हिमालय की तरह उन्नत, आ।।श सदृश्य उदार गंभीर भाव रामचरित के दुर्लभ गुण थे। आदिसे अन्तपर्यन्त राम ने जो कार्य किये अतुलनीय अद्भुत थे। जैसे--१२ वर्ष की आयु में विकराल राक्षसी ताड़का का बध। किन्तु इतनी कम आयु में ऐसे दुस्तर कार्य सम्पादन करने पर भी उनमें तनिक भी आत्मश्लाघा नहीं थी। हर धनुष भंग करने के समय भी उनमें किसी प्रकार का अहं नहीं आया। परशुराम का गर्व खत्म करने पर भी उनमें गर्व नहीं दिखाई पड़ा। दशरथ द्वारा राज्याभिषेक के समय राम जैसे आनन्दित अधीर हुए थे वैसे ही कैकेयी द्वारा वनगमन का आदेश सुनकर भी उनके मन में तनिक भी मानसिक व्यथा नहीं हुई। दुर्भाग्य और सौभाग्य को समदृष्टि से देखता। विपद काल में एक दो बार उनका मानसिक संतुलन अवश्य खोया हुआ दिखाई पड़ता है, जैसे—कभी कभी भरत और कैकेयी के प्रति असंगत कर्कश शब्द और अभियोग करते देखा जाता है और यदि ऐसे एक दो असंगति न होती तो राम देवता के समान ही पूजित होते और हुए भी। महाभारत काल से आज पर्यन्त सिंहासन और राज्य प्राप्ति के लिए घोर नाना प्रकार के अनैतिक, घृणित और दुष्कर्म कार्य युद्ध आदि हुए हैं। किन्तु राज्य का सुख भोग त्याग कर वन में १४ वर्ष तपस्वी जीवन व्यतीत करते राम जैसे संसार में विरला ही ऐसा कोई त्यागी पुरुष देखने को मिलेगा। ये ही गुण हम लोगों को चकित अभिभूत करते हैं। उनको राजत्व और वनवास में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता था। इन सब के होते हुये भी उनमें परम वैराग्य भाव देखने को मिलता है। इसी चारित्रिक महात्म्य के कारण राम मानव होते हुये भी देवत्व लाभ कर लिये।

अयोध्या से प्रस्थान करने के बाद राम ने गंगा नदी के तट पर गुह का आतिथ्य स्वीकार करते हुए नदी पार करते समय सुमंत्र को अयोध्या लौट जाने को कहा ताकि कैकेयी को विश्वास हो

जाय कि राम वन को चले गये। यह राम के बुद्धिमत्ता का सुन्दर परिचय है। कभी कभी निर्जन वन में वास करने को अवधी में एवं वन के कष्टमय जीवन से दुखी होकर अधीर हो जाते हुये वनवास के अवसर पर जब अयोध्या और महाराज दशरथ का स्मरण होता था तो उन्हें अतिमानसिक कष्ट भो होता था। विलाप भी करने लगते थे। सोचते थे, महाराज दशरथ दुखी हो शैय्या पर सोते होंगे। कैकेयी आनन्द पूर्वक अपनी सफलता पर उल्हास करती होंगी। महाराज दशरथ माता कैकेयी के वाक् जाल में फस गये। महाराज दशरथ के मतिभ्रम और बिपदा को देखने से ऐसा जान पड़ता है कि अर्थ और धन से काल हो बलीं है। कारण कोई भी विवेकी विद्वान पुरुष मेरे समान पितृ भक्त पुत्र का इस प्रकार त्याग करने को सहमत न होता। भाग्य और काल ही बलवान होता है। राम स्वयं अपने को साधारण मनुष्य ही समझ यह विश्वास प्रकट करते हैं कि पूर्व में फल भोगना है।

कि मया दुष्कृतं कर्म कृत मन्यत्र जन्मनि।

यु. काण्ड १-१-१८

ऐसा जान पड़ता है कि महाराज दशरथ के विनाश और भरत के राज्य प्राप्ति हेतु ही माता कैकेयो का हमारे गृह में प्रवेश हुआ है। राम कहते हैं—हे लक्ष्मण! तुम अयोध्या लौट जाओ। मुझे शंका है कि कैकेयो मेरो और तुम्हारी माता को विष दे सकती है एसा जान पड़ता है कि जन्मान्तर में मेरी माता भी अनेक रमणियों के पुत्रों का वियोग कराई होगी। राम का इस प्रकार सोचना मानवोचित है। कवि वाल्मीकि ने भी राम चरित का ऐसा दिग्दर्शन कराया है। राम यदि वन गमन के लिए किसी को दोषी न कहते तो वह नरजनोचित न होकर देव जनित होते। अभिमान, शोक, क्रोध, कैकेयी के प्रति सन्देह दशरथ के प्रति कटोक्ति प्रभृति व्यवहार के कारण ही हम उन्हें अतिमानव के रूप में ही पाते हैं।

भरत राम को अयोध्या वापस लाने के लिए ससैन्य चित्रकूट पहुंचते हैं। भरत का ससैन्य आगमन देखकर लक्ष्मण क्रोधान्ध हो

उठे। राम ने लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करते हुए समझाया हे लक्ष्मण! भरत के प्रति तुम्हारा क्रोध और शंका निर्मूल और निराधार है। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि भरत के प्रति राम के मन में वास्तविक विद्वेष या दुर्भावना कदापि नहीं थी। कभी कभी जो देखने को मिलता है वह क्षणिक और सामाजिक था। भरत के आते राम ने अनुमान किया था कि महाराज दशरथ के जीवित रहते भरत कभी भी चित्रकूट न आते। घटना भी ऐसी ही थी। यह राम के परिपक्व अनुभव और दूरदर्शिता का उत्कृष्ट परिचय है। राम कहते हैं -

मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृ वत्सलः।
मम प्राणात्प्रियतरः कुल धर्ममनुस्मन ।।

बा० रा० २-९७ ६

अर्थात—मेरा ख्याल तो ऐसा है कि मेरे प्राण प्यारे भरत जब ननिहाल से आये होंगे, तब उन्हें कुल धर्म का ख्याल आया होगा कि राज्य का अधिकारी तो बड़ा भाई ही होता है।

गुरु वशिष्ठ, जावालि तथा भरत ने राम को चित्रकूट से अयोध्या वापस लाने के लिए बड़ा ही आग्रह किया। किन्तु राम ने सबके अनुरोध को ठुकरा कर उन्होंने सबसे एक ही वचन कहा—

सहि राजा जनयिता पिता दशरथो मम।

अज्ञातं यन्मया तस्य न तन्मिथ्या भविष्याति ।। २-१११-११

अर्थात—महाराज दशरथ मेरे जन्म दाता पिता थे। उन्होने जो आज्ञा मुझे दी है मैं उसके विपरीत असत्य का आचरण कदापि न करूँगा। अन्त में भरत सदल राम का पादुका लेकर अयोध्या वापस आये राम का शौर्य और पराक्रम अद्भुत अपूर्व था।

एक दिन राम, लक्ष्मण और सीता अरण्य वन में विचरण कर रहे थे उसी समय राम लक्ष्मण और सीता के दुर्भाग्य रूपी ग्रह रावण की भगिनी सूर्पणषा वहाँ आ पहुंची सूर्पणषा के अनर्गल प्रमालाप की बातें सुनकर राम ने लक्ष्मण द्वारा उसके नाक कान कटवा दिये ताकि वह कुरुप हो जाय और भविष्य में किसी अन्य के साथ कुरुप होने के कारण ऐसी प्रलाप की बातें न कर सके।

नाक कान बिनु भई विकराला।
जनु स्रव सैल गेरू के धारा॥

सूर्पणषा ने क्रोधित होकर रामके कृत्याकरण का वृत्तान्त अपने भ्रातृ तुल्य खर से कहा खर ने अपनी १४००० सेना लेकर राम पर आक्रमण कर दिया। राम ने अति सहज ही देखते देखते खर उसके भाई दूषण और १४००० राक्षसी सेना का ध्वंस कर डाला।

रक्षसां भीम रूपाणांसहस्राणि चतुर्दश।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैरेत्रनैर्क॑न पदातिना।

बा० रा० ३-३४-६

इसके बाद सूर्पणषा ने अपने नाक कटने का वृत्तान्त अपने भाई लंकेश रावण को बताया और इसके प्रतिकार रूप में रावण को सीता हरण के लिये प्रोत्साहित किया। रावण ने भी वैसा ही किया और मारीच के माध्यम से छल और कपट से सीता को हर ले गया। मार्ग में आकाश मार्ग से बलवत सीता को ले जाते हुए दशरथ सखा जटायु ने रावण के इस कुकृत्य का घोर विरोध किया और रावण द्वारा निहत कर दिया गया। सीता की खोज में जाते समय राम की जटायु से भेंट हुई और सीता हरण और जटायु के आहत होने का सम्वाद सुनकर राम अति दुःखित हुए और लक्ष्मण से कहने लगे हे सौम्य लक्ष्मण! अब मुझे सीता हरण का वैसा दुःख नहीं रहा जैसा कि इस समय मेरे लिये मरने वाले इस पक्षी के विषय में है। जटायु का दाह संस्कार करके राम आगे चले—

आगे चले वहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत नियराया॥

रिष्यमूक पर्वत पर राम सुग्रीव की भेंट हुई और सुग्रीव से मैत्री स्थापित हुई। वहां शत्रुता के कारण सुग्रीव के ज्येष्ठ भ्राता वाली का वध करके सुग्रीव को किष्किन्धा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। तदुपरान्त राम ने लंका पर चढ़ाई करके ७ दिन घोर युद्ध के बाद रावण का बध और सीता का उद्धार किया। रावण वध के बाद राम का सीता के प्रति कठोर व्यवहार और उनके चारित्र्य पवित्रता पर विश्वास न करके क्रोध और संदेह के आवेश में कहने लगे—हे सीते! तुम कई मास रावण के अधिकार

में रही हो अतः तुम्हें ग्रहण करना मेरे जैसे पुरुष के लिये सर्वथा असम्भव है, अतः तुम अब जहाँ चाहो जा सकती हो।

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत् कृत बुद्धिना।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम्॥
बा० रा० ६-११८-२२

हे भद्रे! तुम बहुत दिनों तक राबण के अधिकार में रही हो, इसलिये लोक निन्दा के भय से मैं तुम्हें अपनी जीवन संगिनी नहीं बना सकता। इसलिए अब तुम अपने निर्वाह के लिए लक्ष्मण या भरत के पास जाकर रहो। या जहाँ अच्छा समझो वहाँ जाकर रह सकती हो। यहीं पर जैसे साधारण मनुष्य के मन में ऐसे विचारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है वैसे ही राम के मन में होना भी स्वाभाविक था। अन्ततः अग्नि परीक्षा के बाद अग्नि देव सीता की पवित्रता प्रमाणित कर देने के बाद राम ने सीता को ग्रहण कर लिया।

लक्ष्मण ने इन्द्रजीत से माया युद्ध करते समय कहा था—

तमु वाय ततो रामो नक्ष्मणं शुभ लक्ष्मणम्।
नैकस्य हतो राक्षासिपृथिव्यां हन्तुमर्हसि॥ यु० ८१-३८

इन्द्रजीत के विनाशकारो माया युद्ध से क्रोधित होकर लक्ष्मण ने राम से कहा—हे महाबाहु! अब मैं राक्षसों का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूं। राम ने कहा—हे भाई लक्ष्मण! एक अपराधी के कारण पृथ्वो भर के राक्षसों का बध करना उचित नहीं है।

विभीषण का पुत्र तरणी सेन रथ पर बैठकर जब राम से युद्ध करने जा रहा था। उसके रथ पर चारो तरफ राम राम लिखा हुआ था। यह देखकर बानरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। राम ने उसे अपना परम भक्त समझ कर नहीं मारा भगवान भक्त के वश में रहते हैं। राम कहते हैं—

कार्य नाई सीता आमि ना जाबो राज्य ते।
केमून मारिब बान भक्तेर अंग ते॥

कन्टक फूटिल मम भक्ते शरीरे।
ढोलेर समान बाजे आमार अन्तरे ।।
भक्त मोर पिता माता भक्त मोर प्रान।
केमन एमन भक्ते प्रहारिबो वान ।।
राम भक्ते आमि करिब संहार।
विश्वे केहु राम नाम ना लइबे आर ।।

राम की प्रतिज्ञा—

लोक तिहुं जारौं सातो सागर सुखाय डारौं,
गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊँ मैं।
रंच मैं बिदारि डारौं दसो दिगपालन को,
गगन समेत ससि सूरहिं गिराऊँ मैं।
नभ से पताल लैके कितहूं कहूं जो नेक,
रसिक विहारी प्रानप्यारी सुधि पाऊँ मैं।
जानकी न लाऊँ तो पै छत्री न कहाऊँ,
राम नाम पलटाऊँ धनु बान न उठाऊँ मैं।

राम ने कहा हे सौम्य लक्ष्मण ! मैं आए हुए शरणागत को समर्थ होते हुए भी कदापि न मारूँगा, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। अत: मैं भक्त को कभी भी न मारूँगा।

धनुष भंग—

संभु सरासन तोर्‍योमृनाल सोभाल बिसाल प्रताप सोहावं।
त्यों लछिराम स्वयंबर में मिथिलेस अनंद समात न छावै।।
राम गले जयमाल के देतु सु मैथिली यो समता सरसावै।
मानो रमा रतनाकर मैं रतनावली श्री हरि को पहिरावै।।

रामावतार के कारण—

धरम के सेतु, जग मंगल के हेतु,
भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति जो प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु,
मान लोकवदे राखिबे को पन रघुवर को ।।
बानर विभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जेरे अनुचर को ।।

राखे रीती अपनी जो होइ सोई कीजै बलि ।
तुलसी विहारो घर जाय उहै घर को ।।

—कवितावली

अवतार—

ईश्वर अवतार ले कर मनुष्य रूप धारण क्यों इस भूतल पर आते हैं ? विश्व कवि रविन्द्र नाथ कहते हैं—

तुमार माझे आमार लोला होये ताई तो एसे चि आमि एई मर्त्ये ।
अथचः-भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया ।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ।
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।

रामावतार—

कुलपति वशिष्ठ ने राम और लक्ष्मण को उनके सभी इन्द्रियों के विकास हेतु सर्वांगीण शिक्षा देने का विचार किया था । लेकिन राम के शस्त्र गुरु महर्षि विश्वामित्र ने गुरु वशिष्ठ की सभी योजनाओं को निरर्थक कर दिया ।

विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी । बसहिं विपिन सुभ आश्रम जानी ।।
जहँ जप जग्य जाप मुनि करहीं । अतिमारीच सुबाहुहि डरहीं ।।
देखत जग्य निसाचर धावहिं । करहि उपद्रव मुनि दुख पावहीं ।
गाधि तनय मन चिंता व्यापी । हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ।।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।।
अनुज समेत देहुंरधुनाथा निसिचर वध मैं होव सनाथा ।।

महा मुनि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को अपने साथ ले जा रहे थे । मार्ग में जाते समय राम क्या देखते हैं—इतने सुन्दर ग्राम बन और उपजाऊ भूमि होते हुये भी यहां आबादी नहीं है । उन्होंने मुनि विश्वामित्र से पूछा—गुरुदेव ! इसका क्या कारण हैं ? गुरु विश्वामित्र ने उत्तर में कहा—

अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ।।
जानत हूँ कस पूछहु स्वामी । सम दरसी तुम अन्तर जामी ।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाये । सुनि रघुबीर नयन जल छाए ।।

दोहा—निसिचर हीन करऊँ महि, भुज उठाई प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रम, जाइ जाइ सुख दीन ॥

राम की प्रतिज्ञा—

निसिचर असुर अत्याचारी मदान्ध हो गए हैं। धर्म और ऋषि मुनियों, गो, द्विज आश्रमों की रक्षा करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया है। राक्षसेन्द्र रावण अपने राज्य की एक मुखी सत्ता चला रहा है। नैसर्गिक शक्तियों की तो बात ही क्या नवग्रह भी उसकी सेवा कर रहे हैं। लोगो के दिलों में शक पैदा हो रहा है कि दुनियाँ का मालिक ईश्वर है या नहीं, या रावण ही मालिक है। ऐसी हालत में दीन हीन पृथ्वी देवों को साथ लेकर सिरजन हार के पास गई।

धेनु रूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जह सुर मुनिझारी ॥
निज संताप सुनाएसि जोई। काहू ते कछु काज न होई ॥

दोहा—धरनि धरहि मन धीर, कहि बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहि दारुन विपति ॥

पृथ्वी ने कहा—हे सिरजन हार! यह दुर्गति कब तक सहती रहूंगी।

मनुजता रही कराह कराह, हाय न पूछे कोई हाल।

मनुजता की चक्की में पिस रही मनुजता को जर्जर कंकाल। इसका कोई उपाय भी है? सृष्टि कर्त्ता कहते हैं—हे बसुन्धरा! तू श्रद्धा और विश्वास मत खो। ईश्वर की शरण में जानेसे शरणागत की रक्षा करना ही ईश्वर का कर्त्तव्य है। रावण की पराजय निश्चय होगी और राक्षस कुल का सर्वनाश हो जायगा। पृथ्वी ने पूछा? यह कब होगा? सृष्टिकर्त्ता ने कहा—आर्य माताएँ पहाड़ पर बैठकर अपने उद्धार के लिए जो कठोर तपस्या कर रही हैं वह निश्चित रूप से सफल होगी। ब्रह्मचारी कौपीनधारी पराक्रमी बालक देश में पैदा होंगे तब परमात्मा स्वयं अवतार ग्रहण करेगें। जब देश में ऐसे गुणवान बालक उत्पन्न होंगे तो जानना कि प्रभु का अवतार हो गया है। पृथ्वी को संतोष हो गया और वह अपने स्थान को लौट आई।

दोहा—जानि समय सुर भूमि सुनि, वचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक सन्देह॥

आकाश वाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नरवेसा॥
राम रावण राहु वर हरि चन्द चक्र समान आए।
धर्म रक्षा हेतु नर बनकर स्वयं भगवान आए।
असन्हि सहित मनुज अवतारा, लैहउँ दिनकर वंस उदारा॥
सुर समूह बिनती करि पहुंचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम।
विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार॥
ईश्वर का अवतार नहीं जो तारे जग को।
विस्तृत जो कर सके परिष्कृत वैदिक मख को।
राम! आपके काम सदा ऐसे होते थे।
ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे॥
राम! आपने केवट को भी कंठ लगाया।
पल भर में अश्पृश्य जाति को स्पृश्य बनाया॥
की कृतज्ञता प्रकट आप ने उस पर भारी।
दिखा दिया भगवान-मान्य हैं जन उपकारी॥
सत्य सन्ध भी हुआ न कोई आप सरीखा।
बचन बद्ध हो नहीं आप ने हटना सीखा॥
बाली मारा तुरत बात थी तुमने हारी।
यश-अपयश की कथा तनिक मन में न विचारी॥
आप दुष्ट के लिए क्रोध के दावानल थे।
शरणागत के लिए किन्तु अद्भुत वत्सल थे।
यद्यपि रहा जयन्त मारने हो के लायक॥
तो भी जीवन दान दिया उसको रघुनायक॥
दुष्ट दलन के लिए आप जग में आए थे।
आर्य वंश के कर्म सभी को सिखलाए थे॥
स्वाभाविक है बैर नीच जन से उत्तम का।
मेल मिला है कभी भानु से भी क्या तम का॥

बृहत्तर आर्यावर्त ललाम भरत का भारत हो विख्यात ।।
समन्वय संस्कृति उसकी करे विश्व भर को ऊज्ज्वल अवदान ।।
पूज्य हो इसकी कण-कण भूमि यहाँ पर लेने को अवतार ।

राम का परम ब्रह्मत्व

जैसा कि पूर्व परिच्छेद में दिग्दर्शन कराया गया है कि राम मानव महामानव और अवतारी भी है और उनमें ईश्वरत्व की भी छाया है। कवि कुल गुरु कालिदास ने रघुबंश में राम को विष्णु का अवतार मानकर अपनी राम भक्ति की कल्पना की है। बाल्मीकि रामायण में भी नारद ने राम को विष्णु का अवतार माना हैं। "विष्णुन सदृशो वीर्ये। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भवभूति कृत नाटकों महावीर चरित और 'उत्तर रामचरित' में राम महावीर ही कह कर सम्बोधित किए गए हैं।

रावण का भी कुछ ऐसा ही मन्तव्य है। वह कहता है—

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा ।।
तौं मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ।।

मारीच भी रावन को समझाते हुए कहता है—

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रुप चराचर ईसा।

विभीषण ने भी रावण को समझाते हुए कहा था—

तात राम नहि नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहुं कर काला।।
गोद्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी ।।

भगवान राम स्वयं प्रकट रूप से न कह कर आकाश वाणी द्वारा देवताओं को ढाढ़स बँधाते हैं।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहि लागि धरिहउँ नर बेषा ।।

मुनि वशिष्ठ ने भी चित्रकूट में कहा था—

धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजाराम स्ववसु भगवानू ।।

ताड़का राक्षसी के वध के समय विश्वामित्र ने कहा—

प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहि हित पिता तजेउ भगवाना ।।

बाली ने भी ऐसा ही कुछ कहा था—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी अंतकाल गति तोरि॥

मेघनाद बध के बाद रावण राम के पास राजदूत भेजता है कि राम से कह देना कि वे सात दिन युद्ध न करें—

"मेरा महा बैरी है"
सारण, तुम्हारा प्रभु रावण, तथापि मैं
दु:खित हूं दुख यह देखकर उसका!
राहु ग्रस्त रवि को निहार कर किसकी
छाती नहीं फटती है? उसके सुतेज से
जलता जो वृक्ष है, मलीन उस काल में
होता वह भी है! पर अपर विपत्ति में
मेरे लिए एक से हैं! और स्वर्ण लंका में

जाओ सुधि सैन्य युत सात दिन अस्त्र मैं धारण करूँगा नहीं, यह है उदात्त राम का मानव हृदय।

बाली वध के पश्चात राम ने उसके प्रति शोक प्रकट किया था। वह मानव हृदय की व्याकुलता मात्र है, किसी के हृदय में ऐसी परिस्थिति में दया भाव का उदय होना स्वाभाविक है।

कविवर निराला ने पंचवटी प्रसंग में सूर्पणषा द्वारा राम को धिक्कारते हुए कहा था—

धिक है नराधम तुझे, वंचक कहीं का शठ, विमुख किया तूने उसे, आई जो तेरे पास चाव से अर्पण के लिए, जीवन यौवन नवीन। इस सम्बन्ध में राम ने सूर्पणषा के प्रति जो व्यवहार किया है वह शास्त्रानुकूल है। राजा का धर्म है वह दुष्चरित्र चाहे नारी हो चाहे पुरुष उसको उचित दण्ड दे ताकि वह औरों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार न करे।

आज आर्य-संस्कृति जीवन का यह शुभ प्रथम प्रभात हुआ,
रवि कुल रवि की प्रथम किरण से अंधकार अज्ञात हुआ।
वह बर्बर अज्ञाना सुलोचनी, वह जड़ता जड़ जंगल की,
होने को है नष्ट, आ गई घड़ी प्रात के मंगल की,

नव सन्देश ज्ञान, शुचिता के हम वाहक निष्कामी हैं,
यह आदर्श प्राप्त करने को रामलखन बनगामी हैं।

राम का त्याग—

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, विभूषन अंगन उप्पमि छाई।
औध तजी मगवास के रूख, ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजी विलोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।
कागर कीर ज्यों भूषन चीर, सरीर लस्यो तज्यो नीर ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजीव लोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊँ की नाई।

राम की दिव्य झांकी—

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को, ठगि सी रहो जो न ठगे धिक से।
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन, नयन सुखंजन चातक से।
सजनी ससि में सम सील उभै, नव नील सरोरुह श्यामल से।
विश्व बन्धुत्व व्यवस्था वने अवस्था की गति के अनुसार।
ऋषि उरों में हो जिसका श्रोत बनचरों में हो वह रसधार।
उभय संस्कृतियों का करमेल, स्वतः हों महादेव यों व्यक्त।
जिनके नर बानर ही नहीं देव दानव भी होगें भक्त।।

मनुज दनुज आराध्य एक हैं, संस्कृतियों का साध्य एक हैं।
यही दिखाने सागर तट पर, महादेव की मूर्ति बनाई।।

राम की दुर्गा स्तुति—

साधु साधु साधक धोर धर्म धन धन्य राम।
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने सामने की दुर्गा भास्वर।
वाम पद असुर स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर।
ज्योतिर्मय रूप हस्तदस विविध अस्त्र सज्जित।
मन्दस्मित मुख लख हुई, विश्व की श्री लज्जित।

हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती बाम भाग।
दक्षिण गणेश कार्तिक, बाएँ रण रंग साज।
मस्तक पर शंकर पद पद्मों में श्रद्धा भर।
श्री राघव हुंत प्रणत मन्द स्वर बन्दन कर।
होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति श्री राम के बदन में हो गई लीन।।

राम के चारित्य दोषारोपण—

राम के चारित्य दोषारोपण के सम्बन्ध में तीन प्राथमिक दृष्टान्त दिए गये हैं। जैसे—

(१) बाली बध।
(२) सीता की अग्नि परीक्षा।
(३) सीता परित्याग।
(४) इसके अतिरिक्त नारि जात ताड़का वध सूर्पणषा का नासिका छेदन।

प्रथम दोषारोपण के प्रतिवाद में निवारण करते हुए गो० तुलसी दास का कथन है—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकई जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

गोविन्द राज टीकाकार का कथन है—

यदि राम बाली से प्रत्यक्ष अनावृत्त रूप से युद्ध करते और बाली को जैसे उसके पत्नी ने संकेत और सावधान किया था कि सुग्रीब के पक्ष से राम युद्ध रत हैं—

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समझावा।।
सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।

यदि राम प्रत्यक्ष रूप से बाली से युद्ध करते और जैसा को बाली-पत्नी तारा ने चेतावनी दी थी, बाली यदि राम के चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करता तो ऐसी परिस्थिति में बाध्य होकर राम को क्षमा प्रदान करना पड़ता, क्योंकि वे क्षमाशील

कहे जाते हैं--जिस प्रकार महापातकी इन्द्र पुत्र जयंत को क्षमा प्रदान किया था वैसे ही वाली को भी क्षमा करना पड़ता। दूसरे राम सत्यव्रती मर्यादापुरुषोत्तम कहे जाते हैं—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइ पर बचन न जाई॥

राम वाली बध की प्रतिज्ञा कर चुके थे—

रघुकुल की प्रतिष्ठा हेतु वाली का वध करना अनिवार्य था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी—

दोहा—सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्रान॥

अतः छिपकर मारना उपरोक्त कई कारणों से अनुचित नहीं था। श्रीराम स्वयं इसके प्रतिवाद में कहते हैं—

ज्येष्ठो भ्राता पिता चैव यश्च विद्यां प्रयच्छति।
औरसी भगिनीं वापि भार्यावाप्युनुजस्य च॥
बा० रा० ४-१८-१३

शास्त्र वचन के अनुसार बाली का चाहे जिस रूप से बध किया गया यह समयोचित, धर्मानुकूल प्राचीन दंड संहिता के पूर्ण-रूपेण समर्पित और उपयुक्त था जैसे—

लंका में सीता की अग्नि परीक्षा—

राम ने सीता के लंका में एक वर्ष तक रावण के अधिकार में रहने के कारण उनके चरित्र के प्रति शंका प्रकट करते हुए कठोर शब्दों का प्रयोग अवश्य किया था और निन्दा भी की थी परन्तु अग्नि परीक्षा का आदेश नहीं दिया था। स्वयं सीता ने ही अपनी शुद्धता का प्रमाण देने के निमित्त अग्निपरीक्षा का प्रस्ताव रखा था। सीता ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण!

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे॥
बा० रा० ६-११६-१८

तुम शीघ्र ही मेरे लिये चिता बनाओ मैं इस तरह निन्दित हो जीना नहीं चाहती। चिता ही इस रोग की औषधि हो सकती है।

अतः इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि राम ने अग्नि परीक्षा का आदेश नहीं दिया था।

सीता का परित्याग—

एक बार सभा में उपस्थित सभासदों से राम ने पूछा ! मेरे विषय में पुरवासी लोग क्या कहते हैं ? उपस्थित सभासदों में से सभासद भद्र ने कहा—

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्यराघवः।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत ।।
कीदृश हृदये तस्य सीता संभोगजं सुखम्।
अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ।।
लङ्कामपि पुरानीताम शोकवनिकां गताम्।
रक्षसां व मापन्नां कथं रामो न कुत्सते ।।
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते ।।
एवं बहुविधा वाचो बदन्ति पुरवासिनः।
नगरेषु चसर्वेषु राजञ्जनपदेषु च ।।
तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राणवः परमावर्तन।
उवाच सुहृदः सर्वान् कथमेतद् ब्रवीथ माम् ।।

वा. रा. उ. काण्ड ४३-१६-२१

रावण वधोपरान्त सीता का उद्धार अवश्य हुआ, परन्तु रावण के स्पर्श से जो दोष उत्पन्न हुआ था उस पर, राम ने उसकी कोई चिन्ता नहीं की और सीता को पवित्र समझकर घर में रख लिया। यद्यपि सीता के चरित पवित्रता पर पूर्ण विश्वास था फिर भी लोकापवाद और कुल परम्परा के भय से ही सीता का परित्याग किया। सीता ने स्वयं भी राम से कहा था—राजन कहीं ऐसा न हो कि प्रजा यह कहने लगे कि सीता के मोह और प्रेम के कारण राम ने सीता का परित्याग नहीं किया और मेरे कारण यदि आप और आपके पूर्वजों की प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार का कलंक लगना हो तो निश्चय निःसंकोच प्रजाभक्त वत्सल कहलाने वाले आप मेरा परित्याग कर दें। अन्ततः सीता का नमन करके राम ने सीता का परित्याग किया।

महाकवि भवभूति ने भी 'उत्तर रामचरितम्' में वर्णन किया है—(सीतायाः पादोशिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते राम शिरसि पाद पङ्कज स्पर्शः। (इति रोदति)

(सीता के चरणों में सिर रखकर) राम के सिर में तुम्हारे चरण कमलों का यह अन्तिम स्पर्श है (ऐसा कहकर रोते हैं। प्रजा राजा से बड़ी है। एक भी प्रजा क्यों ऐसा अपवाद करें? इसी कारण राम ने सीता का परित्याग किया था। यदि ऐसा न करते तो सदा सदा के लिए चन्द्रमा के सदृश लोक निन्दित होना पड़ता। यदि सीता की अग्निपरीक्षा लंका में न करके अयोध्या में करते तो इस लोकापवाद से बच जाते। लक्ष्मण जब सीता को बाल्मीकि आश्रम में छोड़कर अयोध्या लौटने लगे तो सीता ने कहा था—

लक्ष्मण! तुम धर्म परायण राजा (राम) से कह देना कि जिस प्रकार वे अपने भ्रातृगण से व्यवहार करें वैसा ही व्यवहार प्रजा के साथ करें। पुरवासियों के प्रति धर्म की रक्षा करना परम धर्म है। इसी से उनको उत्तम कीर्ति का लाभ होगा। मैं अपने शरीर की चिन्ता नहीं करती। पति के लिए आत्म समर्पण सर्वोपरि पत्नी का धर्म है।

कवि कालीदास ने भी रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णन किया है—

निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्व स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।
अन्यत्र रक्षो भवनोषितायाः परिग्रहान्मानव देव देव्याः -रघुवंश ॥
४-३२

भद्र ने कहा—हे नर श्रेष्ठ! जनता सब बातों की प्रशंसा करती है, परन्तु आप ने राक्षस के घर में रहने वाली देवी सीता को ग्रहण कर लिया है, उसे लोग अच्छा नही समझते। राम विष्णु के अर्धांशी अवतार थे और अर्धांशी मानव थे। राम में इसी लिए मानवी दुर्बलता भी थी और साथ ही साथ विवशता भी थी। कहीं कहीं राम ने बिलक्षण अद्भुत पराक्रम और साहस दिखलाया है और कहीं साधारण मानवी लीला भी दिखलाया है। जैसा कि पूर्व परिच्छद में कहा गया है। गो० तुलसीदास के शब्दो में—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में---

मानव भी श्रीराम हैं, अति मानव श्रीराम।
उसी रूप में वे सुलभ, जिसको जिससे काम।।

"God is man on earth and man is god in Heaven"

आध्यात्म रामायण में भी ऐसा ही वर्णन है—

कल्पयित्वा मिषं देवि लोक वादं त्वदाश्रयम्।
न्यजामित्वां वने लोकवादाद्भित इवापरः।।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके।
इदानीं दृश्यते गर्भःपुनरागत्य मेऽन्तिकम्।।

श्री बी० एस० श्री निवास शास्त्री की व्याख्या

"Ram's conduct in abondoning Sita, then must be put down to the influence of jealousy, one of the worst passions known to men, and worst of all where the canker appears in a man of genuine greatness. It is the noblest-man, who, when he is torn by feelings of Gealousy and Supicion against his wife, is capable of doing the worst things, Lectures on the Ramayan-XIV

The world was still without perfectly ethical concept of the ideal king and man. To create one for the generation to come Ram steeled himself against his noblest personal sentiments and banished Seeta.

He Suffered as a man and as a husband, but triamphed as the, supremely perfect of all the kings that poets, philosphers and canstitutionalists ever idealised.

An idiologically perfect social political order will perhaps ever remain a poet's dream so long as man remains man. Man is bound to commit mistacs

प्रजा सुखं सुखं राजः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं प्रियं राजः प्रजा नातुं प्रियं प्रियम्।।

श्रीराम मानव भी थे और महामानव भी। रामायण महा-काव्य में महर्षि बाल्मीकि ने किसी देव पुरुष का वर्णन न करके

राम के मानवी चरित्र का ही वर्णन किया है। कवि ने नारद से पूछा—

'समग्रा रुपिणो लक्ष्मी कमेकं संश्रिता नरम्'।

नारद प्रत्युत्तर में कहते हैं -

देवष्यपि न पश्यामि कांश्चिमिर्गुणैर्यंतम्।
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तोनर चन्द्रमाः॥

रामायण में नर चन्द्रमा का ही वर्णन है, देवता का नहीं। देवता कोई कर्म करके मनुष्य नहीं होना चाहता, मनुष्य ही अपने पौरुष, बल सत्कर्म से देवता हो जाता है। देवता अपने निकृष्ट कर्म से मानव योनि में आ जाते हैं। राम स्वयं अपने पौरुष और पुरुषार्थ से मनुष्य से देवता अवतारी पुरुष माने जाने और पूजित होने लगे। अतः देवतागण भी उन्हें ईश्वरावतार समझ कर स्तुति करने लगे। देवताओं द्वारा अपनी स्तुति सुनकर राम ने कहा— हम अपने को दशरथ पुत्र मनुष्य ही जानते हैं।

आत्मानम्मानुषम् मन्ये रामम् दशरथात्मजम्।
सोहहमयश्च यतश्चाहम् भगवान् तद् ब्रवीतुमे॥

राम ने कहा--मैं अपने को दशरथ पुत्र मनुष्य ही समझता हूं। यह सुनकर ब्रह्मा रामचन्द्र से कहते हैं--आप साक्षात नारायण हैं, इत्यादि।

भवान् नारायणोदेवः श्रीमान् चक्रायुधः प्रभु।

आगे ब्रह्मा ने फिर कहा--

सीतालक्ष्मीर्भवान विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
बधार्थम् रावणसोह प्रविष्टोमानूषीम्तनुम्॥

बा० रा० उ० ११९-२७

सीता स्वयं लक्ष्मी एवं आप भगवान विष्णु हैं। रावण बध के लिए ही मानवी शरीर धारण किए थे। रामावतार का प्रयोजन ही रावण बध था।

तदिदम् नश्वरो कार्यम् कृतम् धर्मभूताम्वर।
निहतो रावणो राम! प्रह्लष्टो दिवमाक्रम॥

बा० रा० उ० ११९-२८

टीकाकार रामानुज कहते हैं--रावण वध के पश्चात आपका अवतार तत्त्व शेष हो गया।

अवतार कहने से साधारणतया हम 'अप्रपन्यात प्रपंचे अवतरनम् अवतार:। अप्रपंच से प्रपंच में प्रवेश करने का नाम अवतार है। अतः विष्णु द्वारा राम के शरीरधारी रूप में अवतरण होने से राम को अवतार कहा जाता है।

राम जीवन के सभी भोग भोगे, वह धर्म, सत्य और न्याय के अवतार थे परन्तु प्रेमावतार नहीं हो सके। उनका दाम्पत्य सुख आदि से अन्त तक दुःखमय रहा। केवल कृष्ण ही पूर्णावतार कहे जाते हैं क्योंकि ये धर्म, न्याय और प्रेम के तीनों गुणों से परिपूर्ण थे। रामावतार का कारण--

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुनाम विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

राम-राज्य—

त्रेतायुग का राम राज्य वह, कलियुग का आलोक दिखाये।
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन-स्वप्न सत्य बन जाये॥
भारत की सीता-समृद्धि को रावणत्व से मुक्त कराकर।
खिल जाये रामत्व मनुज का, ऐसा योग रच विश्वेश्वर॥
हम केवल दुष्कृत्य-विरोधी, व्यक्ति-जाति से हमें न वैर।
संयोजक हम, कभी न देते वृथा ध्वंस के पथ पर पैर॥
किंतु न्याय अधिकार हमारा, उस पर जो करता है वार।
ढाल हमारी तन कर बनती उसके लिए तीक्ष्ण तलवार।

सीता परित्याग--

प्रजा रंजन राजा रामचन्द्र के शासन काल में सभी प्रकार से प्रजा सुखी, सम्पन्न और निरापद थी। राजा रामचन्द्र भी प्रजा के सुख को अपना सुख और प्रजा के दुख को अपना दुख समझते थे। सर्व प्रकार से प्रजा के सुख का सदा ध्यान रखते थे। प्रजा भी राजा का वैसे ही ध्यान रखती थी। राज्य में सभी प्रकार के अच्छे

और बुद्धिहीन लोग भी होते हैं। सहसा एक दिन किसी ने राजा रामचन्द्र से आकर कहा—महाराज ! कुछ प्रजा आपके आचरण और व्यवहार से असंतुष्ट हैं। उसने कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि जिस सीता को राक्षस रावण ने वर्षों अपने अधिकार में रखा था फिर राम ने बिना सोचे बिचारे साता को पुनः कैसे ग्रहण कर लिया। यदि ऐसा हुआ तो सभी प्रजा ऐसा ही करने लगेगी। यह कार्य उचित नहीं हुआ। राम प्राण से भी अधिक अपने प्रजा के हित की बात सोचते थे। पहले प्रजा फिर राजा। यह लोकापवाद सुनकर राम को अति चिन्ता हुई और राम ने लोकापवाद को सब बातें सीता को कह सुनाया। सीता ने कहा—प्राणनाथ ! कोई भी ऐसा कार्य न करें जिससे आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा की हानि हो। यदि प्रजा हमारे परित्याग करने से प्रसन्न हो तो आप प्रजा रंजन कहलाने वाले प्रजा के लिये वैसा ही कार्य करें और निः-संकोच मेरा परित्याग कर दें। मैं सहर्ष महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर लूंगी। परन्तु आपकी निन्दा मैं नहीं सहन कर सकती। प्रजा रंजन राजा रामचन्द्र ने तत्क्षण सीता को वाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया। जिस समय राम सीता को वाल्मीकि मुनि के आश्रम में भेजने को प्रस्तुत हुए सीता ने रोते रोते राम से कहा—प्रभु ! मैं तो अभी अपना प्राण विसर्जन कर देती परन्तु ऐसा करने से हमारे कुल में आत्महत्या का भीषण दोष लग जायगा। अतः ऐसा मैं कदापि नहीं करूंगी। मैं जानती हूं कि आप भी सर्व प्रकार से जानते हैं कि मैं निष्कलंक और निर्मल हूं। परन्तु मेरा परित्याग आप केवल प्रजा रंजन के निमित्त ही कर रहे हैं। आपकी मर्यादा की रक्षा हेतु ही मैं आपके इतने कठोर आदेश का पालन कर रही हूं। यद्यपि मैं इस समय गर्भवती हूं जो आप भलीभांति जानते हैं फिर भी आपके आदेश का मैं कदापि उल्लंघन नहीं कर सकती। आज्ञा हो। सीता को लक्ष्मण दुखी होकर वाल्मीकि मुनि के आश्रम तपोवन में पहुंचा कर अयोध्या वापस आ गये। जब से राम ने सीता का परित्याग किया तब से राम सीता की एक स्वर्ण मूर्त्ति बनवा कर सदा अपने पास रखते थे।

वाल्मीकि के आश्रम में सीता को दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम लव और कुश रखा गया। महर्षि वाल्मीकि को सूचना मिली कि राजा रामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करने जा रहे हैं परन्तु सीता के बिना उनका यज्ञ कैसे सम्पन्न होगा। महर्षि बाल्मीकि ने कहा—

सीता निर्दोष, निर्मल और पवित्र है। इसके अतिरिक्त लंकापुरी में समस्त जनता के समक्ष उनकी अग्नि परीक्षा भी ले चुके थे। इसके पूर्व एक बार तो सीता की अग्नि परीक्षा लेकर ही उनका अपमान किया था। फिर पुनः मिथ्या लोकापवाद के भय से सीता का ऐसा अपमान क्यों कर रहे हैं? इसका समाधान पूर्व परिच्छेद में किया जा चुका है कि कोई एक प्रजा भी राम के प्रति मिथ्या निन्दा क्यों करेगा? सीता ने भी इसका पूर्ण रूपेण समर्थन किया है और स्वेच्छा पूर्वक वाल्मीकि आश्रम में अपने पति की प्रतिष्ठा की रक्षा हेतु गई। फिर भी राम ने लज्जित होकर सीता से अप्रिय व्यवहार के लिये क्षमा भी मांगी थी। जैसे कि उत्तर रामचरित में भवभूति ने कहा है—

देवि देवि अयं पश्चिमत्ते राम सीतायाः पद पाद स्पर्शः।

बाल्मीकि ने राम को कर्तव्यनिष्ट दिखाने की चेष्टा की है। किन्तु दो बार सीता का परित्याग करने की क्या आवश्यकता थी, विचारणीय है। सत्य पथ पर रहकर कर्त्तव्य पालन ही महापुरुषों के जीवन की सार्थकता और महत्ता है।

निन्दन्ति नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरनमेस्तु युगान्तरे वा।
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

तुलसीदास जी ने भी यही कहा है—

हाथी चले वजार में, कुत्ता भुके हजार।
साधू को दुर्भाव नहिं, जब निन्दे संसार॥

यद्यपि ऐसा व्यवहार राम के लिए शोभनीय नहीं मालूम पड़ता पर यह भी कहावत उचित प्रतीत होती है कि लोक निन्दा

सहन करने से मरना ही अच्छा है। सीता दोषी या निर्दोष थी राम को यह नहीं देखना था, वह तो प्रजा जन मन रंजक थे, जिससे प्रजा प्रसन्न रहे वही कार्य उनको करना था। लंका में सीता की अग्नि परीक्षा के समय प्रजा वहां नहीं थी, इस कारण सीता की शुद्धता को अयोध्या की प्रजा के सम्मुख भी प्रमाणित कर दिखाना था कि वह प्रजा भक्त रंजक भी हैं। प्रजा के सुख और प्रसन्नता हेतु कुछ भी दुःख सहन कर,सकते हैं। पर कुल के मर्यादा की निन्दा नहीं सहन कर सकते, चाहे सर्वस्व न्यौछावर करना पड़े पर अपवाद नहीं सुन सकते। वह अपने को मनुष्य ही समझते थे, देव पुरुष नहीं।

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।

वा. रा. ६।१२०।११

राम आदर्श राजा,आदर्श प्रजारंजक, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भ्राता और क्या-क्या नहीं थे धर्मात्मा,पुण्यात्मा, क्षमाशील, सुयोग्य, शासक, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रती, पराक्रमी, विद्वान, अक्रोधी, जीतेन्द्रिय और सर्वगुण सम्पन्न थे। राम चरित्र और राम कथा सर्व पाप हारी सद्गति मोक्ष दायिनी है। अन्त समय में राम ने पृथ्वी के सभी राजाओं और प्रजाओं से यही कहा—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालः नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
मद्धोयं धर्मं सेतुर्नराणाम काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

उत्तर रामचरित में भवभूति ने कहा है—

वज्रादपि कठोराणिमृदुणि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणाम् चेतांसि कोन्यू विज्ञातुमर्हति॥

राम का हृदय वज्र से कठोर और कुसुम से भी कोमल था। एसे महापुरुष के चरित्र को कौन समझ सकता है? महामानव के चरित्र को महामानव विश्व मानव ही समझ सकता है।

वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन पृथिवीमिमाम्।
एवदत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णु रात्मवान॥

वा॰ रा॰ १।१५।२६

बिष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकवर्धनम्।
कौसल्यासुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा॥
बा० रा० १।१८।११

राम के दोषारोपण का निवारण—

आततायिन हत्वा नात्र प्राणच्छेतु।
किं चिकिल्विष माहुः॥ वशिष्ठ ११७

आततायी का बध करने से पाप नहीं लगता।

द्वितीयम पराधन कस्यचित क्षमेत।

दूसरी बार किया हुआ अपराध क्षम्य नहीं है। -विष्णु

अग्नि दोरदश्चैव शास्त्र पाणि धनापहा।
क्षेत्र दारापहर्त्ता च षडेतेय्याततायिनः॥

आग लगाने वाला, हाथ में शस्त्र लिए हुए मारने को उद्यत, धन हरण करने वाला, जमीन छीनने वाला और स्त्री हरण करने वाले ये आततायी है।

पर दारामिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्मही पतिः।
उद्वेजनकरैर्दंण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत॥ मनु०-८-३५२

पराई स्त्री के साथ सम्भोग करने में प्रवृत्त मनुष्यों को राजा भयंकर दण्डों से नाक, कान आदि कटवा कर देश से निकाल दे।

तवाहं वादिनं क्लीवनिर्हेति पर संयतम्।
न हन्या द्विनिवृतज्य युद्ध प्रक्षण कादिकम्॥

युद्ध भूमि में 'मैं तुम्हारा हूं' ऐसा कहे उसे, नपुंसक को, युद्ध भूमि से भागने वाले को, या दर्शकों को नहीं मारना चाहिए।
याज्ञ० ३२६

धर्मेहि दण्ड रूपेण ब्रह्मण निर्मितः पुराः।
सने तु न्यायतोऽशक्यो लुब्धे नाक्रत बुद्धिना॥

राजा दुष्ट चरित्र वाले को उचित दण्ड देकर धर्म की रक्षा करें। ब्रह्मा ने इसीलिए धर्म बताया। याज्ञ० ३२४

उपजप्यानुपज पे द्वये तैव चतत्कृतम।
युक्ते च दैवे युध्येत जय प्रेप्सुखे तमीः॥

शत्रु पक्ष के जो लोग फोड़ लेने योग्य हो उन्हें फोड़ ले और उनके कार्य का जाने। विजय चाहने वाला राजा भय रहित होकर युद्ध समय में युद्ध आरम्भ करे।

तद्वै दन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः।
न स्वर्गाच्च्यवते लोका छैवीं वाचं वदन्तिताम् ॥

सच्ची बात को जानता हुआ भी जो मनुष्य धर्म के लिए झूठ बोलता हैं वह स्वर्ग से वञ्चित नहीं होता। उस वाणी को दैवो वाणी कहते हैं।

शास्त्रं द्विजातिभिर्गाह्यं धर्मो यत्रोप सध्येत।

धर्म एवं संस्कृति लोप होती हो तो द्विज आदि सब वर्गों को शस्त्र ग्रहण करना चाहिए।

प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमन्वतम् भवेम्।
सर्वस्वस्या पहारे च वक्तव्यमन्वतम् भयेत् ॥

विवाह काले रति सम्प्रयोगे प्राणात्ययेसर्वधनापहारे।
विप्रस्य यार्थेन्हन्वतवदेत पंचा नृतान्याहुर पातकानि ॥
न नर्म युक्तं वचनहि नास्ति न स्त्रीषु राजन विवाह काले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पंचानृतान्याहुर पातकानि ॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
स्त्री विप्राभ्यु पपत्तौ चध्नन्ध धर्मेण न दुष्यन्ति ॥

अपनी दक्षिणा में दी हुई स्त्री और ब्राह्मणों के विपत्ति में धर्म, युक्त युद्ध में अत्याचारी का वध करने में पाप नहीं होता। न वध करनेवाला अपराधी होता है। मनु०

गुरु वा बाल वृद्धो वा ब्रह्मणा व बहुश्रुतम्।
आततायिन मा यान्तं हन्या देवा विचारयन ॥

गुरु, बालक, वृद्ध, अधिक शास्त्र पढ़ा ब्राह्मण भी आततायी बने से मारने को चढ़ आवे तो बिना विचारे उस पर प्रहार करे।

आततायि बधे दोषां हन्तु भवति नास्यन।
प्रकाशं व अप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्यु मृच्छति ।:

प्रकट या छुपकर मारने को उद्यत आततइयों को मारने का दोष नहीं लगता। मनु० ८-३५१

जनि डरपहुं मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेशा ॥
अंसन सहित मनुज अवतारा । लेइहउँ दिनकर वंस उदारा ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

राम का कोमल हृदय —

पुरते निकसी रघुवीर बधू, धरि धीर दियो मग में पग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूख गये मधुराधर द्वै ।
फिर बूझति है चलनो अब केतिक, पर्ण कुटी करिहौ कित ह्वै ।
तियकी लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चली जलच्वै ।

श्रीराम के विशिष्ट गुण —

नमामी शमीशान निर्वाण रूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपं ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाश वासं भजेहं ।
निराकार मोंकार मूलं तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीत मीशं गिरीशं ।
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसार पारं नतोऽहं ।

यन्माया वशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देव सुरा ।
यत्सत्वाद मृषैव भाति सकलं रज्जो यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादालव मेक मेव हि भवाम्भोधेस्ति तीर्षावतां ।
बन्देऽहं तम शेष कारण परं रामाख्य मीशं हरिम् ।

राम का अवतारी गुण —

जब जब होइ धरम के हानी । बाढ़इ असुर अधमं अभिमानी ॥
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा । हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द भगवाना ॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भक्तन हित लागी । परम कृपालु प्रनत अनुरागी ॥

राम का अगुन-सगुन स्वरूप—

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साथी॥
अगुन सगुन दोउ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनन्द राशी॥
राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नारद, जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥
अपितु अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुकुति हरि नाम प्रभाउ॥
कहौं कहाँ लौ नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥
विष्णु जो सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी॥

श्रीराम महिमा—

रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
राम कथा सुन्दर करतारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥
जथा अनन्त राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन गाना॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता में जड़ माया। भास सत्य इह मोह सहाया॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। गहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा तासु जाइ नहिं बरनी॥
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुर बासी॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इद मित्थं कहि जाइ न सोई॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥

राम का अनुपम चरित्र—

व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप।।

नारद का श्राप—

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं।।
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा।
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह असको जग जाया।।
परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावहि मनहि करहु तुम सोई।।
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहु गे फल आपन कीन्हा।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी।।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे।असि परतीति तजहु जनि भोरे।।
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।
भुजबल बिश्व जितब तुम्ह जहिआ।धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ।
हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता।।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा।।
आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया
हरिब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहि मैं जाना।।

धनुष यज्ञ-सीता की निराशाजनक स्थिति—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सबु ठाढ़े।।
नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू।।
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सबविधि बाम बिधाता।।

राम की राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा—

दोहा—लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कंद।
जनक सुता सन बोले, बिहंसि कृपा सुख बृन्द।।

सुनहु प्रिया ब्रत परम सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला।।
तुम पावक महं करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कथा बखानी। प्रभु पद धरिहिय अगिन समानी।।
निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।

लछिमनहू यह मरमु न जाना। जो कुछ चरित रचा भगवाना ।।
बिरहवंत भगवन्तहि देखी । नारद मनभा सोच बिसेखी ।।
मोरे साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ।।

राम का अवतार—

ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता ।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी : कृपा सिंधु मानुष तनु धारी ।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई ।।
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेहि करब धरहु मन धीरा ।।
मम हित लागि जन्म रन हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे ।।
व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा ।।
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं ।।
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखेउँ बाल बिनोद अपारा ।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबसे अधिक मनुज मोहि भाए।।
अखिल विश्व यह मोर उपाया। सब पर मोरि बराबर दाया ।।
पुनि पुनि सत्य कहउं तोहि पाहीं।मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं
कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ।।
कलियुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना ।।
सोइ भवतर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ।।
ईश्वर अंसजीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी ।।
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहु ताके ।।
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ।।
राम कथा कर तेहि अधिकारी। जिन्ह के सत संगति अति प्यारी ।।

जनकानाम् रघुणांच यत्कृत्स्न गोत्र मंगलम् ।
तत्राप्य करुणे पाने बृथा वः करुणा मयि ।।
देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिरग्ननैरं युतम् ।
तू गुनैरेभिर्यो युवतो नर चन्द्रमाः ।।

रावण द्वारा राम का प्रभुत्व स्वीकार रावण—

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।
तौं मैं जाइ बैरु हठ करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ।।

राम नाम महत्व—

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।
नाम रूपदुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।
राम भगति हित नर तनुधारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।।

राम कथा का प्रभाव—

राम कथा सुन्दर करतारी। संसय बिहग उडावन हारी।।

राम का सगुण-निर्गुण स्वरूप—

सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज होई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।।
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम असगावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ विधि नाना।।
तनु बिनु परसु नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेखा।।
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इद मित्थं कहि जाई न सोइ।।
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं वरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।।
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं।।
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं।।
हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब संता।।

पृथ्वी व देवों की स्तुति—

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।
बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा।।
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

देवोंकी पुकार सुनकर आकाश वाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्धि सुरेसा।तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।
अँसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहऊँ दिनकर बंस उदारा।।

ताड़का बध—

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। विश्वामित्र महा निधि पाई।।
चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।
सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। शत जोजन गा सागर पारा।।
आश्रम एक दीख मन माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।

दोहा—गौतम नारि साप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर।।

धनुष यज्ञ—

विश्वामित्र समय शुभ जानी। बोले अति सनेह मय बानी।
उठउ राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।
गुरुहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सबु ठाढ़े।
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।

परशुराम का क्रोध—

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।।

श्री राम कहते हैं :—

नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।२३।

परशुराम कहते हैं :—

सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा।।
अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी।।
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।।
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू।।
देत चाप आपुहि चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ।।
कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू।।

राम का राज्याभिषेक चर्चा—

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू।।

सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहि देव कुचाली ॥

राज्याभिषेक का कैकेई द्वारा विरोध : दशरथ से वर मांगती है—

सुनहु प्रान प्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहिं टीका ॥
मागउँ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस वेष विसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी ॥

बन गमन—

राम तुरत मुनि वेषु बनाई। चले जनक जननिहिं सिरुनाई ॥

राम विलाप—

कहेउ राम बियोग तब सीता। मो कहँ सकल भए विपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु वरिसा ॥
कहेहु ते कछु दुःख घट होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥

काहे ने ओ करुणा ना सागर तने कोणे जई पाषाण भरो।
वे पत्थर पसंद केम करो।

मंदिर के मस्जिद नो सत्व तत्व मा तू ज निरन्तर।
तोए निराकार धरी ने तूँ ढरी ढरो ने पाषाण डर्‍यो ते पत्थर।
तूने चौदह दरसना बन ना वास बन उपवन विसे उमर्‍यो।
प्यारे चरण नीचे फूल ढगे जेमें कचर्‍यो।
सीता नूँ जाने हरण करी ने रावण लंका ने पार खर्‍यो।
प्यारे मण्यू नाम न कोई मारूँ साली आ पत्थर नी पत्थर उगर्‍यो।
एकज मारा राम नाम पर आ पत्थर सागर पार कर्‍यो-सम्भणभन।

राम जन्म—

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकलपक्ष अभिजित हरि प्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीत न धामा। पावन काल लोक विश्रामा ॥
भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
विन्ध्य के बासी उदासी तपो व्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि बृन्द सुखारे ॥
ह्वै हैं शिला सब चन्द्रमुखी परसे पदमंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जी करुणा करि कानन को पग धारे।

केवट की भक्ति—

श्री राम केवट से पार उतारने को कहते हैं।

मांगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मै जाना ॥
चरन कमल रज कहु सब कहई। मानुस करनि मूरि कछु अहई ॥
छुवत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उठाई ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥
कृपा सिन्धु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहि नर भव सिन्धु अपारा ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥

दोहा—पद पसारि जलुपान करि, आपु सहित परिवार।
पितरि पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार ॥

चित्रकूट जाना—

चित्रकूट रघुनन्दन छाए। समाचार सुनि-सुनि मुनि धाए ॥

चित्रकूट में राम-भरत मिलन—

मिलन प्रीति किमिजाइ बखानी। कविकुल अगम करम मन बानी ॥
जथा जोग करि विनय प्रनामा। विदा किए सब सानुज रामा ॥

सीता हरण—रावण कहता है—

सुर रंजन भंजन महिभारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ वैरु हठि करऊँ। प्रभु सरप्रान तजे भव तरऊँ ॥

राम का सीता को अग्नि के सुपुर्द करना—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा ॥
जबहिं राम सब कहा बखानो। प्रभुपद धरि हिय अनल समानो ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता। तैसइ सील रूप सुविनोता ॥
लछिमनहुं यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना ॥

जय आर्य धर्म ध्वजधारी, युगपुरुष राम की जय हो।
युगमूर्ति मृदुल मंगलमय, नयनाभिराम को जय हो।
आदर्श मनुष्यत्व राम के स्वरों में स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

मन में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

राम विभीषण से कहते हैं।

राम की भक्त वत्सलता—

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै समय सरन तकि मोही॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
असि कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अचारा॥

श्रीराम का लंका प्रवेश—

देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना॥
लिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥
सेन समेत उतरे रघुवीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥

सीता की खोज में श्रीराम आगे चले—

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥
पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥

श्रीराम कहते हैं—

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

लक्ष्मण शक्ति से राम का विलाप—

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

दोहा—राम पदारबिंद सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन सुत लेन॥

देखा सैल न औषधि चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।।
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ।।

राम का विलाप—

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी।सब विधि सुखद परम हित जानी
उतर काह पैहउँ तेइ जाई। उठि किन मोंहि सिखावहु भाई।।

राम रावण युद्ध—विभीषण श्रीराम से कहते हैं—

मरइ न रिपु श्रम भयउ विसेषा। राम विभीषन तन तब देखा।।
सुनु सरवग्य चराचर नायक। प्रनत पाल सुर मुनि सुखदायक।।
नाभि कुंड पियूष बस याके। नाथ जिअत रावनु बल ताके।।

श्रीराम ने रावण वध के लिए मृत्यु बाण छोड़ा—

सायक एक न भि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा।।
वरषहि सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा।।

राम का महादेव के प्रति भक्ति—

मनुज दनुज आराध्य एक हैं, संस्कृतियों का साध्य एक है।
यही दिखाने सागर तट पर, महादेव की मूर्ति बनाई।
करिहउँ इहाँ संभु थापना, मोरे हृदय परम कल्पना।।

लिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
शिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुं मोहि न भावा।।
संकर विमुख भक्ति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।

दोहा—संकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास।।

राम का अवतार—

राम तुम्हारे इसी धाम में नाम रूप-गुण-लीला लाभ।
इसी देश में हमें जन्म दो, लो प्रणाम हे नीरज नाभ।।
धन्य हमारा भूमि भार भी, जिससे तुम अवतार धरो।
भुक्ति मुक्ति मांगे क्या तुमसे, हमें भक्ति दो ओ अभिताभ।।

रावण की शरणागति पर राम के उद्गार—

कह दूं, वतला दूं ? क्या है वह जो सम्मुख आई कठिनाई।

रावण भी शरण हो गया, तो लंकेश को न होगा भाई।
भक्त विभीषण तनिक भी चिन्ता को हो प्राप्त।
बोले हम भारतवासी हैं, शरणागत को न भुलायेंगे।
इनको लंकेश बनाया तो उसको अवधेश बनाएँगे।
अब तक दो भाई फिरते थे, वन में वनबासी होकर।
अब चारो भाई विचारेंगे सब जग में सन्यासी होकर।

राम की याचना—

नाम अजामिल से खल कोटि, अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिलाकन, होत अजाखुर वारिधि बाढ़े।
तुलसी जेहि के पदपंकज ते विकसी तटनी जो हरै अध गाढ़े।
सो प्रभु या सरिता तरिबे कहँ, मांगत नाव करारे है ठाढ़े।

राम महिमा—

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद में भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच बिमोचन की, ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन, नयन सुरंजन जातक से।
सजनी ससि में सम सील उभै, नव नील सरोरुह से बिकसे।।
कागर कीर ज्यों भूषन चीर, सरीर लस्यो तज्यो नीर ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनी भाई भलो, दिन द्वै जनु औंध हुते पहुनाई।
राजीव लोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।
रावरे दोष न पायन को, पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन ते वन बाहन काठ को, कोमल हैं जल खाइ रहा है।
पावन पाय पखारि के नाव, चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के वर वैन, हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।।

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ट से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपति परी।
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारिधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लै गो रावन, सुबरन लंक जरी।
नीच हाँथ हरिचन्द बिकानो, बलि पताल धरी।

कोटि गाय नित पुण्य करै नृग गिरगिट जोन परी।
पांडव जिनके आप सारथो, तिन पर विपति परो।
दुर्योधन को गरब नसायो, जदु कुल नास करी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होइके रही॥

भावी काहू सा न टरै।
कहँ वह राहु कहाँ वै रवि-शशि आनि सयोग परो।
मुनि वशिष्ठ पंडित अति ज्ञानी रुचि रुचि लगन धरो।
तात मरन, तिय हरन, राम बन, वपु धरि बिपति मर।
रावन जोति कोटि तैंतीसो. त्रिभुवन राज करं।
मृत्युहि बाधि कूम में राखै, भावी बस सो मरै।
अर्जुन के हरिहु सारथी, सोउ बन जा निकरै।
द्रुपद सुता कौ राज सभा दुस्सासन चीर हरं।
हरीचन्द सो को जग दाता, सो तो नीच घर नीर भरै।
जो गृह छाँड़ि देसु बहु धावै, तउ वह संग फिरै।
भावी कै वस तीन लोक हैं, सुरनर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वं हैं को करि सोच मरै।
राम नाम रस पीजै मनुआँ राम नाम रस पोजै।
तज कुसंग सतसंग बैठियत हरि चरणा सुन लीजै।
काम क्रोध मदमाह लोभ मोह को वहा चित्त से दीजे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर नाहि रंग में भीजै॥

करम गति टारे नाहिं टरै।
सतवादी हरिचन्द से राजा सो तो नीच घर नीर भरै।
पांच पांडु अरु कुन्ती द्रौपदी होड़ हिमालय गरे।
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासन सो पताल धरे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे।

पग घुंघुरु वांध मीरा नाचो रे।
लोग कहें मीरा हा गई बावरी, सास कहे कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणा जी ने भेजा पीवत मीरा हांसी रे।
मैं तो अपने नारायण की हो गई आपहि दासी रे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर वेगि मिलो अविनासी रे।

भरत चरित्र—

अनवउ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

भरत का मातुल गृह से अयोध्या आना—

कहु कहँ तात कहां सब माता। कहँ सिय रामलखन प्रिय भ्राता॥

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन।
हेतु अपनपउ जानि जियँ, थकित रहे धरि मौन॥

मातु तात कहं देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू।
धिग मोंहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुःख दूषन भागी।
करत विलाप बहुत यहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती।

दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोंहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु।

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

दो०—किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कह, जस भा भरतहि जात॥

ते सब भए परन पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जितहि रामु मन माहीं॥
भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

दो०—राम भगत परहित निरत, पर दुःख दुःखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल॥

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

भरत का राम से मिलने चित्रकूट जाना—

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।
करि प्रनामु पूँछहि जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही।
बहुरि सोच बस भे सिय रवनू। कारन कवन भरत आगवनू।
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी।
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।

दो०—भरतहि होइ न राज मद, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँकि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु बिन साइ।

दो०—सुनि रघुवर वानी विबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ।।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुरि धरनि धरत को।
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा।
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।

भरत हनुमान मिलाप—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुःख भयउ अपारा ।।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल मोहिं बिसरायउ ।।
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी ।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाउ ।।

दो०—राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत ।।

दोहा—बैठे देखि कुसासन, जहाँ मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात ।।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरसेउ ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी ।।
जासु बिरह सोचहु दिनराती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती ।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता ।।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ।।
को तुम तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ।।
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपा निधाना ।।
दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ।।
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता ।।
२।२३१।३

अगम अनेह भरत रघुवर को। जह न जाइ मन विधि हरि हर को।।
२।२५२।१-४

भरत—

माता कैकेयी के कारण भरत को जिस असह्य वेदना और अपयश का सामना करना पड़ा भरत हो जैसा साधु पुरुष ही सहन कर सकता है। वे अपने ही को दोषी ठहराते हुए कहते हैं—'मोहिं लगि भेष सिय राम दुखारी। अपने निर्दोष होने का प्रमाण देते हुए माता कौसल्या से कहते हैं—

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहिं होहुं विधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥

तूम्हरो करनी पर धधक रहा उर मेरा।
है काल पाश सा मुझे घोर यह घेरा॥
धिक धिक केकय की भूमि कुचक्रों वाली।
जिसने मंथरा समान नागिनी पाली॥
माँ कहूं मानवी या कि दानवी नारी।
डाकिन ने दुर्धरमूठ अवध पर मारी॥
किस मुख से कह दूँ इसे कि मेरी माँ है।
यह घोर राक्षसी-निशा कठोर अमा है॥
भैया को कानन भेज पिता को मारा।
कैसे कह दूँ वह आर्य वंश की दारा॥

कैकेयी कत जनमी जग माँझा। जो जनमी तो भइ न किन बाँझा॥
यहि बड़ि बात भरत की नाहीं। सुमिरत राम जिनहिं मनमाहीं॥

बन्धु, करियो राज सँभारे।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारें॥
कौसल्या - कैकेई - सुमित्र - दरसन साँझ-सधारें।
गुरु वसिष्ठ और मिलि सुमंत सौं परजा-हेतु बिचारें॥
भरत-गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमंगि जल ढारे।
'सूरदास' प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे॥

तैं कैकई कुमंत्र कियौ।
अपने कर करि काल हकाय्यौ, हठ करि नृप-अपराध लियौ॥
श्री पति चलत रह्यो कहि कैसै, तेरौ पाहन-कठिन हियो।

मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहि बनवास दियौ ।।
कौन काज यह राज हमारैं, इहिं पावक परि कौन जियौ ।
लोटे 'सूर' धरनि दोउ बन्धु, मनो तपत विष विषम पियौ ।।
भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में ।
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन में ।।
साक्षाद विष्णोश्चतुर्भाग: सर्वै समुदिता गुणैः । आ.रा. १।१८।१३
पुष्य नक्षत्र मीन लग्ने राम से एक दिन छोटे ।
अयोध्या आते समय भरत का स्वप्न । वा. रा. ३।४५।४०

हन्यामहमिमाम् पापां कैकेयीम् दुष्ट चारिणीम् ।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृ घातकम् ।।
वा. रा. २।७८।२२

राम कहते हैं—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमा: ।
मद्विधा वा पितु: पुत्रा सुहृदावाभवद्विधा: ।।

भरत की तरह भाई, मेरे तरह पुत्र, तुम्हारे (सुग्रीव) तरह बन्धु होना दुस्तर है ।

भरत चरित्र—

रामायण महाकाव्य के नर नारी पात्रों में यदि किसी पात्र का उत्तम निर्मल और निर्दोष चरित है तो वह है भरत का । राजा दशरथ ने भरत के बारे में अपने प्रियतमा रानी कैकेयी से कहा था—'रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्' भरत को हम राम से भी अधिक धर्मात्मा समझते हैं । बाल्मीकि मुनि ने रामायण के सभी नर-नारी पात्रों का चरित्र मनुष्य रूप में ही चित्रित किया है, अत: मनुष्य में कुछ न कुछ दोष होता ही है । इसी कारण रामायण के प्रत्येक पात्र में कुछ न कुछ दोष मिलते हैं और कोई भी निर्दोष नहीं दिखाई पड़ता । सूक्ष्म दृष्टि से देखने से एक मात्र भरत का ही चरित्र निर्दोष जान पड़ता है । अथ च भरत को ही सबसे अधिक लांछना और दोषारोपण सहना पड़ा है । राम के राज्याभिषेक के आयोजन में सन्देहवश दशरथ का भरत को मातुल गृह से न बुलाना ही सब अनर्थों का कारण है और जिस कारण से भरत को यावत जीवन भर उलाहना सहना पड़ा ।

कैकेयी के दुर्नीति की निन्दा करते हुए भरत ने कहा—

श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरो च विवासितौ ।
भरतो दुःख संतप्त इदं बचनम् ब्रवीत ।।

पिता और भाई के निर्वासन का वृतान्त सुनकर दुःख से संतप्त भरत यह वचन बोले—

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृ समेन च ।।
दुःखे मे दुःखम करो व्रणे क्षारमिवा दधाः ।
राजानं प्रतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम ।।
कुलस्य त्वमभावाय काल रात्रि रिवागता ।
अङ्गार मुपगुह्य त्वां पिता मे नाव बुद्धवान् ।।
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शने ।
सुखं परहृतं मोहात्कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि ।।
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसन्धो महायशाः ।

वा. रा. २।७३।५-६

गीतावली – पृ० ५३८

केहे को खोरि कैकइहि लावों ?
धरहु धीर, बलि जाउँ, तात ! मोको आज विधाता वावों ?
सुनिबे जोग वियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे ।
सो मेरे नयननि आते ते रघुपति बनहिं सिधारे ।।
तुलसीदास समुझाइ भरत कहँ, आँसु पोंछ उर लाए ।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुं राम फिरि आए ।।

गीतावली—पृ० ५७५

विनती भरत करत कर जोरें ।
दीन वंधु ! दीनता दीन की कबहुं परै जिनि मोरे ।।
तुम्ह से तुम्हहि नाथ मोको, मोसो जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिवे अब औगुन मेरे ।।
यों कहि सीय राम पायनि परि लखन लाइ उर लीन्हें ।
पुलक सरीर नीर भरि लोचन, कहत प्रेम-पन कीन्हें ।।
तुलसी बाते अवधि प्रथम दिन जो रघुवीर न ऐहों ।
तौ प्रभु चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहों ।।

गीतावली—पृ० ५५७

भरत भए ठाढ़े कर जोरि।
ह्वै न सकत सामुहें सकुच बस समुझि मातु कृत खोरि।
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।।
हृदय सोच जल भरे विलोचन, नेह देह भइ मोरि।
बनवासी, पुरलोग, महामुनि किए हैं काठ के-से कोरि ।।
दै दै श्रवन सुनिबे को जहँ-तहँ रहे प्रेम मन बोरि।
तुलसी राम सुभाव सुमिरि, उर धरि धीरजहि बहोरि।
बोले वचन विनीत उचित हित करन-रसहि निचोरि ।।

मंथरा के कुमंत्रणा से कैकेयी ने अनर्थकारी कार्य किया और उसके प्रायश्चित स्वरूप भरत को दुःख और कष्ट सहना पड़ा। अथ च सब लोगों ने इस अमंगलकारी काण्ड को भरत का ही षड्यंत्र समझा था। वन जाते समय राम ने भी कहा था कि यह सब भरत का रचा हुआ कपट जाल है। यहाँ तक कि जो दूत भरत को मातुल गृह से अयोध्या लाने हेतु भेजे गये थे उन्होने भी भरत के अयोध्या का कुशल मंगल पूछने पर कटाक्ष और व्यंग भाव से उत्तर दिया था। दूतों ने कहा था कि आप जिसका कुशल पूछ रहे हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं। यहाँ तक कि जब भरत राम को वापस लाने के लिए चित्रकूट गये तो वहाँ लक्ष्मण ने उनके विरुद्ध शंका और क्रोध करके वध करने पर उद्यत हो गए। केवल इतना ही नहीं स्वयं राम ने भी कभी कभी भरत के प्रति शंका प्रकट की थी।

राम ने सीता को भरत के सम्मुख अपनी प्रशंसा करने से मना किया था। उन्होंने सीता से कहा था—ऐश्वर्यवान पुरुष दूसरे की प्रशंसा सहन नहीं कर सकता, तदुपरान्त जब लंका से राम अयोध्या वापस आते समय प्रयाग के पास भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुंचे तो सर्व प्रथम स्वयं अयोध्या में प्रवेश न करके हनुमान को भरत का आन्तरिक भाव और भेद जानने हेतु अयोध्या भेजा था। ऐसा होने पर भी राम ने भरत के गुणों की बार-बार निजमुख से प्रशंसा भी किया है कि भरत के समान भाई नहीं, स्वार्थ विहीन निर्मल चरित्रवान पुरुष संसार में दुर्लभ हैं।

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम, राम जप जेही।।
'मम प्राणैः प्रियतरः

राम को मनाने भरत जब चित्रकूट जा रहे थे तो मार्ग में भरद्वाज के आश्रम में गए। भरद्वाज मुनि उन्हें देखकर कहते हैं—

भरत धन्य तुम्ह जसु जग जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।।

दोहा—किएँ जाइ छाया जलद, सुखद बहइ बरबात।
तस मगु भयउ न राम कहं, जसभा भरतहि जात।।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।।
ते सब भए परम पद जोगु। भरत दरस मेटा भव रोगु।।
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं रामु मनु माहीं।।
बरषि प्रसून हरषि सुर राऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ।।

चित्रकूट जाते समय कुछ लोगों नें भरत के प्रति शंका प्रकट की थी—जैसे—

विषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई।।
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ।।
कही तात तुम नीति सुहाई। सब ते कठिन राज मदु भाई।।

लक्ष्मण ने बार-बार कहा था 'भरतस्य वधे दोषम् नाहम् पश्यामि राघव', हे राघव! भरत का वध करने में हम कोई दोष नहीं देखते हैं। यही नहीं, राम को वापस लाने हेतु भरत जब वन की तरफ जा रहे थे तो मार्ग में भरद्वाज मुनि ने भी भरत के प्रति शंका प्रकट की थी कि वे क्यों जा रहे हैं। अथ च राम कहते हैं—पग-पग पर भरत को कैफियत देना पड़ता था। भरत अपनें ननिहाल से जब अयोध्या वापस आ रहे थे तो मार्ग में ही उनको अनेक अशुभ लक्षण दिखाई पड़े। अयोध्या में आनें पर पिता की मृत्यु, राम, सीता और लक्ष्मण सहित बनवास का समाचार सुनते ही भूमि पर बेहोश होकर गिर पड़े। सचेत होने पर अपनें माता कैकेयी के अनर्थकारी काण्ड का विवरण जब सुना तो माता कैकेयी की नाना प्रकार से भर्त्संना करने लगे। राम नें क्या अपराध किया था? कहने लगे तुम अश्वपति की कन्या नहीं हो उनके वंश में तुम राक्षसी उत्पन्न हुई हो। तुम नरकगामी हो। उसी

समय कौशल्या ने भरत को बुलवाया और कहा—तुम हमको राम के पास पहुंचा दो और माँ बेटा दोनों अयोध्या का निष्कंटक राज करो। भरत के नेत्रों से निरन्तर अश्रु की धारा बहाते रोते-रोते माँ कौशल्या को समझाया कि वे निर्दोष हैं। अन्त में कौशल्या को विश्वास हुआ कि भरत निर्दोष हैं। तब उन्होंने भरत को अपने हृदय से लगा लिया और रोने लगीं। भरत पिता दशरथ की अन्त्येष्ठि क्रिया करने श्मशान घाट पर गये और रोते हुए कहने लगे—हे पिता! आप राम को वन भेजकर कहाँ चले गए? ऐसी विषम और जटिल स्थिति में भी भरत ने आदर्श, मर्यादा और धैर्य को नहीं छोड़ा, यही उनके जीवन की महानता है।

भरत तुम्हारा आज यह कैसा भयंकर वेश है।
है और सब निःशेष केवल नाम ही अवशेष है॥
हाँ राम! हाँ हाँ कृष्ण! हाँ हाँ! हाँ रक्षा करो।
मनुजत्व दो हमको दयामय, दुःख दुर्बलता हरो॥
भरत से सुत पर भी संदेह। बुलाया तक न उसे जो गेह॥

वन्दीगण भरत को राजसिंहासन पर बैठाने के समय पर स्तुतिगान करने लगे तो भरत ने उनसे कहा—यह सब मंगलगान बन्द करो, राजसिंहासन के अधिकारी राजनियमानुसार राम ही हैं। भरत ने कहा! मैं राम को वापस लाऊँगा या इसके बदले मैं ही चौदह वर्ष वनवास करूँगा। दूसरी तरफ शत्रुघ्न जब मंथरा को मारने लगे तो भरत ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। भरत राम को वापस लेने हेतु जब वन की तरफ जा रहे थे और भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे तो वहाँ अपने साथ के लोगों का परिचय देते हुए क्या कहा—हे मुनि! ये मेरी माता हैं। ये कुल-घातिनी है, ये ही सब अनर्थों का मूल हैं। परिचय देते देते रोने लगे।

भरत राम को चित्रकूट में मिलने का दृश्य अपूर्व था। इन दो महापुरुषों का मिलन अति करुणाजनक था। भरत को जटा धारण किये साधु भेष में देखकर राम चकित हो गए और पूछने लगे—भरत! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है? इस भेष में तुम्हारा वन में आना शोभनीय और उचित नहीं है। भरत ने कहा—हमारी माता

घोर पातकी नरकगामी है। आप उनकी रक्षा करें। हम आपके भाई हैं, शिष्य हैं और दासानुदास हैं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें। आप चलकर राजसिंहासन पर बैठें। हम चौदह वर्ष वनवास का जोवन व्यतीत करेंगे। किसी प्रकार भी राम वापस लौटने को प्रस्तुत नहीं हुए तो भरत हताश होकर भूमि पर गिर पड़े और राम का पाँव पकड़ कर रोने लगे। अन्त में राम के सान्त्वना देने पर उनकी पादुका लेकर भरत वापस अयोध्या आए और चौदह वर्ष तक पादुका के आधार पर प्रतिनिधि रूप से अयोध्या राज का प्रबन्ध और संचालन करते रहे। इन चौदह वर्षों में साधु भेष में रहकर अयोध्या के प्रासाद से दूर नन्दी ग्राम में कन्द मूल फल फूल खाकर राम की माला जपते हुए अपना जीवन व्यतीत किया। एक दिन लंका में राम ने सुग्रीव से कहा था, हे सुग्रीव! संसार में भरत के सदृश भ्राता कहाँ मिलेगा ?

भरत—

विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सल.।
कस्मात्प्रव्राजितो रामः कस्मा देव वनं गतः ॥ बा.रा.२।७३।७

यथा—भरत ने कैकेयी माता की निन्दा करते हुए कहा—पिता और पिता के ही समान आदरणीय भाई से हीन मुझ मृतप्राय दुखिया को राज्य से क्या काम ? तुमने मुझे दुःख पर दुःख दिया और घाव पर नमक छिड़का है। तुमने महाराज दशरथ को मार डाला और रामको तपस्वी बना डाला। हमारे कुल का विनाश करने के लिये तुम काल रात्रि बन कर आई हो। बिना जाने समझे मेरे पिता ने तुम जैसी कुलांगार को अपनी पत्नी बना लिया। ओ कुल कलंकिनी! तुमने बुरे अभिप्राय से मेरे पिता को मार डाला और इस कुल का सारा वैभव सुख नष्ट कर दिया। तुम्हारे कारण ही सत्य प्रतिज्ञा और महायशस्वी महाराज दशरथ महान कष्ट सह कर मरे। मेरे धर्मवत्सल पिता महाराज दशरथ को क्यों मारा ? तुमने राम को क्यों तपस्वी बनाया और उन्हें वन को क्यों भेजा ?

भरत चरित्र—

यत्त्वया ही दृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा।
सर्व लोक प्रियं हित्वा ममाप्या पादितं भयम् ॥

भरत ने अपनी माता कैकेयी के प्रति कहा—तुम राक्षसी ने ऐसा महान पाप किया है कि सर्व लोक प्रिय राम हम लोगों से बिछुड़ गए हैं।

मातृ रूपे ममामित्रे नृशंसे राज्य कामुके।
न तेऽहम भिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनो ।।

जो माता रूप धारिणी मेरी क्रूर शत्रु! तू राज्य की लोलुप है। ओ पतिघातिनी और दुराचारिणी! तू मुझसे मत बोल। भरत ने कहा -

हन्या महमिमां पापां कैकेयी दुष्ट चारिणोम।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृ घातकम् ।।

यदि राम मुझे मां का हत्यारा समझ कर घृणा न करते तो इस दुष्ट कर्म करने वाली कैकेयी को मैं ही मार डालता।

प्रयाग में भरद्वाज मुनि भी भरत को सेना सहित चित्रकूट जाते समय देख वह भी शंका से वंचित न रह सके और कहा—हे भरत!

कच्चिन्न तस्या पापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकंटकं भोक्तुमना राज्यं तस्या नुजस्य च ।।

अब अपना राज्य निष्कंटक करने की इच्छा से उन महात्मा राम तथा लक्ष्मण के प्रति कोई बुरी भावना लेकर तो तुम नहीं आये हो ?

यहाँ तक कि निषाद राज ने भी भरत को सेना सहित देखकर शंका से क्रोधातुर होकर ऐसा वचन कहा—

बन्धयिष्यति वा दशानथ वास्मान् बधिस्यति।
अथ दाशरथिं रामं पित्रा राज्या द्विवासितम् ।।
सम्पन्नां श्रियमन्विच्छस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम्।
भरत कैकेयी पुत्रो हन्तुं तमुपगच्छति ।।

यह दुष्ट हम लोगों को रस्सों से बाँधेगा और उसके बाद अयोध्या से निर्वासित राम को मार डालेगा। महाराज की सारी सम्पत्ति हाथ में करने के लिए कैकेयी पुत्र भरत राम को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहता है।

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्या क्लिष्ट कर्मणः ।
इयं ते महती सेना शङ्का जनयतीव मे ।।

हा ! आप उदार राम के प्रति कोई बुरी भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं ? आपके साथ यह विशाल सेना देखकर संशय हो रहा है । अंत में भरत के आश्वासन देने पर उसे संतोष हुआ और कहा—

शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोका ननु चरिष्यति ।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्या नयि तुमिच्छसि ।।

दुःख में पड़े हुए राम को जो तुम लौटाने के विचार से जा रहे हो, इस कार्य से तुम्हारी अविनाशिनी कीर्ति संसार में बहुत समय तक फैली रहेगी ।

कच्चित सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या ।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य सारोगा चापि मध्यमा ।।

भरत ने कहा—सदा की स्वार्थिनी, क्रोधिनी और अपने को बुद्धिमान समझने वाली मेरी माता कैकेयी तो सकुशल है । भरत को कैकेयी के स्वाभिमानी चरित्र का पहले से ही मालूम था ।

रामायण के सभी पात्र पात्रियों में सर्वापेक्षा भरत का चरित्र अति उज्ज्वल, निर्दोष और निर्मल है । प्रयाग में गुह ने भी कहा था—इस त्यागी महापुरुष की कोई तुलना नहीं, ये धन्य हैं । पूर्व परिच्छेद में कहा गया है कि बाल्मीकि ने रामायण में पुरुष रूप में ही पात्रों का चरित्र वर्णन करने की इच्छा प्रकट की थी, इसी कारण किसी का चरित्र देवत्व की भावना से नहीं वर्णन किया और यही कारण है हर एक पात्र पात्री में कुछ न कुछ कलंक या दोष दर्शाया है । भरत प्रायः एक दो प्रसंग को छोड़कर आद्योपान्त निष्कलंक पाये जाते हैं । इसी कारण भरत को सबसे अधिक लाञ्छना भी सहना पड़ा । लक्ष्मण तो प्रायः बात-बात में भरत के प्रति सशंकित रहा करते थे । यही नहीं रामचन्द्र तक ने भी यदा कदा भरत को शंका की दृष्टि से देखा था । यहाँ तक कि १४ वर्ष का बनवास जीवन व्यतीत करने के उपरान्त जब राम अयोध्या वापस आ रहे थे उस समय भी राम ने भरत के प्रति संदेह प्रकट

किया था कि यदि भरत राज्य करना चाहते हैं या उन्हें राज्य का क्षोभ हो तो हम अयोध्या नहीं जायेंगे। अन्त में भरत से अयोध्या में मिलने के पश्चात राम ने भरत की जो प्रशंसा की है उससे भरत का चरित्र अति उज्ज्वल और निर्मल सिद्ध होता है। राम ने कहा—भरत के समान भाई होना दुर्लभ है।

वन में रहकर सन्यासी जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य पालन करना बहुत सहज है। किन्तु सर्व प्रकार के भोग, विलास और ऐश्वर्य के रहते हुए सन्यास और ब्रह्मचर्य जीवन पालन करना अति कठिन है। भरत चरित्र की यह सर्वोपरि साधना और तपस्या थी कि सब कुछ सुलभ होते हुए भी सन्यास और ब्रह्मचर्य का कठोर व्रत पालन किया। वे अकारण अनेक कष्ट पाये किन्तु कभी भी दैव पर अभियोग नहीं किया।

भरत ने कहा—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं सन्न्यासं पादुके ततः।
अत्र वीछुः श्वसंतप्त सर्वंप्रकृति मराऽलम॥

मेरे बड़े भ्राता राम ने यह राज्य मुझे धरोहर के रूप में सौंपा है और यह पादुकायें भी दी हैं। और इन्हीं पादुकाओं के सहारे मैं राज्य संचालन करूँगा।

ममैतां मातरं विद्धि नृशसा पाप निश्चयाम्।
यतो मूलम हि पश्यामि व्यरानं महदात्मनः॥

भरत ने कहा—यह मेरी माता है। यह बड़ी ही क्रूर और पापिनी है। इसी के कारण मुझ पर इतनी बड़ी विपत्ति आई है। जब भरत कैकेयी की निन्दा कर रहे थे, तो भरद्वाज बोले—भरत! तुम कैकेयी को दोष मत दो। राम वनगमन का परिणाम बहुत अच्छा होगा।

न दोषेणाव गन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।

उनके वन जाने से—

देवानां दानवानां च ऋषीणाम् भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्रा जनादिह॥ २।९२।३

उनके वन जाने से देवताओं, दानवों और आत्म ज्ञानियों का बहुत बड़ा उपकार होगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ऐसा ही कहा है—

अगम अनेह भरत रघुबर को, जह न जाइ मन विधि हरिहर को।।

बन्दऊँ प्रथम भरत के चरना।

बृहत्तर आर्यावर्त ललाम भरत का भारत हो विख्यात।
समन्वय संस्कृति उसको करे विश्व भर को उज्ज्वल अवदात।
पूज्य हो इसकी कण कण भूमि बढ़े यों महिमा अमिट अपार।
रहे इच्छुक निर्जर भी सदा यहाँ पर लेने को अवतार।।
विश्व बन्धुत्व व्यवस्था बने अवस्था की गति के अनुसार।
ऋषि उरों में हो जिसका श्रोत वनचरों में हो वह रसधार।
उभय संस्कृतियों का कर मेल स्वतः हो महादेव यों व्यक्त।
कि जिनके नर बानर ही नहीं देव दानव भी होवे भक्त।।

भरत माता कैकेयी को फटकारते हुए कहते हैं—

पापिनि सबहि भाँति कुल नासा।

जो पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।।

तुम्हरो करनी पर धधक रहा उर मेरा।
है काल पाश-सा मुझे घोर महाघेरा।।
आँसू आहों से भरे वचन ये कहकर।
दुख दग्ध भरत झट गये बड़ी माँ के घर।।

भरत के निर्दोषी बताते हुए कौसल्या कहती हैं—

वत्स यह सब झूठ तू निष्पाप। साक्षिणी तेरी यहाँ, मैं आप।।
भरत में अभिसन्धि का हो गन्ध। तो मुझे निज राम की सौगन्ध।।
मिल गया मेरा मुझे तू राम। तू वही है, भिन्न केवल नाम।।
भर गई फिर आज मेरी गोद। आ मुझे दे राम का सा मोद।।

चित्रकूट में गुरु वशिष्ठ ने भरत को परीक्षा के लिए युक्ति प्रदर्शित किया—

तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरअहि लखन सीय रघुराई।।

इसके उत्तर में भरत ने कहा—

कानन करउँ जनम भरि बासू। इहि तें अधिक न मोर सुपासु।।

तब गुरु वशिष्ठ को ज्ञात हुआ कि भरत क्या थे और उनमें कितना त्याग है।

भरत महा महिमा जलरासी। मुनि-मति ठाढ़ि तीर अबलासी ॥
गा चहा पार यतन बहु हेरा। पावत नाव न बोहित बोरा ॥
'मानस'

भरत जी कहते हैं—

जानहिं राम कुटिल करि मोही। लोग कहैं गुरु साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे ॥

उनकी इस भावना को देखकर एक झंकार उठी—

तात भरत तुम सब विधि साधू। राम चरण अनुराग अगाधू ॥
बादियानि करहु मन माहीं। तुम सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ॥
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं। प्रेम पात्र तुम सम कोइ नाहीं ॥
यहि बड़िबात भरत की नाहीं। सुमिरत राम जिनहिं मन माहीं ॥

भरत चरित्र—

धर्म कर्म में राम भरत! जैसे थे दृढ़तर।
उसमें उनसे कहीं आप भी थे बढ़ चढ़कर।
किन्तु नम्रता आप में थी इस कारण।
क्षात्र धर्म हो सका न तुमसे पूरा धारण ॥

यद्यपि थे निर्दोष भरत ! पर तो भी तुम पर।
दोषारोपण किया अनेकों ने क्यों चिढ़कर।
निश्छलता के साथ राम को गए मनाने।
लक्ष्मण तुमको देख लगे तब धनुष चढ़ाने ॥

सीता को भी वहाँ राम ने था समझाया।
वह होगा मद युक्त राज्य को जिसने पाया।
मेरे गुण या भरत दोष को तुम मत कहना।
जानकि जब तक रहें भरत तब तक चुप रहना ॥

केवट को भी तुम्हें देखकर रोष हुआ था।
पर तुमसे जब मिला, उसे तब तोष हुआ था ॥
भरद्वाज भी भरत ! देखकर बोले तुमको।
निरपराध है राम, खोजते हो क्यों उनको ॥

अपना अटल अपार प्रेम रघुपति को तुमने।
दिखा दिया था लात मार संपति को तुमने।
आप चतुर्दश वर्ष आपने बैठ बिताए।
बिना राम के नहीं अयोध्या भीतर आए॥

भरत आपका चरित व्याप्य निर्मल है जैसा।
रामचरित भी कभी नहीं हो सकता वैसा।
वह जननी थी धन्य जिसे तुम आप मिले थे।
स्वर्णलता में मनोरत्न के फूल खिले थे॥

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपा निधाना॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोहि राम पिरीते॥

दोहा— भरत चरन सिर नाइ, तुरत गयउ कपि रामपहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चले प्रभु जान चढ़ि॥

होत न भूतल भाव भरत को। सचर अचर चर अचर करत को॥
अगम अनेह भरत रघुवर को। जहं न जाइ मन विधि हरिहर को॥
कहब संदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिय राज पदु पाएँ॥
धरि धीरज भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुलनासा॥
जौंपै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
जब तें कुमति कुमत जियँ उयऊ। खंड खंड होइ हृदय न भयऊ॥
भूप प्रतीति तोर किमि कीन्हीं। मरन काल विधि मति हरि लीन्हीं॥
विधिहुं न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अध अवगुन सानी॥
कैकेइ कत जनमी जग मांझा। जौं जनमित भइ काहे न बाँझा॥
ते पातक मोहि होहुं विधाता। जौ यहु होइ मोर मत माता॥

दोहा— सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभु जीवन मरन, जसु अपजसु विधि हाथ॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी। मै तोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपाविसेखी॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥
मांगउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं॥

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जपु राम रामु जप जेही ।।
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग बौराइ राज पदु पाएँ ।।
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच मह सुना न दींसा ।।

दोहा—भरतहि होइ न राज मदु, विधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु विनसाइ ।।
दोहा—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोक ।
जहं तहँ सोचहिं नारि नर, कृस तन राम वियोग ।।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयउ अपारा ।।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं विसरायउ ।।
अहह धन्य लछिमन बड़ भागो । राम पदार विन्दु अनुरागी ।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ।।
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना । अधम कवन जग मोहि समाना ।।

दोहा—राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
विप्र रूप धरि पन सुन, आइ गयउ जनुपोत ।।
दोहा—बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात ।
रामराम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल प्रात ।।

को तुम तात कहाँ ते आए । मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ।।
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना । नामु मोर सुनु कृपा निधाना ।।

लक्ष्मण चरित—

कह दो आज पिता दशरथ से कि यह अधर्म नहीं होगा ।
कह दो, लक्ष्मण के रहते यह, घोर कुकर्म नहीं होगा ।।
राज नहीं कैकेयी का है दशरथ का न स्वराज्य यहाँ ।
जन-गण-मन-रंजन-कर्ता ही होता है अधिराज यहाँ ।।

लछिमन नैन नीर भरि आए ।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए ।।
अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हें साथ ।
'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता-बचन धरि माथ ।।

लक्ष्मण--

राम को बनवास की अवधि में जितना कष्ट उठाना पड़ा वह दुःसह हो जाता यदि उनके साथ स्नेही छाया की तरह चिर काल

भ्राता लक्ष्मण न होते। लक्ष्मण अयोध्योपान्त राम के सहचर रूप में रहे। उनका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। विश्वामित्रके साथ राम जब ताड़का राक्षसीका बध करने गये तो लक्ष्मण भी उनके साथ गए। राम के बनगमन के समय भी लक्ष्मण उनके साथ ही गए। पिता द्वारा राम को वन भेजने के समय पिता को अश्लील शब्दों में अपमानित भी किया था। यहाँ तक कि दशरथ का वध करने पर उद्यत हो गए थे। दशरथ द्वारा अन्याय युक्त राम बनवास की आज्ञा सुनकर लक्ष्मण इतना क्रोधित हो गए थे कि वे अयोध्या पुरी को ही ध्वंस करने पर उद्यत हो गए थे। अन्याय लक्ष्मण सहन नहीं कर सकते थे। सीता के अग्नि परीक्षा के अवसर पर भी राम से ऐसा न करने का अनुरोध किया था।

एव मुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा।
अमर्षवश मापन्नो राघवाननमैक्षत॥

बा० रा० ६।११६।२०

सीता की इस बात को सुनकर शत्रुनाशन वीर लक्ष्मण ने बड़े क्रोध से रामचन्द्र की ओर देखा।

सीता को वाल्मीकि मुनि के आश्रम में भेजने के समय भी राम को उचित कार्य करने के लिए परामर्श दिया था। यद्यपि उन्होंने राम के प्रत्येक आदेश का पालन किया पर यदाकदा सबका समर्थन नहीं किया, कभी-कभी विरोध भी किया। किन्तु अन्य कोई भी राम के प्रति अन्याय करता तो लक्ष्मण वह सहन और क्षमा नहीं कर सकते थे। जब कैकेयी ने राम को बनवास की आज्ञा सुनाई उस समय लक्ष्मण तत्काल राम के साथ वन जाने को प्रस्तुत हो गए। राम के बनगमन के समय सभी माता, पिता, सभासद और प्रजा राम के वियोग में शोक ग्रस्त हो उठे परन्तु लक्ष्मण जैसे वीर्यवान आज्ञाकारी भ्राताके लिए किसी ने किसी प्रकार का असन्तोष या शोक प्रकट नहीं किया। ताड़का राक्षसी के बध हेतु जाते समय वृद्ध राजा दशरथ भयभीत हो गये और बोले—"उनषोऽशवर्षो में रामो राजीव लोचनः" किन्तु रामके साथ एक और राजीवलोचन कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण भी उसी ताड़का राक्षसी वध हेतु श्रीराम का अनुवर्ती होकर जा रहे थे। इसके लिए किसी ने लेशमात्र भी आक्षेप

नहीं किया। जब रथ पर बैठाकर सारथी राम को बन में ले जा रहा था तो दशरथ एवं प्रजागण ने सारथी से अनुरोध करते हुए कहा—हे सारथी ! रथ को थोड़ा धीरे धीरे चलाओ जिससे हम सब राम का मुख अच्छी तरह देख सके परन्तु साथ ही जाते हुए लक्ष्मण के लिये किसी ने ऐसा कुछ नहीं कहा। इतना ही नहीं सुमित्रा ने भी किसी प्रकार का व्यवधान नहीं किया। इतनी उपेक्षा होने पर भी लक्ष्मण के मन में कभी भी क्षोभ या असन्तोष की भावना नहीं देखी गई।

अरण्य वन के असह्य कष्टमय जीवन से घबड़ाकर राम ने लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने को कहा परन्तु लक्ष्मण राम के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। लक्ष्मण ने कहा—

नहिं तातम् न शत्रुघ्नम् न सुमित्राम् परन्तप।
द्रष्टुमिच्छेयमाद्याहम् स्वर्गंश्चापि त्वया विना ॥

मैं आपको छोड़कर पिता, सुमित्रा शत्रुघ्न या स्वर्ग भी देखने की इच्छा नहीं करता।

राम के विरुद्ध वह कुछ नहीं सुनना चाहते थे। भरत जब चित्रकूट में राम से मिलने गए तो वहां भी लक्ष्मण भरत के आने का उद्देश्य बिना जाने समझे उनका भी बध करने को उद्यत हो गए—

भरतस्य बधे दोषं नाहम् पश्यामि कञ्चन।

यह कहकर क्रोध प्रकट किया था। लक्ष्मण ने जितने लोगों के प्रति क्रोध या असंतोष प्रकट किया पश्चात यथा स्थिति समझने के बाद सबको क्षमा कर दिया या पश्चाताप किया, परन्तु कैकेयी को उन्होंने अन्त तक न क्षमा किया और न उनके लिये पश्चाताप ही किया। आश्चर्य है कि इतने उग्र स्वभाव के होते हुए राक्षस मारीच के जाल फांस में फँसकर उसको मारने के लिए जब राम पीछे दौड़े चले गए और घोर जंगल में मारीच ने सीता हरण के निमित्त कपट शब्दों में पुकारा—हा लक्ष्मण, हा लक्ष्मण। मेरी रक्षा करो। उस समय सीता ने जब लक्ष्मण से भाई राम की रक्षा के लिए जाने का आग्रह किया तो लक्ष्मण ने सीता को बहुत सम-

झाते हुए कहा—हे माता। यह सब कपट जाल है, राम का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। इस पर सीता ने जो-जो कटु वचन लक्ष्मण के प्रति कहा वह लक्ष्मण जैसे उग्र स्वभाव के व्यक्ति ने सहन कर लिया यह एक आश्चर्य जनक व्यवहार है। जिस समय कवन्ध राक्षस राम और सीता पर आक्रमण करने को आया तो लक्ष्मण ने राम से कहा—आप हमको कबन्ध के सम्मुख वलि हेतु अकेले छोड़कर भाग जायें और हमी को उसका वलि होने दें। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करने से आप सीता को रक्षा कर सकेंगे। इससे लक्ष्मण के अपूर्व साहस धैर्य और आतमोत्सर्ग का अतुलनीय उदाहरण मिलता है।

राम के राज्याभिषेक का समारोह जब वनवास के कारण रोक दिया गया तब लक्ष्मण ने क्रोध प्रकट करते हुए कहा—मैं ऐसे वृद्ध कामी, स्त्रैण, निर्लज्ज पिता को एक अधर्मी राजा के समान मार डालूँगा।

नत पश्याम्यहं लोके परोक्ष मपि यो नरः।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदा हरेत॥

वनवास की आज्ञा जब तक किसी और को न मालूम हो उसके पूर्व ही लक्ष्मण ने कहा—हे राम! आप मेरी सहायता से सिंहासन पर अधिकार कर लें। जो भी व्यक्ति भरत का समर्थन करेगा उसका मैं बध कर डालूँगा। गुरुजन भी यदि विपथगामी हो तो उनका भी विरोध करना पड़ता है। हे राम! आप जो वन जाने के निमित्त इतने व्यग्र हैं वह एकान्त असंगत है। आप जो यह कह रहे हैं कि जो कुछ हो रहा है वह सब दैव प्रेरणा से हो रही है उसमें मैं लेश मात्र भी विश्वास नहीं करता। वीर पुरुष कभी दैव बल पर भरोसा नहीं करते। वरन् अपने बल पर विश्वास करते हैं।

हे राम! मैं महाराज दशरथ और कैकेयी की अभिलाषा पूर्ण नहीं होने दूँगा। यदि राज विद्रोह होगा तो मैं आपकी रक्षा करूँगा। आप हमारे धनुष एवं बाहुओं को केवल शोभा के लिए न समझें, न इनको अलंकार समझें। आज मैं महाराज दशरथ को

प्रभुत्व को मिटाकर आपका प्रभुत्व स्थापित करूँगा। लक्ष्मण का स्वभाव सदैव क्षोभ, क्रोध और क्षणभंगुर होता था। लक्ष्मण का इस प्रकार का स्वभाव क्षत्रियत्व का एक उज्वल उदाहरण है। कभी कभी लक्ष्मण इतने उग्र हो उठते थे कि राम के समझाने पर भी नहीं शान्त होते थे।

वनगमन के समय गुरुजनों से भो साक्षात्कार किया और उनसे भी विदा माँग कर वन को प्रस्थान किया परन्तु अतिविस्मय की बात है कि अपनी प्रियतम पत्नी उर्मिला से साक्षात्कार नहीं किया था महर्षि बाल्मीकि ने इसका संकेत मात्र तक कहीं वर्णन नहीं किया।

मेघनाथ वध—

राम लक्ष्मण से कहते हैं—

दास यह! मारा गया इन्द्रजीत युद्ध में।
आदर से माथा चूम, आलिंगन करके,
बोले नेत्र-नीर भर प्रभु यों अनुज से-
पाया आज सीता को तुम्हारे भुज बल से
हे भुज बलेन्द्र! तुम धन्य वीर-कुल में!
जननी सुमित्रा धन्य! धन्य रघुकुल है।

लक्ष्मण—

रघुपति! जो न इन्द्रजित मारौं।
तौ न होऊँ चरननि को चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं।
यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू! एकहि बान निवारौं।
सपथ राम परताप तिहारे खंड खंड करि डारौं।
कुंभकरन दस सीस बीस भुज दानव दलहि बिदारौं।
तबै सूर संधान सफल हौं! रिपु कौ सीस उतारौं।

रघु बंसिन्ह महुं जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।।
जौ तुम्हारि अनुसासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।।
बैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ सेता।।
जौं सहाय कर संकट आई। तौं मारउं रन राम दोहाई।।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम वचन सुनि अति दुख पावा।।

नाथ दैव कर कौन भरोसा। सोषिय सिंधु करि मन रोसा।।
कादर मन कहुं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा।
एकहि एक सकहिं नहिं जीतो। निसिचर छल बल करइ अनीती।
क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता। भेजेउ रथ सारथी तुरन्ता।
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान सब सेषा।
रावन सुत निजमन अनुमाना। संकट भयउ हरहिं मम प्राना।
मुरछा भई सक्ति कै लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे।।

वाल्मीकि ने रावण द्वारा लक्ष्मण का मूर्छित होना दर्शित किया है। जबकि तुलसी ने मेघनाद द्वारा।

जामवंत कह वैद सुखेना। लंका रहइ को पठई लेना।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।

देशे देशे कलमनि देशे देशे च बान्धवा:।
तू देश: न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर:।।

सीता—चन्द्रशेखर मिश्र

धर्म का नेगी बना के मुझे, मुझसे ही गया यह कर्म कराया।
मैं ही रहा चुप तो किसको भला, साक्षी बनाती विदेह की जाया।
कैसे हैं खेल रचे तुमने, करतार तुम्हारी ये कैसी है माया।
मैंने ही आग लगाई चिता में, औ मैंने ही बन छोड़ने आया।

तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च।
नीति प्रसंग: कर्तव्यो विप्र योगोहि तैर्ध्रुवम्।।

लक्ष्मण राम से कहते हैं--

स्त्री, पुत्र मित्र और धन में आसक्त होकर मन लगाना अनुचित है। क्योंकि उनका वियोग अवश्य होता है।

निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतु कालाति वर्त्तिनीम्।

लक्ष्मण जब सीता को बाल्मीकि आश्रम छोड़ने गए और वहाँ छोड़कर जब लौट रहे थे तो सीता ने कहा--

हे सौम्य! इस समय मैं गर्भवती हूं। इसे देखते जाओ जिससे स्वामी को इसका कभी अपवाद न लगे। इन सब बातों को सुनकर लक्ष्मण व्याकुल हो गये।

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा । भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा ।।
एकहि एक सकइ नहिं जीती । निसिचर छल बल करइ अनीती ।।
बीर घातिनी छोड़िसि सांगी । तेज पुंज लछिमन उर लागी ।।
मुरछा भई सक्ति के लागे तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ।।
तब लगि लै आयउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ।।
जामवंत कह वेद सुषेना । लंका रहइ को पठइ लेना ।।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरन्ता ।।

दोहा—राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन ।।

देखा सैल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ।।
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी उपर कपि गयऊ ।।

दोहा—देखा भरत विशाल अति निशिचर कर अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवण लगि तानि ।।

लक्ष्मण चरित्र विश्लेषण—

बिना चक्र के यान चले तो चल सकता है ।
बिना सूर्य के कंज खिले तो खिल सकता है ।
किन्तु आप के बिना राम का चरित अधूरा ।
रह जाता है वृथा तार के बिना तमूरा ।।
लक्ष्मण ! जिससे सदा सुरेश्वर भी है डरता ।
कैसे वह घननाद किसी के मारे मरता ।
धन्य ! उसी का नाश आपने किया समर में ।
उत्सव उस दिन हुआ सभी देवों के घर में ।
नाहं जानामि केयूरे नाहम जानामि कुण्डले ।
नू पुरे त्वभि जानामि नित्य पादाभि बन्दनात ।।
तनसरा पै रहम कि ठरिया नदोदम ।
कि चूं जानकर बंज तन जान दोदम ।।
जानकी को मुख न विलोक्यों ताते कुंडल न जानत है ।
वीर पाँव छुवै रघुराई ।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे बात कह्यो समुझाई के ।

यायन के परिवे को जाते दास लक्ष्मन,
याते पहिचानत है भूषन जे पाय के।
बिछुवा है एई, अरु झाँझ है एई,
जुग नूपुर है तेई, राम जानत जराई के ॥

लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा के नाक कान बिहीन करने का औचित्य—

तुम सा पुरुष न मुझ सी नारी, बनी विश्व में कोई और।
मैं रानी हूं तुम 'हाँ' कह दो, बाँधो झटपट सिर पर मौर।
अरे बृथा क्यों दुवली गंदी नारी यह तुमने हेरी।
छोड़ो उसको देखो मुझको कैसी रूप छटा मेरी ॥
लक्ष्मण ने तब उस दुष्टा को नाक कान से किया बिहीन।
निर्लज्जा की नाक बृथा है कान वृथा यदि सीख सुनीन।
अधिक कुरूपा होकर कुटिला भाग चली करती चीत्कार।
स्वतः सुधरना दूर, बिगाड़े उसने राक्षस वृन्द उभार।

शत्रुघ्न चरित्र—

शत्रुघ्न महाराज दशरथ के कनिष्ठ पुत्र एवं लक्ष्मण कनिष्ठ यमज सहोदर थे। लक्ष्मण जिस प्रकार राम के अनुगत एवं प्राण प्रिय थे उसी प्रकार लक्ष्मण कनिष्ठ भ्राता भरत के प्राण प्रिय थे। जब भरत मातुल गृह गये थे तो शत्रुघ्न भी उनके साथ गये थे। दशरथ के मृत्यु पर शत्रुघ्न ने कहा था—

गतिर्यः सर्वं भूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
सरामः सत्त्वसंपन्नः स्त्रिया प्रवाजितो वनम् ॥

राम के कथनानुसार शत्रुघ्न बिशेष वीर, विद्वान, बुद्धिमान मितभाषी गुरुभक्त पुरुष थे। भरत ने अनन्य भ्रातृ सेवक रूप में छाया सदृश जीवन व्यतीत किया। इस कारण उनके जीवन का मूल्य पूर्ण रुपेण अभिव्यक्त नहीं हुआ। वा० रा० २।७८।१

शत्रुघ्न कुमार महाराज दशरथ के कनिष्ठ पुत्र माता सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। लक्ष्मण के सहोदर थे। इनका जन्म एक हीं दिन एक ही मुहूर्त में हुआ था। शत्रुघ्न विष्णु के चतुर्थांस थे। महाराज दशरथ के सभी पुत्र अतुलनीय एवं अति प्रभावशाली थे।

सर्बेवेद विदुःशुरा सर्वे लोक हितेरताः।
सर्बेज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समूदिता गुणैः।।

वा. रा. १।१८।२४

ये चारों वेदविद्, वीर, सब लोगों का कल्याण करने में तत्पर ज्ञान सम्पन्न और सभी गुणों से युक्त थे।

जिस प्रकार लक्ष्मण राम के अनुगत एवं प्राणाधिक प्रिय थे उसी प्रकार—

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।
प्राणौ प्रियतरो नित्यं तस्य चासोत्तथा प्रियः।।

वा. रा. १।१८।३१

यथा ठीक इसी तरह लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भरत को प्रिय थे। वे भरत को प्राणों से भी प्रिय थे और उसी तरह भरत उनको प्रिय थे।

भरत ने कहा था—जब मैं अपने भाई के एवज में बनवास करूंगा, तब शत्रुघ्न भी मेरे साथ वन में रहेंगे और राम लक्ष्मण के साथ अयोध्या का पालन करेंगे।

राम ने चित्रकूट में भरत से कहा—हे भरत! असाधारण बुद्धिमान शत्रुघ्न तुम्हारे सहायक हैं।

शत्रुघ्नः कुशलमतिस्तुते सहायः सौमित्रिर्ममविदित प्रधानमित्रम्।
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं सत्य रूपं भरत चराम मा विषीद।।

वा. रा. २।१८७।१६

चर्चा शत्रुघ्न जी की चल रही है। इस प्रसंग में एक लोक कथा स्मरणीय है—

कहते हैं जब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम चौदह वर्ष बाद अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हुए तो उन्होंनें सर्व प्रथम भरत से अयोध्यावासियों का कुशल-क्षेम पूछा और फिर राज्य का हिसाब-किताब प्रस्तुत करने का आदेश दिया। महात्मा भरत को राज-पाट से क्या मतलब। वे तो राम के खड़ाऊँ को राजगद्दी पर स्थापित कर दिये तथा शत्रुघ्न को राज-काज सौंपकर स्वयं तपस्या में लग गये। इसलिए भरत प्रभु का आदेश सुनते ही

शत्रुघ्न की तरफ निगाह घुमाई। शत्रुघ्न भाई भरत का संकेत पाते ही राज्य का सारा हिसाब-किताब जगपालक राम के समक्ष प्रस्तुत कर दिये।

श्री रामचन्द्र जी बहीखाता का अध्ययन करते-करते एकाएक शत्रुघ्न पर बिगड़ पड़े। उन्होंने कहा—शत्रुघ्न! हमारे जाने के बाद राजकोष में यह अप्रत्यासित वृद्धि कैसे हुई? इतनी वृद्धि तो पिता जी के राज्य काल में भी नहीं हुई थी। तुमने जनता पर इतना अधिक कर क्यों लगाया? इतना सुनते ही शत्रुघ्न भाई भरत की ओर देखने लगे। जब उधर से भी कोई सहयोगात्मक संकेत नहीं मिला तो वे रोने लगे।

दयानिधि रामचन्द्रजी बड़े फेर में पड़े कि यह कौन सी समस्या आ खड़ी हुई। लेकिन उन्होंने अपने आपको तुरन्त सम्भाला और एक कुशल शासक की तरह भरत से कड़े शब्दों में पूछा--भरत! यह सब क्या है? राज्य के हिसाब-किताब का समाधान रोना तो नहीं होता। राज्य तुम्हारे देख-रेख में था। कर वृद्धि का क्या कारण हैं? भरत बड़े चक्कर में पड़े। फिर सोचकर बोले—

महाराज ऐसा कोई भी अनैतिक कार्य नहीं हुआ होगा जो मर्यादा से बाहर हो। शत्रुघ्न शायद घबड़ा गया है। ऐसा कहकर भरत जी ने शत्रुघ्न से कहा—भाई जो सत्य है बड़े भइया को बता दो, डरने की कोई बात नहीं है।

तब करूणानिधान भगवान राम शत्रुघ्न को बड़े प्यार से बुलाकर अपने गोद में बैठाया फिर कहा—क्या कारण है? बताओ यदि गलती हुई होगी तो उसका प्रायश्चित किया जायेगा, जनता को उससे अधिक धन वापस दिया जायेगा।

तब शत्रुघ्न जी साहस बटोर कर बोले भइया जब से आप अयोध्या से गये हैं तब से राज्य में न तो कोई उत्सव हुआ और न कोई तीर्थ यात्रा। अयोध्यावासियों ने भी साधारण जीवन बिताया है। जिसकी वजह से राजकोश से एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ। यही कारण है वृद्धि का, न कि अतिरिक्त कर। इतना सुनते ही राजा राम, शत्रुघ्न को गले से लगा लिए। ऐसा था शत्रुघ्न का चरित्र।

शत्रुघ्न—

धीर वीर शत्रुघ्न ! आप सा कौन हुआ वसुधा में।
चरित आपका चारु विमल है मानो सना सुधा में।
लक्ष्मण ही के आप तुल्य थे धन्य सुमित्रा नन्दन।
रघुकुल के कुल चूड़ामणि थे, त्रिभुवन सिरके चन्दन।
सीतापति के आज्ञाकारी लखनलाल थे जैसे,
सदा भरत जी के अनुगामी रहे आप भी वैसे।
शोभित जैसी राम-लखन की हुई मोहिनी जोड़ी,
साथ भरत के उससे सुषमा न थी आपकी थोड़ी।
विना भरत के आप न रहते रहे कहीं पल भर भी,
ऊजड़ा उनके विना आपको रहा कनक-मंदिर भी।
भरत तपस्या निरत हुए जब तब भी उन्हें न छोड़ा,
उनकी सेवा से न वदन को कभी आपने मोड़ा।
शस्त्र-शास्त्र में और विनय में, नय में आप निपुण थे,
राज कुमारों के हितकारी सभी आप में गुण थे।
पर अति क्रुद्ध आप होते थे अन्यायी के ऊपर,
कुब्जा के कुकर्म को सुनकर उसे घसीटा भूपर।
लक्ष्मण ने रघुनायक को ज्यों बन में दिया सहारा,
भरत साथ में रहकर तुमने त्यों घरबार सम्हारा।
मितभाषी, गम्भीर-प्रकृति थे, चिन्ता तुम्हें नहीं थी,
स्वप्न सदृश संसार तुम्हें था, तृणवत् तुम्हें मही थी।
अश्वमेध के हय का रक्षण किया आपने जैसे,
वीर-व्रती क्या कभी किसी से हो सकता है वैसे।
लव-कुश से लड़ समर बीच में हर्षित आप हुए थे,
उनके विक्रम और रूप से कर्षित आप हुए थे।
लवणासुर-वध किया आपने जा करके मधुबन में,
देख आपकी शक्ति, तपोव्रन सुखी हुए थे मन में।
राजनीति से किया आपने चिर दिन राज वहाँ का,
गो विप्रो का फिर न स्वप्न में हुआ न बाल तक बांका।
जय श्रुतिकीर्ति नाथ ! अरि सूदन जग में आप अमर है,
भरत चरण पंकज के ऊपर लोभित आप भ्रमर हैं।

विमल गात्र हो प्रेम पात्र थे, निज कुल के त्रिभुवन के,
सुधा सरोवर निर्मल मन के रक्षक थे मुनिजन के।

कौसल्या पुत्रेष्टि यज्ञ : पायस का आवंटन—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लाग धरिहऊँ नर वेषा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहऊँ दिन कर बंस उदारा॥
कलप भेद हरि चरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन गाये॥

कौसल्या—

भारत के दक्षिण क्षेत्र में स्थित कौसल राज्य था। वहीं के राजा की कन्या थीं कौसल्या। उनका ठीक ठीक नाम ज्ञात नहीं है। कौसल राज्य की होने से उनको कौसल्या कह कर पुकारा जाता था। महाराज दशरथ की वह प्रधान रानी थीं। उनके विषय में रामायण में विशेष वर्णन नहीं है। वह गौर वर्णा, दयावान, धर्मशील व यशस्विनी महिषी थी। उनके आचरण के बारे में स्वयं राजा दशरथ कहते हैं—

यदा यदा च कौसल्या दासीवच्च सखीव च।
भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चो पतिष्ठति।
सततं प्रियं कामा मे प्रिय पुत्रा प्रियंवदा॥

वा. रा. २।१२।६८-६९

उसका (कौसल्या) का इतना बड़ा उपकार करके उसे मैं क्या जवाब दूंगा। जब कि पुत्र को प्यार करने वाली और मधुर भाषिणी कौसल्या दासी, सखी, भार्या तथा भगिनी की तरह सदा से मेरी सेवा करती आई है। वृद्ध राजा दशरथ कैकेयी के भय से कौसल्या के साथ उपयुक्त समादर नहीं कर पाते थे। इसका कौसल्या को भी दुःख था। परन्तु उन्होंने पति के विरुद्ध कुछ नहीं कहा। जब दशरथ राम को यज्ञ रक्षा हेतु मुनि विश्वामित्र के साथ राक्षसी ताड़का के बधके लिये भेज रहे थे तब भी कौसल्या ने पति का लेशमात्र विरोध नहीं किया। राज्याभिषेक की जब सजावट हो रही थी उस समय कौसल्या ने कहा था—

वत्स राम चिरं जीव हतास्ते पर पन्थिनः।
ज्ञातीन् मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रा याश्चनन्दय॥

वा. रा. २।४।३९

हे वत्स राम ! तुम चिरंजीवी होओ, तुम्हारे शत्रु नष्ट हों। तुम राज्य लक्ष्मी प्राप्त करके मेरे और सुमित्रा के सगे सम्बन्धियों को सुखी करो।

इससे स्पष्ट आभास मिलता है कि कौसल्या कैकेयी से प्रसन्न नहीं रहती थीं। इसी समय राम माता कौसल्या के अन्त:पुर में आए और माता से पिता दशरथ द्वारा अपने बनवास का आदेश सुनाया।

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टि: परशुना वने :
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।।

वा. रा. २।२०।३२

राम का वचन सुनकर माता इस प्रकार गिर पड़ी जैसे कोई वृक्ष कुल्हाड़ी से काट डाला गया हो। ऐसा मालूम पड़ा जैसे कोई देवता स्वर्ग से गिर पड़ा हो।

सा बहुन्य मनोज्ञानी वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनाम वराणां वरासतो।।

वा. रा. २।२०।३६

ज्येष्ठ राज महिषी होते हुए भी अब अपने कनिष्ठ सौतेली महिषी की कर्कश बातें सुननी पड़ेगी। जिससे हृदय बींध उठेगा। अत: हे वत्स ! हम भी या तो तुम्हारे साथ बन को जायेगें या प्राण विसर्जन कर देंगे। राम के बहुत समझाने पर माता कौशल्या शान्त हुई। अंत में मंगल आशीर्वाद देते हुए माता कौशल्या ने राम को बनगमन हेतु विदा किया। साधारण माताएँ ऐसा नहीं कर सकतीं। तदन्तर राम, लक्ष्मण और सीता बन की तरफ चल पड़े। सुमंत्र राम, लक्ष्मण और सीता को बन में छोड़कर अयोध्या वापस आ गए। कौशल्या ने महाराज दशरथ से कहा—हे स्वामी ! यदि राम १४ वर्ष वनवास जीवन व्यतीत करके अयोध्या वापस भी आ जाँय तो क्या आप विश्वास करते हैं कि भरत राज्य राम को दे देंगे ? यदि भरत राम को राज दे भो दें तो राम स्वीकार और ग्रहण नहीं करेंगे। राजन ! बाघ दूसरे का शिकार किया हुआ खाद्य नहीं खाता, वैसे हो राम भी भरत को दिया हुआ राज ग्रहण कदापि न करेंगे। जिस प्रकार मछली अपनी हो सन्तान

को खा जाती है वैसे ही आपने अपने ही संतान को विनष्ट कर डाला। महाराज आपका यह आचरण क्या धर्मानुकूल है।कौशल्या ने नाना प्रकार से महाराज दशरथ को फटकारा। कौशल्या के वाक्य को सुनकर महाराज दशरथ उनसे क्षमा याचना करने लगे। तदुपरान्त कौशल्या अपने स्वामी महाराज दशरथ के प्रति जो-जो कठोर बचन कही थी उसके लिए वे क्षमा माँगने लगी। कौशल्या का चरित्र, मनोबल, स्वामिभक्ति और प्रेम पतिव्रता पत्नी के लिये अविरल उदाहरण है। पुत्र वियोग के कारण महाराज दशरथ का शरीर चिरकाल के लिए शान्त हो गया। मातुलालय से भरत और शत्रुघ्न अयोध्या आए। भरत ने राम बनवास और पिता के मृत्यु का समाचार सुनकर माता कैकेयी को बहुत खरी खोटी बातें सुनायी। तत्पश्चात भरत ने माता कौशल्या से भेंट किया। कौशल्या ने भरत को तरह-तरह की कटु बातें कहीं। भरत रोते-रोते कौशल्या के पाँव पर गिर पड़े। तब कौशल्या को विश्वास हुआ कि भरत निर्दोष और पाप रहित हैं। कौशल्या कहने लगी— हे भरत ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम धर्मच्युत नहीं हुए। कौशल्या कहने लगीं—

मम दुःख मिदं पुत्रभूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि में॥

वा. रा. २।७५।६१

पुत्र ! तुम्हारे इन शपथों से मेरे निकलते प्राण रुक गये हैं, किन्तु इन्हें सुन सुन कर मेरा दुःख बढ़ रहा है। ऐसा कहकर कौशल्या ने भरत को अपने छाती से लगा लिया।

चित्रकूट जाते समय भरत निपादराज गुह के मुख राम गमन की बात सुनकर धरती पर गिर पड़े। कौशल्या ने भरत को उठा कर रोती-राती पूछने लगीं।

पुत्र ! क्या तुम किसी रोग से पीड़ित हो।

पुत्र व्याधिर्न ते कच्चिच्छरीरं परि बाधते।
अद्यराज कुलस्यास्य त्वदधीनं हि जीवितम्॥

वा. रा. २।८७।९

मेरे लाल ! सारे राज परिवार का जीवन तुम्हारे ही अधीन है। भरत, शत्रुघ्न और सब मातायें भरद्वाज आश्रम होते हुए चित्रकूट पहुंचे जहाँ पर राम, सीता और लक्ष्मण सहित बनवास करने गये थे। बहुत अनुनय विनय करने पर भी राम नें अयोध्या वापस आने को स्वीकार नहीं किया और अन्ततः भरत इत्यादि सभी को निराश होकर अयोध्या वापस आना पड़ा। राम के वनवास की अवधि में कौशल्या ने कैसे अपना जीवन बिताया इस सम्बन्ध में रामायण में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। चौदह वर्ष बिताने के बाद राम, सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या वापस आए और सानन्द राज करने लगे। माता कौशल्या का दुःख विमोचन हुआ। कौशल्या यदि ऐसी महीयसी जननी न होती तो सर्वगुण सम्पन्न राम जैसा उनके कोष से पुत्र भी न होता। कौशल्या आदर्श जननी एवं चिर उज्ज्वल प्रतिमा है।

गो० तुलसी दास जी कहते हैं—

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली वचन धीर धरि भारी॥
तात जाउं बलि कीन्हेहु नीका। पिता आयसु सब धरम क टीका॥

कौशल्या—

राम तिलक की तैयारी में कोई लगा हुआ था,
और बिघ्न करने में उसके कोई पगा हुआ था।
किन्तु शान्त हो, आप वहाँ करती थीं ईश्वर पूजा,
कौशल्ये ! क्या तुम सा निस्पृह और हुआ है दूजा।
बन जाने के समय राम के, जैसे नृप घबराए,
वैसे भावों ने चिन्ता के तुम्हें नहीं छू पाए।
तुमने दृढ़ता और धैर्य से कहा राम बन जाओ,
पिता वचन पालो, मुनियों के दुःख का नाम मिटाओ।
आए भरत देख तब तुमने उन्हें खूब फटकारा,
मनो राम की विरह व्यथा से मन था व्यथित तुम्हारा।
सच्चा समझ, तुरत पर उनको तुमने हृदय लगाया,
देवि ! धन्य हो, भरत भेंट से राम मिलन सुख पाया।

कैकेयी के कर्म श्रवण कर देवि ! तुम्हारे मुख से,
गिरकर रोने लगे भरत तब बिह्वल होकर दुःख से ।
धन्य ! धैर्य गाम्भीर्य सहित तब तुमने उन्हें उठाया,
और उन्हें समझा कर नय से, विधि को दोष लगाया ।।

सुमित्रा चरित्र—

सुमित्रा नाम सुमात्रा देश की होने से पड़ा। सुमित्रा उनका गुणवती नाम भी था जो महाराज दशरथ की द्वितीय महिषी थी। रामायण में उनके पितृवंश का विवरण नहीं मिलता। कालीदास कृत रघुवंश में वर्णन है कि वह मगध देश के राजा की कन्या थी। कहीं-कहीं रामायण में ही सुमित्रा की अपेक्षा कैकेयी को द्वितीय महिषी भी कहा गया है। प्रायः सुमित्रा का द्वितोय महिषी कहकर ही वर्णन मिलता है।

राम लक्ष्मण से कहते हैं—

यथाहं सर्वभूतानां हितः प्रस्थापितो बनम् ।
अद्येदानीं सकामा सा या माता मम मध्यमा ।।

वा. रा. ३।२।२०

मैं राज्य के सब लोगों का प्रिय था, फिर भी उसने मुझे बन भेजा। सो आज उस मेरी मँझली माता की मंशा पूरी हो गई। रामायण में ही वर्णन है—

कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या ।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य सारोगा चापि मध्यमा ।।

वा. रा. २।७०।६

लक्ष्मण और शत्रुघ्न की पूज्य तथा द्वितीय धर्मात्मा माता सुमित्रा तो कुशल पूर्वक हैं। यहाँ पर भरत ने सुमित्रा को द्वितीया माता कहकर सम्बोधित किया है। यह कथान्तर विस्मयजनक है। कभी सुमित्रा को द्वितीय तथा कैकेयी को तृतीय महिषी कहा गया है कहीं इसके विपरीत।

अस्या वामभुजं श्लिष्टा यैषा तिष्ठति दुर्मनाः । वा. रा. २।९२।२२
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा । वा. रा. २।९२।२३

भरद्वाज आश्रम में अपनी माताओं का परिचय देते हुए भरत ने कहा है—इनकी बाईं बगल जो बैठी हैं वे मेरी मँझली माता हैं। देवी सुमित्रा छाया के समान जीवन पर्यन्त कौशल्या के साथ रही। जिस प्रकार लक्ष्मण राम के साथ-साथ छाया की तरह रहते थे वैसे ही सुमित्रा कौशल्या के साथ रहती थीं। लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजने में माता सुमित्रा ने लेशमात्र भी हिचक असंतोष दुःख नहीं प्रकट किया। सुमित्रा ने कहा—बेटा !

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम् ।।

वा. रा. २।४०।९

राम को महाराज दशरथ, सीता को माता और वन को अयोध्या समझना। वत्स तुम सानन्द राम के साथ जाओ। इस प्रकार अपने पुत्र को कोई साधारण माता वन को नहीं भेज सकती ऐसा स्वार्थ रहित व सपत्नी का अनुगामी संसार में दुर्लभ है।

सदा भाग्य का तुम्हें भरोसा और न्याय का बल था,
बड़ी विषद थी नीति तुम्हारी, तनिक न तुममें छल था।
कौशल्या थी स्वार्थ हीन, कैकेयी स्वार्थ रता थी,
उन दोनों के मध्य सुमित्रे! तुम रहती थी वैसे,
गंगा यमुना के संगम में सरस्वती है जैसे।

कैकेयी चरित्र—

कैकेयी के जिस कटु वर ने गहन चरित यह किया प्रदान।
शाप रहा हो कुछ को, पर वह जग के हेतु हुआ वरदान ।।

क्योंकि उनके कारण ही राम की महिमा का गुणगान होने लगा।

वत्स, यह सब झूठ तू निष्पाप। साक्षिणी तेरी यहाँ मैं आप ।।
भरत में अभिसन्धि का हो गन्ध। तो मुझे निज राम की सौगन्ध ।।
मिल गया मेरा मुझे तू राम ! तू वही है भिन्न केवल नाम ।।
भर गई फिर आज मेरी गोद। आ मुझे दे राम का सा मोद ।।

तेरे हित मैंने हृदय कठोर बनाया।
तेरे हित मैंने राम विपिन भिजवाया ।।

तेरे हित मैं हूं बनी कलंकिनी नारी।
तेरे हित समझी गई महा हत्यारी॥
रानी रही न कैकेयी, अमर भई यह बात।
कौन पुरबले पाप ते, बन पठयो जगतात॥
बन पठयो जगतात, अन्त सुरलोक सिधारेउ।
जेहि सुत काजै मरेउ राउ नहिं बदन निहारेउ॥
कह गिरिधर कविराय, भई यह अकथ कहानी।
जस अपजस रहि गयउ, रही नहिं कैकेयी रानी॥

कैकेयी माँ दूर देश की हैं, वे हैं अनुभव शीला,
युद्ध-सन्धि में प्रकट कर चुकी हैं वे निज निपुणा लीला,
उत्तर-पश्चिम से प्राची तक, विस्तृत है उनका अनुभव,
इसीलिए उनके हिय में है आया एक भाव अभिनव।

पंजाब प्रदेश के विपाशा और शतद्रु नदी के मध्यवर्ती भाग का नाम कैकय राज्य था। कैकयाधिपति अश्वपति की कन्या का नाम ज्ञात नहीं है। किन्हीं का कहना है कि उनका नाम रूपमालिनी था। पर कैकेयी नाम से ही उन्हें जाना जाता है। कैकेयी के विषय में दशरथ की द्वितीया एवं कनिष्ठा महिषी दोनों प्रकार का वर्णन मिलता है। बनवासी राम सुमन्त्र से कहते हैं—

नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदितिरामो वनं गतः॥
वा. रा. २।५२।६१

तुम्हारे लौटने से मेरी छोटी माता कैकेयी को विश्वास हो जायगा कि राम बन को चले गये।

एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी।
भरतारक्षितं स्फीतं पुत्र राज्य मवाप्नुयात्॥
वा. रा. २।५२।६३

आपको वापस लौटाने का मेरा मुख्य अभिप्राय यही है कि मेरी छोटी माता कैकेयी अपने पुत्र भरत के द्वारा सुशासित राज्य पावे। महर्षि भरद्वाज के आश्रम में अपनी माताओं का परिचय देते हुए भरत सुमित्रा को द्वितीया रानी बोलकर परिचय दिये हैं। कैकेयी

महाराज दशरथ की छोटी रानी ही थीं। सीता हरण के बाद राम विलाप करते हुये कहते हैं—

मयाहं सर्वं भूतानां हिता प्रस्थापितोवनम्।
अद्य दानीं सकामा साया माता मम मध्यमा॥

वा. रा. ३।२।२०

मैं राज्य के सब लोगों को प्रिय था, फिर भी उसने मुझे बन भेजा। सो आज उस मेरी मझली माता की मंसा पूरी हो गई। एक बार लक्ष्मण कैकेयी की निन्दा कर रहे थे तब राम ने कहा था—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कथंचन।
तानेवेक्ष्वा कुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥

वा. रा. ३।१७।३७

हे लक्ष्मण! तुम मझली माता की निन्दा न करो केवल महाराज दशरथ और भरत के सम्बन्ध की ही बातें करो। दशरथ कैकेयी पर अधिक आशक्त रहा करते थे। इसी कारण कैकेयी को गर्व था। भरत ने कैकेयी के प्रति कहा था—

आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञ मानिनी।
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाचह॥

वा. रा. २।७०।१०

सदा की स्वार्थिनी, क्रोधिनी और अपने को बुद्धिमान समझने वाली मेरी माता कैकेयी सकुशल तो है। राम निर्वासन के पूर्व ही भरत अपनी माता कैकेयी के प्रति ऐसा विचार प्रकट किये थे। देवासुर संग्राम ने अपने स्वामी महाराज दशरथ की आहत अवस्था में उनकी सेवा सुश्रुवा करने के कारण दशरथ से एक वर प्राप्त किया था। वह वर कैकेयी ने तत्क्षण न माँगकर भविष्य के लिये छोड़ दिया था। इसके अतिरिक्त दो वर विवाह के अवसर पर महाराज दशरथ ने कैकेयी के पिता अश्वपति को दिया था कि अयोध्या के राजसिंहासन पर कैकेयी ही का पुत्र बैठेगा और वही राज्याधिकारी होगा। कैकेयी प्रायः कौशल्या का अपमान किया करती थी फिर भी कौशल्या अपने अपमान को प्रकट नहीं करती

थी। किन्तु राम बनवास के समय अपने मनोभाव को प्रकट कर ही दिया।

अत्यन्तं निगृहीतास्मि मर्तुर्नित्यम तन्त्रिता।
परीवारेण कैकेय्याः समावाप्यथवावरा।।
वा. रा. २.२०।४२

योहि मां सेवते कश्चिदथवाप्येनुवर्तते।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते।
नित्य क्रोधतया तस्याः कथं नु खवादितत्।
कैकेय्या बदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गतो।।
वा. रा. २।२०।४२-४४

मेरे पतिदेव सदा से मुझ पर रुष्ट रहकर मेरा तिरस्कार करते आये हैं। मैं कंकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी हीन जानी जाती हूं इत्यादि। भरद्वाज के आश्रम में सब माताओं का परिचय देते हुए भरत ने भी ऐसा मत प्रकट किया है—

क्रोधानाम कृत प्रज्ञां दृप्तां सुभगमा निनीम्।
ऐश्वर्यं कामां कैकेयीमनार्यामार्यं रुपिणीम्।।
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पाप निश्चयाम्।
यतो मूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः।।
वा. रा. २।६२।२६-२७

यह वही कोपना, अशिक्षिता अभिमानिनी, अपने को सुन्दरी समझनेवाली, धन की लालचिन, नीच होकर भी अपने को ऊंच दिखाने वाली कैकेयी है। यह मेरी माता है। यह बड़ी ही क्रूर और पापिनी है। इसी के कारण मुझपर इतनी बड़ी विपत्ति आई है। भरत के आक्रोश युक्त वचन सुनकर महर्षि भरद्वाज ने भरत का प्रतिवाद करते हुये कहा—

न दोषणाव गन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
राम प्रव्राजनं ह्योतत्सुखो दर्कं भविष्यति।।
देवानां दानवानां च ऋषीणां भवितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजजादिहं।।
वा. रा. २।९२।३०-३१

भरत ! तुम कैकेयी को दोष मत दो। रामचन्द्र के बनगमन का परिणाम बहुत अच्छा होगा। उनके बन जाने से देवताओं, ऋषियों, दानवों और आत्मज्ञानियों का बहुत बड़ा उपकार होगा। स्नेहशील होने पर भी कैकेयी का मन देवताओं की प्रेरणा से राम के प्रति कठोर हो गया। कैकेयी का कोई दोष नहीं था, यही महर्षि भरद्वाज के कहने का तात्पर्य था। कैकेयी की दासी मन्थरा ने राम के राज्याभिषेक का संवाद कैकेयी को सुनाया। कंकेयी मन्थरा से कहती है—

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि, यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥

देख ! मैं राम और भरत में कोई भेद नहीं जानती। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूं कि महाराज राम का राज्याभिषेक करेंगे। वास्तव में कैकेयी राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुई थी, परन्तु मंथरा ने उनके मनोभाव को कुमंत्रणा से दूषित कर दिया।

न मे परं किंचिदतो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥
वा. रा. २।७।३६

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।
मन्यते हि यथात्मानं यथा भ्रातृस्तु राघवः ॥
वा. रा. २।८।१६

कैकेयी ने कहा—राम तो कौशल्या की अपेक्षा मेरी अधिक सेवा करते हैं। यह राज्य चाहे भरत को मिले चाहे राम को।

कैकेयी ने मन्थरा से कहा—राम के अभ्युदय से बढ़कर प्रिय बात और कोई नहीं हो सकती। तूने मुझे यह शुभ संवाद सुनाया है, इसलिए मैं तुझे एक उत्तम वर देने को प्रस्तुत हूं। बता तूं क्या चाहती है।

अथच कैकेयी का प्रारम्भ में राम के प्रति किसी प्रकार का भेद नहीं था। उनके विचार मन्थरा के छल कपट मंत्रणा के कारण बदल गये।

यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हिमाम् ।।

वा. रा. २।८।१८

कैकेयी मन्थरा से कहती है —तेरे लिये तो जैसे भरत माननीय हैं, उससे अधिक आदरणीय राम हैं। फिर राम तो कौशल्या की अपेक्षा मेरी अधिक सेवा करते हैं। फिर तुम्हें किस बात का दु.ख है। मन्थरा ने अपनी कुमंत्रणा से कैकेयी की बुद्धि को दूषित कर दिया। मन्थरा ने इसके पूर्व भी एक दो बार कैकेयी को महाराज दशरथ के दुरभि सन्धि की बात कही थी परन्तु उस पर कैकेयी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इस बार कैकेयी का मन बिलकुल विषाक्त हो उठा। मन्थरा की सभी बातों पर विश्वास कर गईं। अन्त मे बिना भलीभाँति सोचे विचारे महाराज दशरथ से पूर्व प्रतिश्रुत दो वरदानों को माँग कर राम को १४ वर्ष का बनवास और भरत को राजगद्दी पर अभिषिक्त करने का हठ पकड़ लिया और अन्त मैं राम को बन जाना ही पड़ा। इस संदर्भ में कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ को जो-जो कठोर बातें कही है और जिस प्रकार उन्हें जर्जरित किया है किसी भी साहित्य या पुराण में ऐसे निर्मम उदाहरण और निर्लज्जता नहीं मिलते।

राम कैकेयी से मिलने उनके कक्ष में गये और वहाँ पर महाराज दशरथ को उदास देखकर कैकेयी से उनके उदासी का कारण पूछा। निर्मम कंकेयी ने कहा—

यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहम भिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति ।।

वा. रा. २।१८।२६

हे राम! महाराज जो कुछ चाहते हैं यदि तुम उसे स्वीकार करने का बचन दो तो मैं कहूं। राम ने कहा—मैं पिता की आज्ञा का अवश्य पालन करूंगा। कंकेयी ने निःशंकोच पिता दशरथ द्वारा राम के १४ वर्ष बनवास एवं भरत के राज्याभिषेक की बात कह सुनाई। अन्त में राम को बन जाना ही पड़ा। दशरथ नें क्रुद्ध होकर कैकेयी का त्याग कर दिया। इस हेतु कैकेयी उदाहरण देते हुए महाराज दशरथ से कहती है—

महाराज ! असमंजस के पिता ने भी उन्हें (असमंजस) निर्वासित किया था, फिर आप क्यों संकोच कर रहे हैं। मंत्रिगण में से सिद्धार्थ नामक एक व्यक्ति कहने लगे कि क्या राम असमंजस की भांति दुराचारी थे ? कैकेयी किसी को भी बात नहीं सुनी। अपने हठ और दुराग्रह पर अटल रही। ककेयी को निष्ठुरता और निर्लज्जता तथा सीता को बन जाते प्रस्तुत देखकर कुलगुरु वशिष्ठ कहते हैं-—

अति प्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुल पांसनि।
वञ्चयित्वा च राजानं न प्रमाणेऽव तिष्टसे ॥

वा. रा. २।३७।२२

ओ कुल कलंकिनी ! तेरी हिम्मत बहुत आगे बढ़ गई है और अब राम को धोखा देकर उन्हें अधर्म के पथ पर चला रहो है ! सब प्रजा कैकेयो को धिक्कारने लगी। कैकेयी दशरथ की मृत्यु के समय उनके पास न थी। सब रानियों के रोने का चीत्कार सुनकर दशरथ के पास आई। उस समय वह भी चीत्कार करने लगी।

जराश्च नायश्च समेत्य सङ्घशो विगर्हमाणा भरतस्य मातरम्।
तदा नगर्यां नरदेव संक्षयेबभूवुरार्ता न च शर्म लोभिरे ॥

वा. रा. २।६६।२९

दल के दल पुरुष और स्त्रियाँ इकट्ठी होकर कैकेयी को बुरा भला कह रही थीं। महाराज दशरथ के मरने पर सभी लोग दुखी थे, किसो को चैन नहीं मिल रही थी परन्तु कैकेयी को आन्तरिक व्यथा नहीं। भरत ननिहाल से लौट कर जब महाराज दशरथ का हाल पूछते हैं तो कैकेयी भरत को राज्याधिकारी होने का शुभ संवाद सुनाने लगी।

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्।
त्वत्कृते हि मया सर्वं मिद मेवं विधं कृतम् ॥

हे धर्मज्ञ ! अब तुम अपना राज्य सम्भालो। हे पुत्र ! यह सब मैंने तुम्हारे भले के लिये ही किया है। यह सब बात सुनकर भरत क्रुद्ध होकर माता कंकेयी को धिक्कारने लगे। जब भरत ने कहा— हम राम को वन से वापस लायेंगे तब कंकेयी को अपने निष्ठुर

आचरण का परिणाम समझ में आया और प्रायश्चित करने लगी, राम के चौदह वर्ष बनवास की अवधि में कैकेयी ने किस प्रकार समाज की भर्त्सना सहते हुये अपने दिन काटे इसकी आसा गला कल्पना भी नहीं की जा सकती। राम, सीता, लक्ष्मण कौशल्या इत्यादि से कैकेयी को अन्त में कम नही ब अधिक ही कष्टदायक जीवन बिताना पड़ा।

विधाता के विधान का कोई उल्लंघन करने में समर्थ राम का आविर्भाव ही रावण बध के निमित्त हुआ था : से विचार करने से अवश्य कहना होगा कि राम के नि कैकेयी केवल निमित्त मात्र है। यही बात महर्षि भ भरत से कहे थे।

यह बात सुनने में साधारण और काल्पनिक मालूम पड़ती किन्तु यथा समय इसके अनुसार चलना उतना आसान नहीं है। दृष्टांत स्वरूप दशरथ कृत रामनिर्वासन के विषय को ही ले लीजिए। इसी के द्वारा साधारण नियम के प्रयोग की कठिनाई सहज समझ में आ जायगी। यहाँ पर आप अनुभव करेंगे कि कंकेयी और दशरथ प्यार के आचरण में प्रवृत्त हैं। कैकेयी दशरथ के ऊपर और दशरथ राम के ऊपर प्यार का अत्याचार करते दीख रहे हैं। इनमें से कैकेयी का व्यबहार स्वार्थ परक और क्षुद्र कह कर चिर परिचित है। कैकेयी का कार्य स्वार्थमय और नीच अवश्य है, किन्तु उसके प्रति इतनी कटूक्तियों का प्रयोग शायद समुचित नहीं कहा जा सकता। कैकेयी ने अपने किसी इष्ट की कामना नहीं की थी, अपने पुत्र की भलाई सोची थी। यह सत्य है कि पुत्र के मंगल से ही माता का मंगल है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो एतद्देशीय माता-पिता अपनी जाति के भय से अपने पुत्र को पढ़ने के लिए विलायत नहीं जाने देते उनके कार्य की अपेक्षा कैकेयी का यह कार्य सौगुना निःस्वार्थ है।

इस बात को जाने दें। कैकेयी के दोष गुणों का विचार करने के लिए कोई बिकल्प नहीं है। दशरथ ने अपने सत्य पालन के लिए राम को वन्न भेजकर भरत को राज्य दिया। इसमें उन्हें

प्राणाधिक पुत्र का वियोग सहना पड़ा और अपने प्राणों की आहुति ...रनी पड़ी। इसी कारण भारतीय साहित्य का इतिहास उनके नि... गाथा से परिपूर्ण है। किन्तु उत्कृष्ट धर्म नीति के विचार में से... निष्कर्ष निकलता है कि दशरथ ने पुत्र को अपने न्यायोचित की भ...र से वंचित और निष्काषित करके सत्य का पालन किया, अपने ह... में उन्हें घोर अधर्म ही हुआ।

निर्लज्ज... कहते हैं ...ा यह है कि क्या सत्य अथवा प्रतिज्ञा मात्र का पालन ...त था? यदि सती कुलकामिनी किसी चक्कर में पड़कर ...मी पुरुष के निकट धर्म त्याग की प्रतिज्ञा करके, तो ... प्रतिज्ञा को पूरा करके न्यायोचित है? यदि कोई किसी ... हकावे से बिना किसी दोष के मारने की प्रतिज्ञा करे तो ओ... प्रतिज्ञा पालनीय हो सकती है। दशरथ के सत्य पालन अब ... राम का भारी अनिष्ट हुआ और सत्य का पालन न करने से कैकेयी का वैसा कुछ अनिष्ट न होता रहा दृष्टान्त स्वरूप से जन समाज का अनिष्ट, सो राम को उनके अधिकार से च्युत करने में ही उसकी आशंका अधिक है। यह तो दस्युता का रूपान्तर कहा जा सकता है। अतएव ऐसी स्थिति में दशरथ ने सत्य का पालन करके ही महा अनर्थ और पाप किया।

यही पर दशरथ स्वार्थपरता से निर्दोष नहीं है। सत्य भंग होने से जगत में उनको कलंक की टीका टिप्पणी होती, इसी भय से उन्होंने राम को उनके अधिकार से च्युत् और बहिष्कृत कर दिया। अतएव यशो रक्षार्थ स्वार्थ के वशीभूत होकर उन्होंने राम का अनिष्ट किया। सच है कि उन्होंने अपने प्राणों का उतसर्ग भी स्वीकार किया, किन्तु उनके निकट प्राणों की अपेक्षा यश ही प्रिय था। अतः उन्होंने अपने इष्ट की ही रक्षा की। इसलिए वे स्वार्थ पर हैं। स्वार्थपरता के दोष से युक्त पराया अनिष्ट निस्सन्देह घोरतर महापाप है। राम के प्रति प्रेम, राम के अभ्युदय की अकांक्षा थी उसे समझने के लिये हमारे साहित्यकारों, कथा-वाचकों, राम भक्तों ने कम ध्यान दिया है और वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस के कथन धर्म वर्णन के आधार पर कैकेयी के उज्वल चरित्र के विरुद्ध दोषारोपण करके

उसके निर्मल चरित्र को बिल्कुल दूषित कर दिया है। किंतु अब कुछ-कुछ साहित्यकारों ने उज्वल चरित्र को बड़े ही धार्मिक रूप में अतिबन्दनीय बनाने का उत्तम प्रयास किया है जैसे—बँगला साहित्य में कवि ने कहा है--

भुवन विजयी बाप तोर बने देई नाई आमि।
अन्तरेर कथा जानो अन्तर्यामी।
हाय बाप! रावण बधिले बनेगेलेतुमि।
आमार करे बिडम्बना।
बिधिर चक्रवाने बन गमन तुमार॥
कलङ्क पासारा माथा दिए आमार।
पापिनी माँ बोले मुख देखो न आमार।
पुत्र भरत शत्रुघन॥

प्रभात जी कहते हैं।

कैकेयी यदि आप न होतीं समझो अपने मन में,
क्यों मरता दशशीश राम क्यों जाते बन में।
जाने कब तक देवि! वहाँ मुनि मंडल रोता,
राम चरित क्यों ख्यात जगत में इतना होता॥
कैकेयी! दृढ़ रहा सदा संकल्प तुम्हारा,
क्या कोई अभिलाष हुआ है अल्प तुम्हारा।
तुम्हें बुद्धि की मिली हुई थी, बड़ी महत्ता,
तुममें थी अत्युच्च भरी स्वेच्छा की सत्ता॥
अपना ही था तुम्हें भरोसा प्रतिभा बल से,
कर लेना निज काम तुम्हें आता था कल से।
निज स्वामी को गेंद बनाया तुमने कर का,
इसी हेतु स्वामित्व मिला था तुम को घर का॥
जो हो पति अनुकूल वधु वह सत्यवती है,
कैकेयी! वह भाग्यवती है, वही सती है।
स्त्री के तुममे सकल विमल गुण भरे हुए थे,
इसीलिये तो भूप तुम्हीं पर ढरे हुए थे॥
देवासुर-रण-बीच साथ निज पति के जाना,
कैकेयी! वह काम तुम्हारा था मरदाना।

नृप रक्षा की वहाँ आपने दृढ़ हो जैसे,
वीरों से भी काम न वह हो सकता जैसे ।।
तब खुश हो बरदान भूप ने तुम्हें दिया था,
पर कुसमय में वहाँ न तुमने उसे लिया था ।
पर जब आया समय तुमने मन माना,
देना नृप को पड़ा, चला उनका न बहाना ।।

यदि घर रहते राम, जगत में नाम न होता,
मुनियों का भी कभी त्राण कर काम न होता ।
सुर दब जाते और असुर बढ़ते ही जाते,
हे कैकेयी देवि ! धन्य हो तुम इस नाते ।।

बृद्ध भूप मर गए हानि कुछ हुई न भारी,
हानि रहो यदि राम नहीं बनते बनचारी ।
इसीलिए बरदान आप ने माँगे वैसे,
और तुम्हें क्या राम कभी अप्रिय थे ऐसे ।।

सदा भरत से अधिक राम को तुमने माना,
उन दोनों में भेद भाव को कभी न जाना ।
आवश्यक था किन्तु राम का जाना बन में,
इसीलिए उत्पन्न हुई निष्ठुरता मन में ।।

दशरथ सा भी बृद्ध कहीं जो बन में जाते,
तो असुरों का नाश कभी क्या वे कर पाते ।
करना दुष्ट विनाश और का काम नहीं था,
बनी हुए जो राम देवि ! बस हेतु यही था ।।

राज्य संभाले भरत, राम दुष्टों का शासन,
करे. देवि ! इस हेतु राम का था निर्वासन ।
तनिक तुम्हारा कभी राम में द्वेष नहीं था,
समयोचित था कार्य आपका और सही था ।।

राज पुत्र है वही करे जो देश भलाई,
यही बात कैकेयी ! तुम्हारे मन में आई ।
तभी राम को तनिक न होने दिया विलासी,
राज्य प्राप्ति के प्रथम उन्हें कर दिया प्रवासी ।।

निज सुत से कैकेयी राम थे तुमको प्रियतर,
कौशल्या से तुम्हें राम त्यों समझे बढ़ कर।
पर वह था भवितव्य राम का वन में जाना,
सुजनो कर सुखी खलों के नाम मिटाना ॥

नृप को तुमने खूब सत्य गुण दिखलाया,
जैसे तैसे देवि! राम को बन दिखलाया।
मगनी मुनि के लिए सहज में दिया न जिसको,
नृप ने होकर विवश किया बनवासी उसको ॥

पिता भक्ति का पाठ राम को खूब पढ़ाकर,
उन्हें किया तैयार आपने खूब बढ़ाकर।
माता की भी नीति न भाई उनको इससे,
तुम्हें छोड़कर देवि! कार्य यह होता किससे ॥

अचला की सो अचल आपमें अति दृढ़ता थी,
सपने में भी तुम्हें न छूती कायरता थी।
स्तुति निन्दा पर ध्यान आपने नहीं चलाया,
जिसे किया आरम्भ उसे ही कर दिखलाया ॥

गुरु वशिष्ठ ने तुम्हें युक्ति से खूब डिगाया,
मंत्री ने भी तुम्हें गरज करके धमकाया।
पर तिल भर भी आप टलें क्यों अपने प्रण से,
फट सकती है नहीं यही कंकण के कण से ॥

कैकेयी! सौभाग्य और सौन्दर्य तुम्हारा,
अनुपम था अति कठिन और था धैर्य तुम्हारा।
इसीलिए तो ऋद्धि सिद्धियाँ पास तुम्हारे,
रहती थी, नित खड़ी कांपती त्रास तुम्हारे ॥

तुममें हास विलास भरे थे सहृदयता थी,
केलि कलाओं की भो तुममें अतिशयता थी।
मनो मिला था, मंत्र मोहिनी तुम्हें इसीसे,
तुम्हें छोड़ नृप ने प्रेम कुछ किया किसी से ॥

नृप थे कामासक्त बुढ़ापे में भी जैसे,
राज्य कार्य फिर शिथिल न पड़ता उनक कैसे।

देवि ! देश में तभी खलों का पौरा आया,
तब तुमने हो उसे राम के हाथ बचाया ।।
कभी नहीं परतंत्र तुम्हें रहना भाता था,
मुह देखी के वाक्य नहीं कहना आता था ।
सब सौतें बस इसीलिये तुमसे जलती थी,
पर वे कुछ कर सकी न, हाथों को मलती थी ।।
कैकेयी ! यदि राज्य राम ही को मिल जाता,
सम्भव था तो शीश तुम्हारे दुर्दिन आता ।
फिर कोई उत्कर्ष आपका कैसे सहता,
पहला सा सम्मान आपका कभी न रहता ।।

किन्तु कैकेयी कलह मचा है राष्ट्र नगर घर घर में,
देश निकालो को तू आ जा प्यारे किसी उदर में ।
कारागारों में चक्की पिस रही देवताओं से,
नष्ट हुआ गो वंश जा रहे न संहारक पाले ।
स्मृतियाँ ठुकराई जाती हैं शिर झुकते कर विनती,
डाकू और लुटेरों में है पुरुषों की गिनती ।
जंगल ही क्यों नगर ग्राम में देख अस्थि के ढेर,
बस तेरी है टेक बता आने में कितनी देर ।
हाय ! जोर चल दिया छोड़ कर मायामृग की ओर,
खो बैठा भारत लक्ष्मी को सागर की उस छोर ।।
पृथ्वी पर मानवता का जब स्वर्ग जलाया था,
आर्य धर्म और आर्य संस्कृति का चिह्न मिटाया जाता था ।
कभी रोकने से न रुका है अन्तर्जग का जय हुंकार ।
जागरूक मन कैकेयी का एक बार फिर उठा पुकार ।
एक ओर राज्याभिषेक का उत्सव का उल्हास महान ।
और दूसरी ओर सभ्यता संस्कृति का अंतिम आह्वान ।
किसे ज्ञात संसार सोचता प्रतिपल अपने मनमें मौन ।
बढ़ती हुई अराजकता को बिना राम के रोके कौन ।
मैं न रामको बन्दी होने दूँगी । भव की आशा को कभी न रोने दूगीं

सुत के मंगल पथपर जो शूल बिछाए।
माता वह कैसे जग में हाय कहाए।
मातृत्व दिया नारी क्या और अधिक दे।
क्या शेष कि लेकर बोले अरे बधिक ले।

सिन्दूर प्रश्न मानवता ब्रह्माणी का।
दूँगी प्रण छूट न सकता क्षत्राणी का।
वैधव्य मुझे स्वीकार राष्ट्र को जय हो।
दासत्वे न अंगोकार राष्ट्र की जय हो।

राजन तो मानवता के प्रति क्या अन्याय महान न होगा।
जीवन जिसका है प्रतीक क्या यह उसका अपमान न होगा॥

राज्याभिषेक रुक जाय राम का हो आदेश अयोध्या,
राजतिलक की वेला में सिंहासन का बंधन तोड़े।

भीख माँग लो इस तन की तुम, भीख माँग लो इन प्राणों की।
किन्तु न माँगो भीख राम की, उपमा बनो न पाषाणों की॥
मैं न राम की भीख माँगती, माँग रही है युग की वाणी।
यह है युग की सजग चेतना, महाशक्ति युग की कल्याणी॥
मैं युग की संदेह वाहिनी, मैं युग के चरणों की रेखा।
मेरे इन आकुल नैनों में, क्या न अपने युग को देखा॥
आप न अपना खड्ग उठावें युग ने चुना राम को नेता।
स्वर्ण मुकुट रहने दें अपना युग है अनल किरीट राम को देता॥
राम न केवल अवधपुरी के, आज राम हैं युग राजन।
युग के राम मिले युग को बस यही याचना है जीवन धन॥
मांग रही हो स्नेह दीप से, प्राण माँगती हो ममता से।
बोलो कैसे माँग रहो हो, सुरभि फूल से तुनक लता से॥
कैकेयी निस्तब्ध रह गई, देख मोह की गहरी छाया।
उसने जिसने कभी लोक हित, था त्रिलोक का हृदय ढुलाया॥

बोलो बोलो माँग रही हो निठुरे कैसे ज्योति नयन से।
हिय से धड़कन माँग रही हो,स्वांस माँगती हो जीवन से॥
दे चुके वस्तु उस पर अब अधिकार कौन।
यम ले जाओ मेरा सुहाग मैं शान्त मौन॥

बोले भरत तुम्हें मैं जननी कहूं कि वह ज्वाला।
जिसने अपने ही लपटों में सर्वस्व भस्म कर डाला।।
कैसा खेल तुम्हारा, भाई को भाई से छीना।
धो ली अपनी माँग लुटाकर हाय सुहाग नगीना।।

भावुकते तू इतना कोमल क्यों कर हुई बता दें।
लूँ निहार तेरा मुख मण्डल घूंघट जरा हटा ले।।
कैकेयी ने कहा ज्ञात है ममता कैसी होती।
कैसे पीड़ा अश्रु कणों का चुन चुन हार पिरोती।।

मुझे ज्ञात भाई होता भाई का कितना प्यारा।
मुझे ज्ञात भाई होता, भाई के दृग का तारा।।
मुझे ज्ञात यह भी कि पुत्र प्राणों का सुखद सहारा।
मुझे ज्ञात कि नारी का पति ही जीवन धन सारा।।
मुझे ज्ञात सब कुछ किन्तु हाय तुम ही सीता है।
तुझे न ज्ञात भरत कितना कर्त्तव्य कठिन होता है।।

नारी जिसके लिए हाय अपना सिन्दूर लुटा दे।
माता जिसके लिए गोद में अपनी आग लगा दे।।
तूं उसके महत्व को क्या जाने क्यों रोता है।
भरत न ज्ञात तुझे कितना कर्त्तव्य कठिन होता है।।

भरत आज तुझ से रहस्य मैं मन का बतलाती हूं।
तूं हृदय खोलकर तुझे हृदय की दुनिया दिखलाती हूं।
मेरे मन के रक्त मांस से सृष्टि हुई है तेरी।
किन्तु राम के रट से बोली विह्वल वाणी मेरी।

राम वनगमन निर्वासन है यह असत्य है भारी।
पाप सोचना भरत कि तुम है सिंहासन अधिकारी।
वन की ओर राम का जाना मानवता की जय है।
आर्य सभ्यता को चिर मानवता की जय है।

वत्स राम के पद चिह्नों का स्वर सुन क्यों रोता है।
जाग देख कर्त्तव्य क्षेत्र कितना दुस्तर होता है।
तेरे मन में दुर्बलता का दृग में जल का आना।
है अपमान रक्त का मेरे भरत ने तूने जाना।

जनक ने कहा कि निज वरदान दिए हैं कैकेयी न छोड़ ।
मुझे जँचता है कभी न राम सकेंगे उनको आज्ञा तोड़ ।
पिता से माता का है स्थान सभी विधि ऊँचा महिम महान ।
राम ने पितृ भक्ति को दिया आज दें मातृ भक्ति मान ।

सोच नहीं है भूप हो गये स्वर्ग बिहारी ।
जीवन बाजी यहाँ एक दिन सबने हारी ।
सोच यही है अहह ! समय की कैसी माया ।
माँ को जिसने छला, राम को बन भेजवाया ।।
सभी घबड़ा उठे यह क्या हुआ अब ।
किसी का भी मान सकती कैकेयी कब ।
चलेगा और क्या खडयंत्र कोई ।
जगेगा आज मरघट मंत्र कोई ।
मगर जब कैकेयी का हाल देखा ।
सभी ने सती का भाल देखा ।
भरत जी यदि न बढ़ कर रोक लेते ।
उसे नृप संग सुर के लोक लेते ।
नृपति के संग जलने को खड़ी थी ।
सती निज आन पै अड़ी थी ।
किसे साहस कि कुछ समझा सके जो ।
किसे साहस कि उस तक जा सके जो ।।

दक्षिण तो मैं देखूंगा ही, पर उत्तर पर आन न आने पावे ।
करो व्यवस्था भरत कि, मणि की जगह कांच न आने पावे ।
जनक ने कहा कि पूर्व दिशा में स्थिर है मेरी आर्य पताका ।
कैकेयी ने कहला भेजा साधूंगी मैं पश्चिम नाका ।।

जो न होती गुणमयी कैकयसुता तो भरत यों सद्गुणी होते नहीं ।
योग बीज वियोग में श्रीराम के त्याग कर सुखभोग यों बोते नहीं ।

भरत प्रिय सुत सत्य रघुकुल तिलक की,
अम्ब जगदावलम्ब त्रिभुवन नन्दिनी ।
धन्य तेरा जन्म जीवन जगत में,
धन्य तेरी कुक्षि त्रिभुवन वंदिनी ।।

अब निश्चित है कि इस जग में नहीं,
अब रहेगी शक्ति रावण नाम की।
गा तरेंगे भक्त युग युग सब अगम,
गीत रामायण हमारे राम की।।

लोग देते हैं अयश वह भेद क्या जाने हमारा।
राम को तज कर सुरों को कौन दे सकता सहारा।
राम रावण राहु पर हरि चण्ड चक्र समान आए।
धर्म रक्षा हेतु नर बनकर स्वयं भगवान आए।

राम यदि जाते न बन तो आदि कवि की मंजु वाणी।
कौन करता सिद्ध यह जग विदित रामायण कहानी।

देवा नां दानवा नां च ऋषिणां भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्रजना दिह: ।। वा.रा. २।१२।३१

उनके वन जाने से देवताओं ऋषियों, दानवों और आत्म ज्ञानियों का बड़ा उपकार होगा।

सकल कहहिं कब होइहि काली। बघन मनावहिं देव कुचाली।।
सादर बोलि विनय सुर करहीं। बारहि बार पाय लै परहीं।।

दोहा— बिपति हमारि विलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु।
राम जाहिं वन राजु तजि, होइ सकल सुर काज।।

पुनि अस कबहुं कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउं तोरी।।
सुदिनं सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जे दिन होई।।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिन कर कुल रीति सुहाई।।
राम तिलक जौं साचहुं कालो। देउं मांगु मन भावत आली।।
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पियारी।।
मो पर करहि सनेह विसेखी। मैं करि प्रीति परीक्षा देखी।।
जौं विधि जनम देइ करि छोहू। होहुं राम सिय पूत पतोहू।।
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे।।

दोहा—स्वप्न का प्रत्यक्ष ही, तब एक तार वाली।
हाथ में वीणा लिये नववालिका आयी निराली।।
राम दृग अभिराम को जग हेतु वन होगा पठाना।
लोक अपयश के विमल परलोक निज होगा बनाना।।

कैकेयी जग हेतु ही राम को बनवास भेजा था—

कैकेयी के जिस कटु बर नें महत चरित यह किया प्रदान।
शाप रहा हो कुछ को पर वह जग के हेतु हुआ बरदान।।

भरत के हित की सोच कर कैकेयी ने राम को बनवास का बरदान मांगा था पर उसका फल बिलकुल ही विपरीत हुआ। कैकेयी कहती है—

तेरे हित मैंने हृदय कठोर बनाया, तेरे हित मैंने राम विपिन भेजवाया
तेरे हित मैं हूं बनी कलंकिनी नारी, तेरे हित समझी गई महा हत्यारी

क्या वे बर तुझे न रुचे, हुंआ क्या धोखा?
क्या मैंने सच ही किया कुकृत्य अनोखा?
जिसकी माँ शम्बर का दर्प हरे रण बीच,
वह क्यों न क्षुद्र जीव, रावण संहारेगा।
कौशिक का सबल ज्ञान, मां की आशीष जहाँ,
वहाँ राम विजयी तो होकर रहेगा।।
पिता जी न मानेंगे न राम ही सफल होगा,
स्नेह श्रेष्ठ स्वार्थ से न मुझको कभी छोड़ेगा।
पिता के भरोसे रह जाऊँगा मैं कूप भेक,
माता! अब तू ही सहारा दे निज राम को।

कैकेयी कहती है—

जाओ, पर विजयमाल ले के घर आना।
नयन की ज्योति तेरे साथ ही रहेगी बेटा।
किंतु तुम न भूल जाना माता कैकेयी को।।

उर्मिला कहती है—

मैं न जानती थी आप इतनी महान हैं माँ,
मैं न जानती थी आप इतनी मधुर हैं।
मैं न जानती थी वज्र से भी हैं कठोर आप,
मैं न जानती थी पुष्प से भी आप मृदु हैं।

कैकेयी कहती है—

जैसा तू कहता है कि सीता का हरण हुआ,
यह तो दुर्भाग्य हुआ सारी आर्य जाति का।

मौन कौन होगा पुत्र सुन के संबाद यह,
आग लग जायेगी हो मानव की देह में।
भारत की नारी को अनाड़ी खींच ले जाय,
भारतीय शान्त कभी होकर क्या बैठेंगे ॥

हाथ जोड़ चल दिया छोड़कर माया मृग की ओर।
खो बैठा भारत लक्ष्मी को सागर के उस छोर ॥
यह क्या अमंगल है ! सीता का हरण हुआ।
हाय रे दुर्दैव ! तुने यह क्या कराया है ॥

रानी जो बनी थी वही तापसी भी बनी हो,
और वही दासी बनी है दुष्ट रावण की।
भारत की रानी आज लंका की है दासी बनी,
इससे दुर्भाग्य और होगा क्या भारत का ॥
राम क्या कहता है, पति से वरदान लूँ मैं।
यह क्या आदर्श होगा रमणी के पक्ष में।
जैसा तू कहता है, उसका परिणाम कभी,
सोचा है ? कितना भयानक है मेरे लिये।
तेरे दूर होते ही न भूपति जियेंगे और,
मांगे धुल जायेगी हम तीनों बहनों की।

भीषण वैधव्य की न यन्त्रणा सकूँगी सह,
राम ! तू है पुत्र ? मित्र ? या कि शत्रु ? कह दे !
शत्रु अथवा मित्र तो नहीं है तुम्हारा राम,
पुत्र है तुम्हारा और पुत्र ही रहेगा माँ।

अपना सन्तुलन किन्तु आज नहीं खो देना।
रहना गम्भीर महासागर के तुल्य ही।
माँगे धुलती हैं तुम तीन की ही, किन्तु अम्ब।
कोटि-कोटि माँगों का सिन्दूर बच जायेगा।
मानवता आज साँस तोड़ रही है अपनी।
इसकी रक्षा तो अब तुम्हारे ही हाथ है।

इससे अच्छा है राम ! बन तूँ परशु राम,
लेकर कुठार शीश काट ले कैकेयी का।

अच्छा तो बता फिर क्या करना पड़ेगा मुझे ?
कैसा क्रूर अभिनय दिखाना है कल रे !
बाध्य हो गयी हूं मैं देकर बचन तुझको।
रघुकुल की रीत तो निभानी ही पड़ेगी।
युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।
जिस जननी ने है जना भरत सा भाई।

ऐसे भी होते निर्दय, जग में क्या माँ-बाप कहीं ?
अपने बच्चों के हित जो, स्वयम् बने अभिशाप कहीं।

किया कैसा महान अनर्थ तूने ! स्वकुल का नाश निठुरे व्यर्थ तूने।
जननि मेरी कि बैरिन घातिनी तू?कुनारि,पिशाचिनी,संघातिनी तू?
तनय हतभाग्य मैं,तू अम्ब मेरी।गिरी गल कर न क्यों तब जीभ तेरी
रहा यह जो अनिष्ट अभीष्ट तेरा। गला क्यों जनमते घोटा न मेरा?
समय आ मंथरा ने जब बताया।विषम षडयंत्र का तब भेद पाया ।।

तुम्हें रामाम्ब ने ननिहाल भेजा।
कपट युत फिर तिलक सुत का सहेजा ।।

मंथरा—

धर्म दोहाई देने वाले बड़े भयंकर नर हैं।
प्राय: प्रिय वक्ता नर रानी घोर छद्म के घर हैं।
बड़ा कठिन है उन्हें जानना हाथ न वे आते हैं।
उनसे बड़े बड़े पंडित भी सहज ठगे जाते हैं।

अनृत साहस छद्म प्रगल्भता अदयता अविवेक अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहे फिर उसे कवि निन्दित क्यों कहे ?
न अबला जन को कुछ शर्म है, न उनका कुछ बाधक धर्म है।
निज प्रयोजन ही प्रिय है उन्हे पर प्रयोजन अप्रिय है उन्हे।

हठीला भक्त केवट

वनगमन के समय राम के प्रयाग में पहुंचने पर गंगा ने सानुनय हाथ जोड़कर राम से कहा—

संसार के लोग मुझ में स्नान करके पापों से मुक्त हो जाते हैं, आज मैं मुझे उत्पन्न करने वाले तुमसे (स्पर्श कर) सब पापों से मुक्त हो गई।

प्रयाग संगम पर गंगा पार जाने के लिये राम द्वारा आग्रह करने पर केवट राम की महिमा और भक्ति से प्रेरित होकर कहता है—

चरन कमल रज अस सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुवत शिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परेउ मोरि नाव उड़ाई ॥
यहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु और खबारू ॥

प्रभु के चरणों का महत्व, प्रभाव और व्यवसाय का विवरण देते हुए राम को नदी पार उतारने के पूर्व वह कुछ अपनी शर्तें रखता है।

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम परवारन कहहू ॥

पग धो लेने के बाद राम को कुछ सुविधाएँ देने को कहता है।

दोहा—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दशरथ सपथ सब साँची कहौं ॥

निषाद राज बड़ा ही चतुर, बलवान और कारीगर पुरुष था।

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषाद जात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥
वा. रा. २।५०।३३

अर्थात्—वह जाति का निषाद था और सर्व प्रकार वाक निपुण था। निषाद राज के राम के वन गमन का कारण पूछने पर लक्ष्मण कहते-कहते रोने लगे। लक्ष्मण को रोते देखकर उनकी दुखद स्थिति और व्यथा को देखकर केवट भी रोने लगा। रात्रि भर केवट के

घाट पर विश्राम करने के पश्चात प्रातः राम ने केवट से नौका द्वारा गंगा पार उतारने को कहा।

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि मेंरु सिलाकन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद पंकज ते प्रगटी तटिनी जो हरे अघ गाढ़े।
सो प्रभु सौ सरिता तरिबे कहं माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥

यहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलम्बन और कछु, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिय मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाउ चढ़ाइहौं जू॥

पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरे याही लागि, राजा जू,
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम को घरनी ज्यों तरनी तरंगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै के बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे से साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥

जिन्हको पुनीत बारिसिरसि बहै पुरारि,
त्रिपथगामिनी जस वेद कहै गाइ कैं।
जिन्हको जोगीन्द्र मुनि बृंद देव देह धरि,
करत विराग जप जोग मन लाइ कै॥
तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो लिवाइ कै।
तेइ पाँय पाइ कैं चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कैं ह्वै हौं न हँसाइ कैं॥

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥
चरण कमल रज कह सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

वह कौन सा मर्म या गुप्त बात थी जो केवट जानता था पर प्रकट नहीं करता। उसने सुन रखा था कि राम के चरण स्पर्श से

मृत तुल्य निर्जीव गौतम पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया 'छुवत सिला भई नारि सुहाई' वह उठ खड़ी होकर राम का चरण पूजन किया। अतः मेरे काठ की नाव पर भगवान राम के चरण पड़ेंगे तो मेरे नाव की क्या दुर्दशा होगी। मैं बिना आपके पग धोये आप को नाव पर कदापि नहीं चढ़ाऊँगा। चाहे आप जो कुछ भी करें। कहता है—

जानत मैं इनकी महिमा प्रगटो सरिता अघ पुंज हरे हैं।
छूते हो पाहनते भी जिया जग जाहिर ए गुणके अगरे हैं।।
राम पदांबुज पावन हैं अबि चारु चरित्र विचित्र करे हैं।
धोए बिना नहि पार करौं, पग राखिये जो अति धूरि भरे हैं।।

निज परिवार सो निषाद कहै ऊँचे सुर,
मेरो बैंन मानि कोउ गाफिल न होवो रे।
धाओ बेगि धाओ निज नैंया को बचाओ,
अब जाते मिले भोजन बसन सुख सोवो रे।।

जीवन करन मूरि धूरि इन पायन को,
ऐसे जिय जानि निज जीविका न खोवो रे।
मलि मलि धोवो निज नैंनन संजोवो,
फिर धोवो फिर जोवो फिर धोवो फिर जोवो रे।।

डाँटी लो अनेरे तीर धनुहिं चढ़ाइ के।
चाही ला जे काम बने घुड़को देखाइ के।।
ऐंठी मैंठो ताना तानो अँट सँट काहे के।
बड़ बड़ बात बोली दूसरा से जाइ के।।

काठ के कठौता को चरण से छुवावे ला।
सचमुच बात का वा उहे अजमावे ला।।
कोई होवे प्रेम भाव भक्ति दर्शावे ला।
संसय सन्देश उर सौच के मिटावे ला।।

सुनि केवट के बैंन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुना ऐन, चितइ जानकी लखन तन।।
प्रभु रुख पाइ के बोलइ बाल घरनिहि,
बंदि के चरन चहूं दिसि बैंठे घेरि घेरि।

छोटो सो कठौता भरि आनि गंगा पानी जू को,
धोई पाँय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि ॥
'तुलसी' सराहैं ताको भागु, सानुराग सुर,
बरसैं सुमन, जय जय कहैं टेरि टेरि ॥
विविध सनेह सानो बानी असयानि सुनि,
हँसै राघव जानकी लखन तन हेरि हेरि ॥

तात न नाव चढ़ाउ इन्हें इनके एक औगुन औरउ पायो।
श्री मिथिलेश मखे सिव को धनु कौतुक ही करि खंड गिरायो।
क्यों रघुलाल ईहै कहि के भृगुनाथ के आप सु कोप मिटायो।
उ धनु हाड़ई नाव है काठ की ताहु के भङ्ग को अवसर आयो।

केवट नाव के पास निहार के तासु तिया घबराई के बोली।
रे नठिया सठियाई तू गयो कहँ भूलि रह्यो लखि सूरत भोली ॥
राघव के पद पंकज में रज जीवन मूल सजीवन गोली।
नाव में काठ के टूक अिते बनि जाई रमेश तितो तिय टोली ॥

छोटे छोटे बालक छ सातक हैं आगे पीछे,
केवट को नारी दौरि गंगा तट आई है।
केवट ने देखा कहा देखु रे निहारि नेकु,
मेरी नैंन ज्योति धुंध रोग की सताई है।
राघव के पाँयन के तरवा निहारैं लगी,
'प्रेम कवि' धूरि कहुं ढूँढ़ेहुँ न पाई है।
जीभ लपटाई एड़ी चाट लीन्हि राघव की,
पोंछि ओढ़नी से कही हो गई सफाई है ॥

नख में कण भी बना रहा वह नौका में लग जावेगा।
नौका नारी बन जावेगी तब दास बहुत दुख पावेगा ॥
एक ही भवानी हैं घर में दिन रात नहीं कल देती हैं।
अत्यन्त गरीबी में भी वह तीसरे साल फल देती है ॥
यदि नाव नारी बन गई कहीं तो भागे राह न पाऊँगा।
दोनों की ऐंच घसोटन में मैं बिना मौत मर जाऊँगा ॥

धोये चरण को बिन पोंछे धरनी में धरो,
लागी रज फेर भ्रम दुगुन न कीजिये।

रावरे दोष न पाँयन को, पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तै बन बाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है।।
पावन पाँय पखारि कै नाव चढ़इहौ आयसु होत कहा है।
'तुलसी' सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकि ओर हहा है।।
देत महेश जटा निकसी न किसी तपसिन सो लेत हौं पाई।
जैसो करै तेहि तैसो मिलै यह राउरि बानि पुरानन गाई।।
पार करो भव सागर ते करि चौगुनि चाकरि चाहौं जुथाई।
लेत मलाह मलाह ते जो सोइ चाहत हौं तुमसे रघुराई।।
बरु तीर मारहुं लखन पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं।।

प्रभु राम के पगों को रुक-रुक कर बार-बार धोता रहा। बोला—

रेखन में जड़े कण के वे देख देख धोऊँ,
ते आप एक पग पै खड़े याते न खीजिये।
खड़े होने के निमित्त हाथ का सहारा चाहते हो,
यानि हमसे मित्रता करना चाहते हो।
चाहो अवलंब तो बिनीत जू बिलंब बिन,
नाथ मेरे माथ पर हाथ रख दीजिये।।

प्रभु ने जब केवट के माथे पर हाथ रखा—बस क्या कहना था।

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुण्य पुञ्ज कोउ नाहीं।।

दोहा—पद पखार जलुपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार।।

पग धोकर केवट खड़ा रहा—भगवान बोले अब तो पार उतारो। तो बोला—सरकार ने कहा है जलपान कर लो। जलपान करने के बाद केवट ने कहा—प्रभु परिवार वालों ने तो जलपान किया ही नहीं।

केवट धन्य सबै विधि सों, जिसने प्रभु के पद पद्म पखारे।
सुर सरि के तट के तरु औ, तृण रेणु सबै धमि धन्य सुखारे।।
नौकहु धन्य, कठौतहु धन्य हैं धन्य सबै महि कूल कगारे।
'रक्षित' धन्य सुमन्त के नैन, बहे जिसने बनि अश्रु पनारे।।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुंदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥

जाति पांति नात गोत मेरी औ तुम्हारी नाथ,
केवट के धर्म कर्म नीके करि मानिये।
तुम तो उतारत हो भव सागर परमारथ करि,
सरिता उतार दीन कुटुम्ब हम गुजारिये॥

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि पूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीन दयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा॥
सुर सरि नांघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हें भूषन वसन प्रसादा॥

दोहा—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बर देइ॥

कृपा सिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तब नाव न जाई॥
वेगि आनु जल पाँय पखारू। होत बिलंव उतारहिं पारू॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
जासु नाम सुमिरत इक बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहु पगहु ते थोरा॥

दोहा—पद नख निरखि देव सरि हरषीं।
सुनि प्रभु बचन मोह मति करषीं॥

इन्हें तज ब्रह्म कमंडल में अटकी रही,
भटकी शंभु सीस वर्ष केते बिताये हैं।
भागीरथ भूप को आरत देख आई यहां,
भारत में तीर्थ तीर तीर पै बसाये हैं।
प्राप्त न होंगे बिनीत भई निराश यद्यपि,
पतित अनेक प्रभु पास पहुंचाये हैं।

भागीरथ शंभु विध देवन की थकी जोह,
केवट ने प्रभु पग मोहि आ मिलाये हैं ।।

चरण पखारने में केवट देर कर रहा था । तब प्रभु ने डांट कर कहा—क्या कर रहे हो ? मुझे बिलम्ब हो रहा है । तब केवट उत्तर दे रहा है—

गौतम तिय तारन अधम उधारन हैं,
प्रेम से पगो को पखारन मोहि दीजिये ।

श्रीराम ने केवट के हाथों से हटाकर भींगा पाँव गंगा की रेणुका में रख दिया । तो केवट घबरा कर बोला—मुझे अभी तक केवल चरण रज पर ही सन्देह था ; और अब आपके हृदय पर भी सन्देह हो रहा है । वह पाँव को बराबर धोता ही रहा कहा—

रेखन में उड़े कण केते देख-देख धोऊँ ।
आप एक पग ते खड़े याते न खीजिये ।।

आपको एक पाँव खड़े होकर पाँव धुलाने में कष्ट हो रहा है और हाथ का सहारा चाहते हो तो केवट ने कहा—आपने कहा जलपान कर लो । जल पीकर भी केवट खड़ा रहा । बोला—प्रभु ! मैंने जलपान तो कर लिया पर अभी कुछ बाकी है प्रभु ने कहा अब क्या कमी रह गई । केवट ने कहा—'सहित परिवार' प्रभु ने हस कर कहा—परिवार को पिला लो । परिवार भी पी चुका फिर प्रभु बोले अव तो पार कर । कहा ! महाराज ! अभी कुछ यात्री पार होने को आप से पूर्व आकर खड़े हैं । केवट ने कहा—प्रभु वे पितर लोग हैं जो पार होने को खड़े हैं प्रभु ने कहा वे कौन से प्राणी हैं ? जो पार होने को खड़े हैं । केवट ने कहा वे पितर लोग हैं । भगवान ने कहा अच्छा ! पितरों को भी पार कर लो-- श्रीराम के चरण पखारे गये, प्रभु के स्वीकृति की आवश्यकता ही नहीं पड़ी । भाग्यशाली केवट ने बिना आज्ञा राम के चरण धोया जैसा जनक जी ने राम के पाँव धोए थे । केवट कहता है—

मोहिपद पदुम पखारन कहहू । तभी पाँव पखारूँगा ।।
कृपा सिन्धु बोले मुसुकाई । सोई करु जेहि तब नाव न जाई ।।

महाराज ! आप स्पष्ट कहें पांव पखारने को । केवट का हट देखकर प्रभु ने कहा--

केवट काठ का ही पात्र क्यों लाया। इसलिए कि प्रभु के चरण की धूलि के कण नौका में गिर कर रह जायँगे जिनमें मानुष करने के गुण हैं। ज्यों ही राम ने अपने चरण कठौता में रखे--

केवट चरण पखारन लागा।

क्या अद्‌भुत थी केवट की राम भक्ति। कहता है--मैं उतराई नहीं चाहता। तुम्हारी और तुम्हारे पिता दशरथ की शपथ मैं यह सत्य कह रहा हूं। केवट के वचन सुनकर तो लक्ष्मण क्रोधित हो उठे और कहा कि यह केवट बड़ा धृष्ट असभ्य है। लक्ष्मण ने उसका वध करने के लिये अपना धनुष वाण कस लिया। कहने लगा मार दो महाराज, यह मेरा परम सौभाग्य होगा कि आपके हाथों मारा गया।

अच्छा है मैं श्री राघवेन्द्र के सामने मारा जाऊँ। क्या मेरा अपराध है कि पाँव भी धो रहा हूं और मारा भी जाता है। कैसी यह अनीति और कैसा यह अनर्थ है। कहता है--

बरु तीर मारहुं लखनु पै जब लगि नँ पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं॥
सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन,
पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुचि एहि नहीं कछु दीन्हा।
पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरण पर्‌यो अकुलाई॥

केवट कहता है--प्रभु!

तुम हो तरनि कुल पालन करन हार,
हम हूं तरनि कुल पालन करैया हैं।
भीम भव सागर के सुघर खेवैया आप,
हमहुं सदैव देव सरि के खिवैया हैं।
कौतुकी कुपंथिन को पार करवैया नाथ,
हौं तो जग पावन को पार करवैया हैं।

हम तुम भैया एक कर्म के करैया राम,
केवट सो केवट न लेत उतरैया है।

जात पात न्यारी करी हमरी तुम्हारी नाथ,
केवट करम एक नीके निहारिहौ।
तारो भवसागर से दयालु तुम दीना नाथ,
सरिता उतार दीन्ह महुं को उतारिहौ॥
नाई से न नाई लेत धोबी से न धोबी लेत,
दे के उतराई मोहूं जात न बिगारिहौं।
पेशा असनाई जान तुझको उतार दीहौं,
मैं आऊँगो तुम्हारे घाट महूं को उतारिहौं॥
मैं गंगा तट का माझी हूं, तुम भवसागर के केवट हो।
मैं इस गंगा के तीर पर हूं, अरु तुम उस सरिता के तट हो।
मजदूर नहीं मजदूरों से, मजदूरी होते हैं भैया।
मल्लाह नहीं मल्लाहों से मल्लाही लेते हैं भैया॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरण गहे अकुलाई।
नाथ आज मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि मीन भूरी।

सीता-राम का वनगमन

सीता कहती हैं —

मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय वियोगसम दुख जग नाहीं॥
नाथ सकलसुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे॥
दोहा—खग मृग परिजन नगरु बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ सपथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखै नहिं राखहिं प्राना॥
कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा। परि हरि सोच चलहु बन साथा॥
दोहा—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अतिहित बारहिं बार॥

सीता हरण—

दोहा—लछिमन गए वनहिं जब लेन मूल फल कन्द ।
जनक सुता सन बोले बिहसि कृपा सुख वृन्द ।।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं छु करबि ललित नर लीला ।।
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा । जौं लगि करौ निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ।।
लछिमनहूं यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

मारीच कपट मृग भयऊ—

सीता परम रुचिर मृग देखा । अंग अंग सुमनोहर बेषा ।।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला । एहि मृग कर अति सुंदर छाला ।।
सत्य संघ प्रभु बधिकरि एही । आनहु चर्म कहति वैदेही ।।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी । धाए रामु सरासन साजी ।।
तब तकि राम कठिन सर मारा । धरनि परेउ करि घोर पुकारा ।।
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा । पाछे सुमिरेसि मन महुं रामा ।।
आरत गिरा सुनी जब सीता । कह लछिमन सम परम सभीता ।।
जाहु बेगि संकट अति भ्राता । लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ।।
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । सपनेहुं संकट परइ कि सोई ।।
मरम बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ।।
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ।।
सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती के वेषा ।।
कह सीता सुनु जती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ।।
तव रावन निज रूप देखावा । भई समय जब नाम सुनावा ।।
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ।।
जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि काल बस निसिचरनाहा ।।
सुनत बचन दससीस रिसाना । मन महुं चरन बंदि सुख माना ।।

दोहा—क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ ।
चला गगन पथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ।।

यहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ । बन अशोक महँ राखत भयऊ ।।

सीता का रावण को धिक्कारना—

सठ सूनें हरि आनेसि मोही। अधम निर्लज्ज लाज नहीं तोही।।
कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटहि न सूला।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन विनीता।।
जनि जननी मानहु जियं ऊना। तुम्ह ते प्रेम राम के दूना।।
कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए विपरीता।।
कहेहु ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।

दोहा—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु।।

सीता संदेश-सीता का वियोगताप—

कहेहुतात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।

दोहा—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका जाहि प्रान केहिं बाट।।

सीता की अग्नि परीक्षा—

पावक प्रबल देखि वैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।।
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुं होउ श्री खंड समाना।।

दोहा—जनक सुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुख सार।।

मूर्तिमती करुणा सी सीता, टप टप टप अश्रु गिराती।
बैठ गई निश्चेष्ट धरा पर फिर से अपनी मृत्यु मनाती।।
छाते हैं आकाश देश पर नित्य-प्रति इतने अंगारे।
मुझे भस्म करने को मुझ पर टूट नहीं पड़ते ये तारे।।

सीता—

त्याग दिया जाता ऐसे भी, जीवन सजीवन को।
एक नया आदर्श राम ने, दिखला दिया भुवन को।।
सीता को इस तरह निराश्रित, किसने छोड़ा होता।
अच्छा होता अगर राम ने, धनुष न तोड़ा होता।।

किया स्वधर्म उर्मिला ने, जिस भाँति अवध में पालन ।
क्या न सिया उस भाँति, काट सकती थी अपने दुर्दिन ।।

सीता साध्वी है सह लेगी, मौन तुम्हारा निर्णय ।
पर भविष्य के टीका से क्या, बच जाओगे निश्चय ।।

जानता हूं है सदा निर्दोष सीता, किन्तु राजाज्ञा उसे दोषी बनाती।
और राजा विवश है कुछ मान्यताएँ हैं,उसे जो बाध्य करती कराती।

एक जन भी यदि रहे संतप्त संशय पूर्ण ।
तो रहेगा प्रजा-पालन व्रत सदैव अपूर्ण ।।

इसलिए ही राम राजा ने दिया है त्याग सीता सी सती को ।

सीता का चरित्र इस जग को, पुण्यमयी गीता है !
इस त्रिलोक में वहाँ वहाँ में जहाँ जहाँ सीता है ।।
नर नारायण में न भेद कुछ, कर्म एक व्यवधान ।
जो था दशरथ पुत्र अवध में, वह मेरा भगवान ।।

जब जब भू पर भार पाप का बढ़ जाता है,
सुख पाते हैं दुष्ट सुजन गण दुख पाता है ।
तब तब अद्भुत सृष्टि ईश करता है वैसे,
सीते ! जग में जन्म आपने पाया जैसे ।।
सीता मंदोदरी गर्भे संभूत चारु रुपिणी ।

Sita born daughter of Janak and not from earth as described in Ramayan. महाभारत-वन पर्व Riddle of Ramayan Page 190.

जय जय जय गिरि राज किसोरी । जय महेश मुख चन्द चकोरी ।।
जय गज बदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ।।
भव भव विभव पराभव कारनि । विश्व विमोहमि स्वबस विहारिनि

तुम्हें पहिचानति नाहीं वीर ।
इन नैनन कबहूं नहिं देख्यौ, रामचन्द्र के तीर ।।
लंका बसत दैत्य अरु दानव, जिनके अगम सरीर ।
तोहि देखि मेरो जिय डरपत, नैननि आवत नीर ।।

तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्ही, जिहिं जिय उपज्यौ धीर।
'सूरदास' प्रभु लंका कारन, आए सागर तीर॥

बनचर! कौन देस ते आयौ।
कहाँ वे राम, कहाँ वे लछिमन, क्यौं करि मु ा पायौ॥
हौं हनुमंत राम कौ सेवक, तुम सुधि लेंन पठायौ।
रावन मारि, तुम्हें लं जातौ, रामाज्ञा नहिं पायौ।
तुम जनि डरपौ मेरी माता, राम जोरि दल लगायौ।
'सूरदास' रावन कुल-खोवन सोवत सिंह जगायौ॥

मैं परदेसिनि नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोउ, मातु-पिता न सहेली॥
रावन भेष धर्‍यो तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़ मति मेरी, राम-रेख पग पेली॥
बिरह ताप-तन अधिक जरावत, जैसे दव द्रुम-बेली।
'सूरदास' प्रभु बेगि मिलाऔ, प्रान जात हैं खेली॥

सीता के जन्म के सम्बन्ध में स्वयं राजर्षि जनक कहते हैं—

न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माक पूर्वके विभो।
अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गला दुत्थिता मम॥
क्षेअं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
भूतला दुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा॥

एक बार मैं कृषि भूमि जोत रहा था उस समय हल के फाल से खुदी हुई नीचे की भूमि से एक कन्या निकल आयी। उसे मैं अपनी पुत्री मानकर पालने लगा। उसका नाम सीता रखा, सीता के व्याह के निमित्त जनक ने प्रतिज्ञा कर रखा था जो पुरुष उनके यहाँ रखे हुए हर-धनुष का प्रत्यंचा चढ़ाने में समर्थ होगा उसी से अयोनिजा कन्या का व्याह होगा। देश-देश के नृपति गण हर धनु की प्रत्यंचा चढ़ाने में असमर्थ रहे। अन्त मे राम ने धनुष की प्रत्यंचा को खींच कर हर धनु को ही भंग कर दिया और उनके साथ सीता का व्याह होगा। जनक की कन्या होने से जानकी और विदेह देश के राजा की कन्या होने से 'वैदेही' नाम पड़ा। जनक

ने अग्नि को साक्षी देकर सीता को राम के हाथ में अर्पण करके कहा—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिनां॥
वा. रा. १।७३।२७

हे रघुनन्दन! मेरी पुत्री सीता आज से आपको सहधर्मिणी बन रही है। अपने हाथ से इसका हाथ पकड़ कर इसे अपनाइये।

पतिव्रतां महाभागा छायेवानुगता सदा। वा. रा. १।७३।२८

यह पतिव्रता कन्या छाया की भाँति आपका अनुसरण करेगी। पिता के इच्छानुसार सीता छाया के समान ही पति का अनुगमन करना चाहती थीं। किन्तु अदृष्ट बारम्बार उनको ऐसा करने से वंचित करता रहा। बन में अनेक दुःसह संकट सहने पर भी कभी कोई किसी प्रकार का असंतोष प्रकट नहीं किया। दुख को दुख नहीं समझा। किन्तु विधि के विधान से अन्त काल में पति से वंचित होना पड़ा। राज्याभिषेक के मांगलिक अवसर पर राम के वनगमन का समाचार सुनकर सीता विचलित हो गईं। वह भी राम के साथ बन जाने को प्रस्तुत हो गईं और राम के समझाने पर भी राजप्रासाद में रहने की अपेक्षा राम के साथ अरण्य में रहना ही श्रेयस्कर समझा और कहने लगीं—

भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैं का प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्य मित्यपि॥
वा. रा. १।२७।४

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखी जनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥

हे आर्य पुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्र बंधु सब अपना-अपना पुण्य भोगते हुए भाग्य की ही उपासना करते हैं। कोई किसी के भाग्य को नहीं बना बिगाड़ सकता। हे नरश्रेष्ठ! एक मात्र स्त्री ही अपने पति के लिये कर्म का फल भोगती है।

पुनश्च सीता ने कहा— हे काकुत्स्थ! आपका दुख हमारा दुख और आपका सुख हमारा सुख। पितृ गृह में मैंने सुना था कि मुझे

बनवास जीवन व्यतीत करना होगा। इस कारण साथ में मुझे वन में ले जाना आपका एकान्त कर्त्तव्य है।

समामनादाय वनं न त्वं प्रस्थातुमर्हसि।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥
वा. रा. २।३०।१०

रामके कहने पर भी वे उनके साथ वन में जाने को दृढ़ प्रतिज्ञ थीं। राम के कहने पर भी सीता ने हठ नहीं छोड़ा और अन्त में राम के साथ बन चली ही गई। बन में उन्हें दारून दुख सहना पड़ा फिर भी उन्होंने राम से कोई किसी प्रकार का अपवाद नहीं किया।

पुरते निकसीं रघुबीर बधू, धरि धीर दियो मग में पग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूख गये मधुराधर द्वै।
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्ण कुटी करिहौं कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी, अँखियाँ अति चारु चलीं जलच्वै।

आप मुझे छोड़कर बन में नहीं जा सकेंगे। तपस्या बनवास व स्वर्गवास जो कुछ भी हमें करना होगा मुझे सर्वत्र सुख है। राज्याभिषेक के समय सीता यह आशा करती थी कि माता कैकेयी के यहाँ से कोई शुभ समाचार लेकर आयेंगे परन्तु राम इसके बिलकुल विपरीत समाचार लेकर आए। फिर भी सीता ने किसी प्रकार का असन्तोष या शोक प्रकट नहीं किया। सीता का जीवन कभी भी सुखमय नहीं रहा। लंका विजय के पश्चात लौट कर जब अयोध्या के राजप्रसाद में आई, पुनश्च बिधि को बिडम्बना का सामना करना पड़ा। कभी भी पति या राजप्रसाद का सुख नहीं मिला। एक समय राजसभा में बैठे विदूषकों से राम ने पूछा— प्रजा-पुरवासी लोग मेरे विषय में क्या कहा करते हैं। विदूषक भद्र ने कहा— हे राज श्रेष्ठ! प्रजा वर्ग में प्रायः एक बात की चर्चा हुआ करती है कि रावण के अधिकार में रही हुई सीता को रामचन्द्र ने बिना विचार किये पवित्र समझ कर घर में लाकर रख लिया, इत्यादि। ऐसा सुनकर राम ने अविलम्ब सोता को पुनः बन में बाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया जिससे सीता को लेकर उनके

प्रति या विपरीत किसी प्रकार का अपवाद न सुनाई पड़े। यद्यपि सीता लंका में अग्नि परीक्षा में निष्कलंक शुद्ध पाई गई थीं, परन्तु लोकोपवाद से बचने के लिए राम ने सीता का परित्याग कर दिया। यद्यपि यह धर्मानुकूल उचित नहीं था। सीता ने भी इसका विरोध नहीं किया और कहा—हे स्वामी! मेरे प्रेम या मोह वश ऐसा कोई कार्य न करें जिससे आपकी सुकीर्त्ति में कलंक लगे और संसार यह न कहे कि राम ने पत्नी प्रेम के मोह पाश में फँसकर धर्म और निर्मल आचरण के विपरीत कार्य किया। निर्दोष सीता को बाल्मीकि के आश्रम में भेजते समय स्वयं राम ने अपने अनुचित व्यवहार पर संकोच एवं प्रायश्चित भी प्रकट किया था, किन्तु लोकापवाद के भय से ऐसा करना पड़ा। भवभूति ने उत्तर रामचरित में इसका उचित समाधान करते हुए वर्णन किया है—

देवि! अयं पश्चिमस्ते रामस्य शिरसिपाद पंकज स्पर्शः।
सीताया पादौशिरसि कृत्वा॥

राम ने सीता के चरण स्पर्श करके क्षमा माँगी।

उत्तर रामचरित प्रथम अंक

सीता सहर्ष बाल्मीकि के आश्रम में चलीं गईं परन्तु राम का लेश मात्र भी प्रतिरोध नहीं किया। यथा समय बाल्मीकि के आश्रम में सीता के गर्भ से दो यमज सन्तान उत्पन्न हुए लव और कुश। बाल्मीकि मुनि ने बालकों को सम्पूर्ण रामायण का पाठ अल्प समय में ही कंठस्थ करा दिया। बारह वर्ष के बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया और उसमें योग देने के निमित्त राम ने बाल्मीकि मुनि को भी आमन्त्रित किया। बाल्मीकि मुनि दोनों बालकों लव-कुश को लेकर राजसभा में उपस्थित हुए। दोनों बालक रामायण का गान करने लगे। बाल्मीकि द्वारा दोनों बालकों के परिचय देने के उपरान्त राम को मालूम हुआ कि वे दोनों बालक उन्हीं के पुत्र हैं। बाल्मीकि के आश्रम से सीता अयोध्या के राजप्रासाद में बुलाई गईं। राजसभा में उपस्थित सभी मुनि, ऋषि, राक्षस बानर, सभासद व प्रजा एक स्वर में कहने लगे—सीता बिलकुल निर्दोष शुद्ध

पवित्र है। राम ने उन्हें पुनः ग्रहण कर लिया। उस समय सीता ने नीचे मुख किये हुए हाथ जोड़कर बोली--

यथाहं राघवा दन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
वा. रा. ७'९७।१५

एक रामचन्द्र को छोड़कर यदि मैंने किसो अन्य पुरुष की चिन्ता मन से भी कभी की हो तो माता पृथ्वी फट जायँ और मैं उनमें समा जाऊँ। माता पृथ्वी फटकर अपनी पुत्री को गोद में लेकर सदा के लिए अन्तर्ध्यान हो गई।

सीता का चरित्र चन्द्रमा के समान शीतल और सूर्य की प्रभा के सदृश्य दीप्तिमान था। उनका स्वभाव अति प्राकृत और सरल था। जितने वर्ष अयोध्या के राजप्रासाद में रहीं अपने हाथ से कभी कोई वस्त्र तक पाहनने का अभ्यास नहीं किया था और न जानती ही थीं। बनवास के समय जब चीर बसन पहन कर जाना पड़ा तो वह स्वयं चीर वस्त्र नहीं पहन सकीं। उन्होंने राम से वस्त्र पहना देने को कहा। जब वन में राम राक्षसों का कभी बध करते तो सीता उनका विरोध करती हुई कहती थीं—आप निस्प्रयोजन वैर का त्याग कर दें। आप साधु परिव्राज्य जीवन व्यतीत करने का संकल्प करके अरण्य में आए हैं, यहाँ पर राक्षसों से वैर और उनका वध करना समयोचित नहीं जान पड़ता। वन में जाते समय मार्ग में सीता ने राम से कहा--

बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान।
अपराधं बिना हन्तुं लोकान् वीर न कामये॥
वा. रा. २।९।२५

हे प्राण प्रिय! बिना किसी अपराध के दण्ड कारण्य निवासी राक्षसों का वध करनें का आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं। परन्तु मेरा ख्याल है कि निरपराधियों के वध से लोक में आपकी प्रशंसा नहीं होगी। राम ने सीता को समझाते हुए कहा—देवि! मैंने विशाल ऋषि मुनियों की भरी सभा में उनकी रक्षार्थ इसके बहुत पूर्व प्रण किया है कि मैं राक्षसों का वध करके समूल राक्षस वंश का ही

नाश कर दूंगा। यह कार्य तो मुझे वचन देने के पूर्व ही करना श्रेयस्कर था और बचन देकर ऐसा न करूँ तो इससे मुझे घोर अपयश का भागी बनना पड़ेगा। इतना समझाने पर सीता शान्त और संतुष्ट हो गईं। सीता ने ऐसा सुझाव जो दिया था उससे उनके धर्म अधर्म सम्बन्धी ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। परन्तु अपने मत को स्वीकार करने हेतु उन्होंने राम को बाध्य नहीं किया। केवल उन्होंने राम के उचित और अनुचित कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचार करने हेतु उनका ध्यान आकृष्ट किया था। सीता ने पुनः कहा—

स्त्री चापला देत दुहाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः।
विचार्य बुद्धया तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु मा चिरेण॥
वा. रा. ३।५।३३

स्त्री बुद्धि की प्राकृत स्वभाववश चपलता के आवेश में मैंने ऐसी बातें कही हैं। अब आप जैसा उचित समझें भाई लक्ष्मण से परामर्श करके वैसा करें।

सीता हरण का प्रकरण—

रावण ने योजना बद्ध षड्यंत्र करके मारीच को सीता हरण के लिये भेजा। रावण मारीच से कहता है—

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजत बिन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर।
प्रलोभयित्वा वैदेही यथेष्टं गन्तुमर्हसि॥
वा. रा. अर. ४०।१६।२७

हे मारीच! तुम सोने का मृग बनोगे और तुम्हारे शरीर पर चाँदी जैसी श्वेत चित्तियाँ होंगी। ऐसा रूप बनाकर तुम राम के आश्रम पर जाकर सीता के सम्मुख विचरो। बस सीता को लुभा कर जहाँ जो चाहे वहाँ चले जाना।

जब राम सीता और लक्ष्मण सहित पंचवटी में वास कर रहे थे उसी समय उनकी कुटी के सामने रावण से प्रेरित होकर ताड़का पुत्र मारीच अपने शरीर को नाना प्रकार के स्वर्णरत्नों से भूषित

मृग रूप धारण करके आया। सीता ने उसे स्वर्ण का मृग समझ कर राम से पकड़ लाने का अनुरोध किया।

आन येनं महाबाहो क्रीड़ार्थं नो भविष्यति।

वा. रा. ३।४३।९

हे आर्य पुत्र! आप इसे पकड़ कर लाइये। यह मेरे आश्रम में खिलोना का काम देगा। ऐसी प्रेरणा नारी स्वभाव को निर्बलता अदूरदर्शिता और अपरिपक्व विचार का द्योतक है। सीता ने भी तदुपरान्त अनुभव किया कि इस प्रकार का अनुरोध करना अनुचित था।

कामवृत्त मिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम्।
वापुषा त्वस्यसत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम॥

वा. रा. ३।४३।२१

सीता के अनुरोध करने पर राम भी कपटी माया रूपी स्वर्ण देहधारी मारीच को मृगा समझ कर उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे पीछे दूर वन में चले गये। कहावत है—विनाश काले विपरीत बुद्धि'।

असम्भवे हेम मृगस्य जन्मोऽस्तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समासन्न परा भवानाम् धियो विपर्यस्तरा भवन्ति॥

म. भा. सभापर्व ७६।५

सोने का पक्षी पशु न होता है न कभी सुना गया, फिर भी कपटी मारीच के मृगा रूप को देखकर राम और सीता कैसे मोहित हो गये यह आश्चर्यजनक है। दूसरी तरफ राम के बाण से आहत होकर मारीच राम के सदृश वाणी में आर्तनाद करने लगा बचाओ, बचाओ! मारीच के अर्तनाद को राम का ही आर्तनाद समझ कर सीता जी लक्ष्मण के समझाने और विरोध करने पर भी न समझीं और लक्ष्मण को हठ पूर्वक राम के रक्षार्थ बन में भेज दिया वे मारीच के कपटजाल को न समझ सकीं।

उस समय सीता ने लक्ष्मण के प्रति संदेह करते हुए उनके चरित्र के विरुद्ध अनेक अशोभनीय कठोर अपशब्दों का भी प्रयोग किया था जिससे लक्ष्मण को यह जानते हुए कि राम पर कोई

विपदा नहीं आ सकती। सीता को कुटी में छोड़कर विवशतावश राम को देखने जाना पड़ा। सीता का यह कार्य अविवेक पूर्ण था पर वे भी घबड़ाई हुई थीं और अत्यन्त मानसिक कष्ट के दबाव से ही ऐसा उन्होंने किया, अतः उनका भी कोई दोष नहीं जान पडता। प्रथमतः सीता का स्वर्ण मृग देखकर उत्सुकता एवं तदुपरान्त विशेष विवेचना किए बिना लक्ष्मण के प्रति घोर आक्रोश प्रकट करने के कारण उत्तर काल में उन्हें समग्र जीवन भर प्रायश्चित करना पड़ा।

सीता ने लक्ष्मण से कहा—

यस्त्व मस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यसे।
इच्छसित्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते॥
लोभान्मम कृतेनूनं नानु गच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते॥

बा. रा. ३।४५।६-७

हे लक्ष्मण! तुम चाहते हो कि राम मर जाँय तो सीता को मैं अपनी पत्नी बना लूँ। मुझे पाने के लिए तुम राम के पास नहीं जा रहे हो जितनी तुम्हारे मन में दुर्वासना है, उतना भाई पर प्रीति नहीं है। इत्यादि।

लक्ष्मण द्वारा आश्रम में सीता को अकेले छोड़कर चले जाने के बाद रावण सुयोग का लाभ उठाकर सीता हरण निमित्त सन्यासी के भेष मे उनकी कुटी के सामने भिक्षुक रूप में आया। रावण सीता की पर्ण कुटी के पास आकर सोता को देखकर नाना विधि उनके गुण और सौंदर्य की अकारण प्रशंसा करने लगा। रावण को ब्राह्मण भिक्षुक समझ कर भिक्षा देने हेतु सीता कुटी के बाहर आई। तभी सुयोग पाकर रावण सीता को अपने वायुयान में बैठाकर हर ले गया। इस प्रसंग से भी सीता के अविवेक एवं प्रगल्भता का निम्नतर उदाहरण मिलता है। एक सन्यासी बिना जाने समझे उनकी क्यों प्रशंसा करता है और सीता स्वयं रावण को अपना पूरा परिचय क्यों देती हैं यह विशेष विवेच्य विषय है। सर्वप्रथम सन्यासी की निरर्थक प्रशंसा पर उन्हें विचार करना

चाहिये कि वास्तव में यदि वह सन्यासी होता तो अकारण उनको इतनी प्रशंसा न करता। रावण के रथ में बैठी हुई जाते समय सीता ने मार्ग में जटायु को देखकर उससे भी अपनी विपदाग्रस्त कथा को सुनाई। जटायु प्रवल विरोध और घोर युद्ध करके भी रावण से सीता को मुक्त न करा सका और रावण ने जटायु को भी आहत करके निर्जीव कर दिया। जटायु को मृतप्राय छोड़कर रावण सीता को लेकर लंका की तरफ अग्रसर हुआ। सीता हरण का जो रूप बाल्मीकि रामायण में प्रस्तुत किया गया है वह किंचित वीभत्स कहा जा सकता है। जैसे—रावण एक हाथ से सीता के सिर के वाल और दूसरे से उनकी जंघाओं को पकड़ कर अपने रथ पर रख देता है।

अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काम मोहितः।
अग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव।
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः।
उर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥

बा. रा. अरण्य. ४८।१६-१७

रावण आकाश मार्ग से सीता को जब ले जा रहा था तो सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे पाँच वानरों को देखा! बानरों को देखकर सीता ने आभूषणों में से कुछ आभूषण बानरों के समीप गिरा दिया ताकि राम जब सीता को खोजने निकलें तो उनको सीता हरण का पूरा समाचार मिल जाय! इधर रावण ने सीता को लाकर लंका स्थित अशोक वन में बैठा दिया।

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के वन्धन में।
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन में ॥

यदि सीता ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए पाँच बानरों के समीप अपने आभूषणों को न गिरातीं तो सम्भवतः उनका सन्धान करना राम के लिए दुस्तर हो जाता। सीता का उद्धार करना भी असम्भव हो जाता। सीता ने अपार विपदाकाल में भी अपना धैर्य नहीं खोया।

सीता ने रावण के दुष्कर्म प्रवृत्ति को देखकर कहा—

अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
न च रामस्य भार्यां माम पनी चरित्र जीवितम् ।।

वा. रा. ३।४८।२३

हे रावण ! यह सम्भव है कि तुम इन्द्र की इन्द्राणी को हर के जीवित बच जाओ किन्तु राम की भार्या सीता का हरण करके तुम जीते न बचोगे। न तो उनकी बुद्धि ही भ्रष्ट हुई। जिन बानरों को सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर देखा था वे थे किष्किन्धा के अधिपति बालि के कनिष्ठ भ्राता सुग्रीव तथा उनके सभासद हनुमान ईत्यादि मन्त्रीगण। राम ने सीता का अन्वेषण लगाने के लिए सुग्रीव से मित्रता की।

सुग्रीव ने अपने मन्त्रीगण के साथ परामर्श करने के पश्चात सर्व सम्मति से हनुमान को सीता अन्वेषण के लिये लंकापुरी को भेजा। लका में पहुंचने के बाद हनुमान सीता की खोज करने लगे। अन्त में उन्होंने सीता को अशोक वाटिका में एक अशोक वृक्ष के नीचे राक्षसियों से घिरे हुए बैठे पाया। राक्षसियों के भय से वे काँप व रो रही थीं।

देवते स्माधिकं सीता विशन्ती वाङ्मात्मनः ।
बने यूथ परिभ्रष्टा मृगो कोकैर वार्दिता ।।

वा. रा. ५।२५।५

सीता का सारा शरीर आसुओं से भींग गया था। रोते-रोते वे बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ीं। वह प्रायश्चित करने लगीं और मन ही मन सोचने लगीं कि जन्मान्तर में कौन सा ऐसा पाप मैंने किया है कि यह दुःसह दुख मुझे भोगना पड़ रहा है। मनुष्य जन्म को धिक्कार है। पराधीनता को धिक्कार है। इच्छा करने पर भी हम अपना प्राण नहीं त्याग सकते। वह कहने लगीं—

उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्त चित्तेव शोचती ।
उपा वृत्ता किशोरीव विवेष्टन्ती महोतले ।।

वा. रा. ५।२८।२

उन्मत्त, प्रमत्त और भ्रान्त चित्त सीता थकी हुई घोड़ी की तरह पृथ्वी पर लोटती हुई अधीर हो उठीं। राक्षसीगण सीता को

नाना प्रकार से सता रही थीं और कोई कोई भक्षण कर लेने की भी धमकी दे रही थीं। उसी समय त्रिजटा नाम की राक्षसी ने आकर राक्षसियों से कहा—मुझे ऐसा स्वप्न हुआ है कि अति शीघ्र राम लंकापुरी पर आक्रमण करके जानकी का उद्धार करेंगे ओर सम्पूर्ण राक्षसवंश का ध्वंश कर देंगे।

त्रिजटा के स्वप्न का वृतान्त सुनने के समय सीता का बायाँ नेत्र, वाम बाहू और वाम उरू बार-बार स्पन्दित हो रहा था। ऐसा लक्षण कल्याण का सूचक माना जाता है और शत्रु के लिए अशुभ। सीता रो-रोकर कह रही थी—हे रघुनन्दन! यदि आप शीघ्र नहीं आये तो मैं अपना प्राण परित्याग कर दूंगी। पुनः वह कहने लगीं—हे रघुनन्दन!

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा बनान्निवृत्तश्चरित व्रतश्च।
स्त्रीभिस्तुमन्ये बिपुलेक्षणाभिस्त्वं रस्यसे बीतभयः कृतार्थः॥
वा. रा. ५।२८।१४

तुम पिता के आज्ञानुसार बनवास की अवधि समाप्त कर घर चले गए होगे और वहाँ निर्भय भाव से विशालाक्षी युवती स्त्रियों में रमण करते होंगे। राम के प्रति इस प्रकार सन्देह करना शोभनीय नहीं जान पड़ता और ऐसा सन्देह उन्होंने इसके पूर्व लक्ष्मण के प्रति भी ऐसे ही शंका क्रिया था जो समीचीन नहीं जान पड़ता। सीता के ऐसे सन्देह विस्मय जनक हैं। जिस समय सीता आत्महत्या की सोच रही थीं उसी समय कई एक शुभ लक्षणों का प्रादुर्भाव हुआ।

शोकानिर्मित्तानि तथा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके।
प्रादुर्निमित्तानि तथा बभूवः पुरापि सिद्धान्युप लक्षितानि॥
वा. रा. ५।२ ।१९

सोता को अपने शुभ लक्षणों का आभास हो रहा था। उसी समय उन्होंने सुना कि कोई राम के जन्म काल से उनके जीवन का पूरा वृतान्त सुना रहा है। उन्होंने देखा कि शिंशपावृक्ष के ऊपर एक बानर बंठा है। उन्होने कहा—

अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो बनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ।
वा. रा. ५।१२।१४

ईश्वर करे यह बानर मेरे समक्ष जो कुछ कह रहा है, वह सब सत्य हो जाय । हनुमान ने मधुर वाणी में सीता का परिचय पूछा। सीता ने बनवासी बानर हनुमान को अपने बनवास से लेकर अपहरण तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने हनुमान से कहा कि यदि मैं दो माह के अन्दर रावण को पति रूप में स्वीकार नहीं करूँगी तो वह निश्चय मेरा बध कर डालेगा। या मैं स्वयं प्राण हत्या कर लूँगी। हनुमानद्वारा सीता को अपना पूरा परिचय देने के बाद सीता पश्चाताप करने लगीं कि कहीं बानर रूप धारण करके रावण ही न आया हो। सीता सोचने लगीं—

अब्रवीद्दीर्घं मुच्छ्वस्य बानरं मधुरस्वरा।
मायाप्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ।।
वा. रा. ५।३४।१४

हे बानर ! यदि तुम इस रूप में स्वयं रावण हो तो तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है। सीता का बानर पर भी विश्वास नहीं हुआ और वह मन ही मन सन्देह करने लगीं और बानर हनुमान से राम और लक्ष्मण के विषय में उनके रूप और आकृति के विषय में पूछने लगीं। हनुमान ने विधिवत पूरा वृतान्त राम और लक्ष्मण के प्राकृति रूप का विस्तृत वर्णन कह सुनाया। सीता को प्रसन्न देखकर हनुमान ने राम नाम अंकित अंगूठी उन्हें दे दिया जिससे सीता को पूर्ण विश्वास हो गया कि हनुमान निश्चित रूप से रामदूत है।

राम संदेश लेकर निर्भय चले गये लंका में।
तुम्हें देखकर भीता सीता मग्न हुई शंका में।।
तो भी वृत्त मधुर रघुवरका तुमने उन्हें सुनाया।
और मुद्रिका देकर उनके भ्रम को दूर कराया।।
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः कर विभूषणम् ।
भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ।।
वा. रा. ५।३६।४

सीता स्वामी की अँगूठी हाथ में लेकर देखने लगीं। उससे सीता को पति मिलने के समान सुख हुआ और हनुमान पर पूरा विश्वास हो गया और बार-बार हनुमान की बड़ाई करने लगीं। हनुमान से सीता ने कहा—

मास दिवस महुं नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहि पावा ।।

सीता ने हनुमान से कहा—हे हनुमान! राम और लक्ष्मण का तुम्हारे मुख से कुशल वार्ता सुनकर मैं जीवित हो उठीं। सीता कहने लगीं—

अमृतं विष संसृष्टं त्वया बानर भाषिताम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्चं शोक परायणाः ।।
वा. रा. ५।३७-२

हे वानर! तुम्हारे बचनों में अमृत और विष दोनों का ही पुट है। राम सदा मेरा चिन्तन करते हैं यह अमृत और हमारे वियोग से शोकाकुल रहते हैं, यह विष है।

हे बानर श्रेष्ठ! विभीषण ने अपने अग्रज रावण को हमारे प्रत्यावर्तन करने हेतु अनुनय किया था और एक अविन्ध्य नामक वृद्ध विद्वान ने भी ऐसा हितोपदेश दिया था। किन्तु दुराचारी रावण ने उनके परामर्श पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। हनुमान ने कहा—आप मेरी पीठ पर बैठ जाँय और आज ही हम आपके घोर दुःख का सम्पूर्ण विमोचन कर दूंगा। आज ही मैं आपको राम के पास पहुंचा दूंगा। सीता को विश्वास दिलाने के निमित्त हनुमान ने अपना पर्वताकार विशाल रूप धारण कर लिया और कहा—आप मेरी पीठ पर चढ़ लें।

राम के निकट ले चलूं तुम्हे क्या होगी देरी।
कपि में भी तब हुई आप की कृत्रिम शंका।
क्योंकि राम के हाथ नष्ट करनी थी लंका ।।
सीते! तुमको बड़ी युक्ति से दण्डक बन में,
लक्ष्मण ने था छोड़ दिया दुःखित हो मन में।
यदि वे होते वहाँ दशासन तुम्हें न हरता,
फिर कैसे रघुनाथ हाँथ से वह खल मरता ।।

हनुमान के पर्वताकार शरीर को देखकर सीता ने कहा—कपिवर! तुम्हारी प्रज्ञा, तेज, शक्ति और गति अति प्रचण्ड और विस्मय जनक है। हमें सन्देह है कि कहीं तुम्हारे पीठ से समुद्र में न गिर जाऊँ इसके अतिरिक्त हमको ले जाते समय यदि राक्षस गण देख लिए तो तुम्हारे पर आक्रमण कर देंगे और तुम अपने प्रयास में विफल हो जाओगे। यदि तुम अपने प्रयास में सफल भी हो जाओगे तो संसार हँसेगा कि राम अपनी पत्नी का स्वयं उद्धार नहीं कर सके। ऐसा करने से उनके यश की हानि होगी। हे वानर श्रेष्ठ! दूसरे मैं किसी अन्य पुरुष का शरीर स्पर्श नहीं कर सकती। हे कपिवर! तुम राम, लक्ष्मण और कपीश्वर सुग्रीव को साथ लेकर लंकापुरी में आना और मेरा उद्धार करना तभी राम के पराक्रम और पौरुष का यशोगान होगा।

इसके बाद हनुमान सीता का अभिज्ञान लेकर जब लंका से राम के पास आने लगे तो सीता ने अपना चूड़ामणि उतार कर हनुमान को दिया और कहा—कपि श्रेष्ठ! इसे तुम राम को दे देना। यह चूड़ामणि सीता का दिव्य आभूषण था। यह चूणामणि जनक राजा द्वारा नाग राजा की पराजय होने पर नाग राजा की पत्नी ने अपनो कन्या सीता की माता सुनयना, जिसका विवाह नागराजा ने जनक से कियाथा को दिया था। सुनयना ने इस चूड़ामणि को अपनी बेटी सीता को दिया था। इस चूंड़ामणि में यह विशेष गुण था कि जिसके पास यह चूड़ामणि रहेगी उसकी कभी पराजय नहीं हो सकती। क्योंकि रावण जब अपने रथ पर बैठाकर सीता को लंका में ले जा रहा था उस वक्त मार्ग में ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव सहित अन्य वानरों को देख सोता ने अपने प्राय: सभी आभूषण वानरों के समीप गिरा दिया था परन्तु केवल मात्र चूड़ामणि को उन्होने नहीं गिराया। इस रहस्य को नाग पत्नी ने अपनो कन्या जनक पत्नी सुनयना को वताया था और सुनयना ने अपनी कन्या सीता को बताया था।

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूड़ार्माण शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥

वा. रा. ५।३९।६९

हनुमान ने प्रत्यागमन करने के समय सीता से चिह्न स्वरूप कुछ माँगा था कि वे लंका में सीता से मिल कर आए हैं।

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ।।

इसके बाद सीता ने चिह्न रूप में राम को देने के लिए अपना चूड़ामणि वस्त्रों में से निकाल कर हनुमान को दिया। तदुपरान्त चूड़ामणि लेकर हनुमान चलते समय लंका पुरी को जला दिया। लंकापुरी को जलते देखकर सीता को भय हुआ कि कहीं हनुमान न भस्म हो जाँय तदर्थ उनकी रक्षा हेतु वह अग्निदेव की उपासना प्रार्थना करने लगीं।

यदि वा भाग्य शेषों मे शीतो भव हनूमतः।
यद्यस्ति पति सुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।।

यदि मैं पतिव्रता हूं तो हे अग्निदेव! तुम शीतल हो जाओ। अग्निदेव ने सीता की प्रार्थना को सफल कर दिया तथा हनुमान पुनः सीता के पास आए और उन्हें प्रणाम कर वापस चल दिये। हनुमान तीव्र गति से राम के पास आए और सीता के अभिज्ञान का पूरा विवरण कह सुनाया। राम ने वानरी सेना सहित लंका में प्रवेश किया। राम और रावण का युद्ध आरम्भ हो गया। रावण सोचने लगा यदि इसी समय किसी प्रकार छल चतुराई से सीता को वश में कर सकें तो राम निराश होकर वापस लौट जायँगे। इसी समय विद्युतज्जीह्वा राक्षसी ने राम का छिन्न मृत माया रूपी शरीर बनाकर सीता को दिखाकर उन्हें रावण को भर्त्ता रूप में स्वीकार करने का अनुरोध करने लगी। सीता राम के मृत माया रूपी शरीर को देखकर विलाप करने लगी।

एव मुक्त्वा तु वैदेही वेषमाना तपस्विनी।
जगाम जगती वाला छिन्ना तु कदली यथा।।
वा. रा. ६।३२।६

दुखियारी सीता ऐसा कहकर काँपने लगीं और कटे हुए केले के पेड़ की तरह जमीन पर गिर पड़ी। उसी समय विभीषण की पत्नी सरमा आई और राम के माया मृत शरीर का पूरा भेद और

रहस्य सीता को समझाते हुए उन्हें आश्वासन दिया। सरमा और त्रिजटा सीता की सखियां थीं। लक्ष्मण भी शराघात से आहत हो गए थे। यह समाचार सुनते ही सीता निराश होकर विलाप करने लगीं।

उचुर्लक्षणिनो ये मां पुत्रिण्य विधवेति च।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृत वादिनः ॥
वा. रा. ६।४८।२

जिन सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाताओं ने मुझे पुत्रवती तथा सौभाग्य-वती रहने की भविष्यवाणी की थी वे सब आज युद्ध में श्रीरामचन्द्र के मारे जाने से झूठे हुए। त्रिजटा ने सीता को सान्त्वना देते हुए समझाया कि राम और लक्ष्मण दोनो ही जीवित हैं। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है।

लक्ष्मण के वाण से रावण का पुत्र इन्द्रजीत मारा गया। क्रोध में रावण सीता का बध करने पर उद्यत हो गया। परन्तु सुपार्श्व नामक राक्षस ने रावण को ऐसा करने से रोक दिया। अन्त मे राम द्वारा रावण भी मारा गया। तदन्तर राम के निर्देश पर हनुमान ने अशोक वाटिका में जाकर रावण बध का शुभ समाचार सीता को सुनाया। हनुमान की बात से सीता अति प्रसन्न हुई और कुछ देर कुछ न बोल सकीं—

अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शसमुत्सुकः।
एव मुक्ता समुत्पत्य सीता शशि निभानना ॥
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याजहार न किंचन।
अब्रवीक्च हरिश्रेष्ठः सीतामप्रतिजल्पतीम् ॥
वा० रा० ६।११६।१४-१५

पुनः सीता ने हनुमान से कहा—

अब्रवीत परम प्रीता हर्ष गद्‌गदया गिरा।
प्रियमेत दुपश्रुत्य भर्तुर्विजय संश्रितम् ॥
वा० रा० ६।११६।१७

हनुमान ने पूछा—हे देवि! यह शुभ समाचार सुनने के बाद आप

बोलती क्यों नहीं हैं। सीता ने गद्गद वाणी में कहा—हे हनुमान! तुम्हारे मुंह से अपने पति के विजय का समाचार सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस खुशी से कुछ क्षण के लिये मेरी बोलने की शक्ति लुप्त हो गई थी। जिन राक्षसियों ने सीता को सताया था हनुमान उनका बध करना चाहते थे परन्तु जानकी ने कहा—हे हनुमान! इनका दोष हो या न हो परन्तु इनका बध करना उचित नहीं है। इन दासियों को क्षमा कर दें। ये अपने स्वामी के अधीन व विवश थीं। हनुमान ने सीता का समाचार राम को सुनाया। राम ने तुरन्त सीता को अपने सम्मुख उपस्थित करने का आदेश दिया। सीता को देखकर उन्हें दूषित समझ कर तुरन्त परित्याग कर दिया। सीता पति रामचन्द्र की कटु वचन सुनकर रोने लगीं। फिर धीरे-धीरे गद्गद वाणी में बोलने लगीं—सीता ने कहा—हे स्वामी! जिस हृदय पर मेरा अधिकार है, वह आज भी आप में अनुरक्त है। शरीर पर मेरा कोई भी अधिकार नहीं है। कारण कि मैं निर्बल स्त्री होने के कारण उसकी रक्षा नहीं कर सकती थी।

कि माम सदृशं वाक्य मोदृशं श्रोत्र दारुणम्।
रुक्ष श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ।।

वा० रा० ६।११०।५

हे वीर! साधारण मनुष्यों की तरह सुनने के अयोग्य तथा कान फाड़ देने वाले ऐसे रूखे वचन आप क्यों बोल रहे हैं। मैं शपथ खाकर कहती हूं कि मैं निर्दोष, निर्मल एवं पतिव्रता हूं। आप ऐसा विश्वास करें। हे महाबाहो! आपने मेरी पवित्रता, पितृवंश एवं निर्मल चरित्र का बिना विचार किये मुझे ऐसा कैसे कहा—

मद्धीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ।।

वा० रा० ६।११०।८

मर्माहत एवं दुखी होकर सीता ने अपना प्राण त्याग देने के लिए लक्ष्मण से अग्नि चिता प्रस्तुत करने को कहा कि मैं अग्नि में प्रवेश करके अपना जीवन शेष कर दूंगी।

यथा मे हृदयं नित्यं नाप सर्पति राघवात।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।।
वा. रा. ६।११६।२४

यथा मां शुद्ध चरित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।।
वा. रा. ६।११६।२५

अतः सीता की अग्नि परीक्षा लोक दृष्टि से आवश्यक थी।

कर्मणा मनसा वाचा यथा चराम्यहम्।
राघवं सर्व धर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः।।
वा. रा. ६।११६।२६

चिता की आग के पास जाकर और ब्राह्मणों को प्रणाम करती हुई सीता बोली—अग्निदेव सब लोकों के साक्षी हैं। यदि मेरा मन रामचन्द्र के अतिरिक्त और किसी दूसरे पुरुष पर न गया हो तो आप मेरी सब ओर से रक्षा करें। मैं शुद्ध हूं पर रामचन्द्र मुझे अशुद्ध समझते हैं। यदि मैंने कर्म और बचन से राम को ही चाहा हो तो अग्निदेवता मेरी रक्षा करें। इस प्रकार प्रार्थना कर सीता अग्नि में बैठ गई। उपस्थित जन समुदाय में हाहाकार मच गया। ब्रह्मादि देवतागण वहाँ पर आ गए और जानकी की प्रशंसा करने लगे। लोकसाक्षी अग्निदेव सीता को अपनी गोद में लिए हुए प्रकट हुए। अग्निदेव नें राम से कहा—हे राम! तुम इस निष्कलंक शुद्ध, पुण्यशीला, पतिव्रता जानकी को ग्रहण करो। रावण इनके पतिव्रत धर्म को नष्ट नहीं कर सकता था।

देवगण के आदेश पर राम ने सानन्द सीता को ग्रहण कर लिया। सीता के इस अग्नि परीक्षा से रामायण पाठ करने वालों को अवश्य पीड़ा होती होगी। राम के इस निष्ठुर व्यवहार के प्रति अनेक पाठक अनुचित ही समझेंगे। महाकवि कालीदास को भी यह उचित नहीं जान पड़ा। रघुवंश में उन्होंने इस विषय में ऐसा ही एक स्थान पर संकेत किया है। सीता की अग्नि परीक्षा लोक दृष्टि से आवश्यक थी। बंगला के महाकवि कृत्तिवास ने भी

कुछ संकेत किया है। तुलसीदास ने भी संक्षेप में अग्निपरीक्षा के बारे में वर्णन किया है।

पावक प्रबल देखि वैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही ।।
जो मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुं होउ श्रीखंड समाना ।।

अग्नि परीक्षा में शुद्ध पाकर राम ने सीता को विमान में बैठा कर अयोध्या को प्रत्यागमन किया। अयोध्या जाते समय सीता ने राम से सभी बानर यूथ प्रमुखों का यथा सुग्रीव सहित अयोध्या में चलने के लिए प्रार्थना किया और राम सुग्रीव, हनुमान नल, नील, जामवन्त इत्यादि सहित लंका से अयोध्या आए। अयोध्या में राम सुखपूर्वक राज करने लगे। सीता गर्भवती हुई। राम ने सीता से कहा—हे सीते! तुम्हे पुत्र लाभ होने वाला है। अतएव हे देवी! बोलो, तुम क्या चाहती हो। सीता ने हँसते हुए कहा—हे प्राणेश! इस समय मेरी इच्छा तपोवन देखने को हो रही है।

तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव। वा.रा. ७।४२।३२
गंगा तीरोपविष्टाना मृषीणामुग्रतेजसाम्। वा. रा ७।४२।३३

जो तपस्वी गंगा के किनारे निवास करते हैं—उनके चरणों के दर्शन करने की मेरी इच्छा हो रही है। सीता को बन में भेजने के पूर्व ही राम ने अपनी पत्नी सीता के विरुद्ध अपवाद सुना था। अपवाद के भय से यह जानते हुए कि सीता का चरित्र निष्कलंक शुद्ध है फिर भी उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह सीता को तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ आवें। दूसरे दिन लक्ष्मण सीता को गंगा के किनारे स्थित बाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आए। लक्ष्मण रोते-रोते सीता को ले जा रहे थे। सीता को राम द्वारा अपने परित्याग का विवरण लक्ष्मण से जब मालूम हुआ तो जमीन पर गिर पड़ीं।
सीता ने लक्ष्मण से कहा—

मामिकेयं तनूर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ।। वा. रा. ७।४८।३

हे लक्ष्मण ! जान पड़ता है कि ब्रह्मा ने मेरा शरीर कष्ट भोगने के लिए ही बनाया है।

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः।
याहं शुद्ध समाचारा त्यक्तानृपतिना सती॥ वा.रा. ७.४८.६

न जाने पूर्व जन्म में मैंने किस स्त्री का पति से वियोग कराया था, जिसके बदले महाराज ने मुझ सदाचारणी और पतिव्रता पत्नी को त्याग दिया है।

हे लक्ष्मण ! मैं गर्भवती हूं, नहीं तो प्राण त्याग देती। तुम जाकर महाराज रामचन्द्र से कहना –यदि वह लोकापवाद के भय से हमारा परित्याग किये हैं तो इससे विमुख नहीं होंगे। परन्तु तुम यह देखते जाओ कि मैं गर्भवती हूं। आश्चर्य कि यात्रा के समय सीता ने राम से भेंट नहीं की। यदि राम से भेंट करतीं और अपना दुःख प्रकट करतीं तो हो सकता था राम का विचार बदल जाता। उस समय ऐसा करती तो क्या प्रतिक्रिया होती कहना कठिन है। राम के साथ भेंट न करना भी क्या भाग्य का ही चक्र है ? सीता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगीं। श्रावण माह के प्रथम दिवस मध्य रात्रि में सीता को दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षि वाल्मीकि ने उनका नाम कुश व लव रखा बाल्मीकि ने सम्पूर्ण रामायण बालकों को अल्प काल ही में कंठस्थ करा दिया। राम जब अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे उसी समय कुश-लव रामायण गान करते-करते अयोध्या के राजप्रासाद के सामने पहुंचे। बालकों द्वारा मधुर स्वर में रामायण गान सुनकर राम मुग्ध हो गए और राम को मालूम हुआ कि दोनों बालक उन्हीं के आत्मज हैं। महर्षि वाल्मीकि मैथिली को लेकर अयोध्या आए और राम को विश्वास दिलाते हुए कहा—राम ! जानकी शुद्ध एक पतिव्रत तुम्हारी पत्नी हैं इनको ग्रहण करो। सीता ने कहा !

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥ वा. रा. ७।९७।१५

हे माता पृथ्वी ! एक रामचन्द्र को छोड़कर यदि मैंने किसी अन्य पुरुष की चिन्ता मन से भी कभी न की हो तो माता पृथ्वी

फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। उसी समय माता पृथ्वी सिंहासन लिए हुए पृथ्वी से निकली और जानकी को सिंहासन पर बैठा कर पृथ्वी देवी पृथ्वी में समा गई।

प्रत्यक्ष वानरेन्द्रस्य त्वद्वाक्यसमनन्तरम्।
त्वया सत्यवतया वीरत्यक्त स्याजीवितंमया ॥
न वृथा ते श्रमोऽयंस्यत्संशयेन्यस्य जीवितम्।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥
त्वया तू नर शार्दूल क्रोध मेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥
अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधा तलात्।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहुते न पुरस्कृतम् ॥
न प्रमाणी कृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीड़ितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥
एवं ब्रुवाणा रुदती वाष्पगदगद भाषिणी।
अब्रवील्लक्ष्मणं सीता दीनध्यान पर स्थितम् ॥
चिंता मेकुरु सौमित्रे व्यसन स्यास्य भेषजम्।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥
अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जन संसदि।
या क्षमा मे गतिर्गन्तु प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥
एव मुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा।
अमर्षं वश मापन्नो राघवाननमैक्षत ॥
सविज्ञायत्पतश्छन्दं रामस्याकार सूचितम्।
चितां चकारसौमित्रिर्मतेरामस्य वीर्यवान ॥
अधो मुखं तदा रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम्।
उपासर्पत वैदेही दीप्य मानं हुताशनम् ॥
प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्नि समीपतः ॥

सीता ने राम से कहा—

हे बलशाली! इस वानर द्वारा आपके त्याग की बात सुनते ही मैं इसी के सामने अपने प्राणों को त्याग देती। मेरे मर जाने

पर आपको अपने मित्रों सहित यहाँ आने और प्राण संकट में डालकर राक्षसों से भयंकर युद्ध करने का परिश्रम न करना पड़ता।

हे राजन ! इस समय आप मुझे एक साधारण स्त्री समझते हुये साधारण मनुष्य के समान क्रोध के अधीन हो रहे हैं।

आपने मेरे चरित्र को नहीं समझा है। मैं पृथ्वी से उत्पन्न और जनक की पालिता कन्या हूं, इस बात पर भी विचार आपने नहीं किया।

बाल्यकाल में ही आपने मेरा पाणिग्रहण किया और तभी से मैं आपके साथ रही, इस बात को भी आप भूल गये।

इस तरह रोकर गद्‌गद वाणी में बोलती हुई सीता ने चिन्ता-मग्न और दुःखी हृदय लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र ही मेरे लिये चिता बनाओ। मैं इस तरह निन्दित होकर जीना नहीं चाहती। चिता इस रोग की औषधि हो सकती है।

मेरे स्वामी ने मेरे अवगुणों से अप्रसन्न होकर इस जन समाज में मेरा त्याग कर दिया है। इसलिए अब मैं अग्नि में प्रवेश करके अपने गति को प्राप्त होऊँगी।

सीता के इस बात को सुनकर शत्रुनाशन वीर लक्ष्मग ने बड़े क्रोध से रामचन्द्र की ओर देखा। सीता की मुखाकृति और संकेत से लक्ष्मण समझ गये। उन्होंने शीघ्र ही चिता बना दी। उसके बाद नीचा सिर किये सीता ने बैठे हुये रामचन्द्र की प्रदक्षिणा की और फिर जलती हुई चिता में समा गई।

आग के पास जाकर सीता और ब्राह्मणों को प्रणाम करती हुई बोली—अग्निदेव यदि मैं निष्कलंक शुद्ध हूं तो आप मेरी रक्षा करें। ऐसा कहकर सीता अग्नि में प्रवेश कर गयीं। उस समय सभी देवता रामचन्द्र के पास आये। सीता को शुद्ध लिये अग्निदेव चिता के बाहर निकल आये। अग्निदेव ने रामचन्द्र से कहा—हे रामचन्द्र ! यह निष्पाप सीता तुम्हारी हैं, तुम इनको ग्रहणकरो। सीता को ग्रहण करके रामचन्द्र को बड़ी प्रसन्नता हुई।

हे अग्निदेव मुझे रामचन्द्र दुश्चरित्र समझते हैं, ऐसा कहते हुए सीता निःशंक जलती चिता में कूद पड़ीं।

ददर्श मैथिलीम् तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम् ।
सा तप्तनवहेमाभा तप्त काञ्चन भूषणा ।।
वा. रा. ६।११६।२२

सीता ने लक्ष्मण को फटकारते हुये कहा—

यस्त्वमस्यामव स्थायां भ्रातरं नाभि पत्स्यसे ।
इच्छसित्वं विनश्यन्तं राम लक्ष्मण मत्कृते ।
लोभान्मम कृते नूनं नानु गच्छसि राघवम् ।
व्यसनं ते प्रियं भन्ये स्नेहा भ्रातरि नास्ति ते ।।

हे लक्ष्मण ! जान पड़ता है कि अपने भाई के मित्र बनकर भी तुम उनके शत्रु हो । तभी तो ऐसी दशा में भी तुम दौड़कर उनके पास नहीं पहुंचते । लक्ष्मण तुम चाहते हो कि राम मर जाँय तो सीता को मैं अपनी स्त्री बना लूँ । मुझे पाने के लोभ से ही तुम राम के पास नहीं जा रहे हो । जितनी तुम्हारे मन में दुर्वासना है उतनी भाई पर प्रीति नहीं है ।

पितृगृह में पाणिग्रहण संस्कार होने के पूर्व ज्योतिषी ने कहा था कि अदृष्ट रूप में सीता को अरण्यवास करना होगा और ज्योतिष की गणना विलकुल ठीक निकली । हुआ भी ऐसा ही जिस समय राम सीता को अपने साथ वन में ले जाने के लिए सहमत नहीं हुए थे तो सीता ने राम के प्रति अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहा था—हे नाथ ! आप तेजहीन का पुरुष हैं । साधारण मनुष्य हैं ।

अथवापि महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम् ।
पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे बने ।।
कन्यया च पितुर्गेहे बनवासः श्रुतोमया ।
भिक्षिणयाः साधु वृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः ।।
वा. रा. २।२९।८

सीता ने महाबली रावण को फटकारते हुए कहा था—हे राक्षस ! तुम हमारा भक्षण भले ही कर लो परन्तु मैं तुम्हारी एक बात भी सुनना नहीं चाहती । मैं सची, अरुन्धती, लोपामुद्रा और सावित्री जैसी पति अनुगामिनी हूं । राम के कटु व्यवहार के

विरुद्ध सीता उनके प्रति कई अनर्गल बातें कह गईं। जैसे—उन्होंने कहा था—हे स्वामी! हमारे मन में ऐसा लगता है कि तुम अयोध्या लौटकर जाओगे तो वहाँ अन्य रमणियों के साथ सम्भोग करोगे और सुखमय जीवन व्यतीत करोगे, इसी कारण और उद्देश्य से तुम मुझे रावण के बन्धन से मुक्त कराना नहीं चाहते। सीता की राम के प्रति ऐसा सोचना और सन्देह करना सीता जैसे पतिव्रता पत्नी के लिए शोभनीय नहीं मालूम पड़ता। प्राकृत रूप में कोई भी पति या पत्नी आपद काल में ऐसी बातें कह सकता है जो स्वाभाविक है जैसे यदाकदा आपद परिस्थितियों में मर्यादा पुरुत्तम राम ने भी कैकेयी, भरत, सीता और अपने पिता के विपरीत कहा है। इसके प्रत्युत्तर में सीता ने कहा था—हे प्राण नाथ ऐसी बातें निम्न कोटि के पुरुष निम्न कोटि की स्त्री के विरुद्ध कहते हैं। सीता ने रावण द्वारा अपने अपहरण के समय लक्ष्मण के चरित के प्रति सन्देह किया था और अनेक कटु वाक्य कहे थे। ऐसी अविवेकता के कारण उन्हें रावण हर ले गया और दुर्दान्त दुःख भोगना पड़ा। उसके लिए बाद में सीता ने प्रायश्चित भी किया।

लक्ष्मण जब राम के आदेशानुसार सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ने ले जा रहे थे तो लक्ष्मण ने राम द्वारा उनके परित्याग की कथा सुनायी--तब सीता ने कहा था--हे लक्ष्मण! विधाता ने दुःख भोगने के निमित्त ही हमारी सृष्टि की है, यह हमारे किसी पूर्व जन्म का फल है कि राम ने हमारा परित्याग किया है। सम्भवतः राम द्वारा अपने परित्याग के समय सीता अपने स्वामी राम से नहीं मिली थीं, यदि मिली होती तो राम की व्यथा को अच्छी तरह समझ पाती कि राम ने ऐसा क्यों किया। यह सब होते हुए भी सीता के अन्तर्धान के प्रकरण से यह स्पष्ट रूप से आभास मिलता है कि सीताका आचरण निर्मल और परिस्थितियों के अनुकूल सामयिक स्तुत्य और अतुलनीय है। उनमें सहनशीलता पृथ्वी की तरह है यही उनके चरित का वैशिष्ट्य है। १८ वर्ष की यौवनावस्था में १४ वर्ष बन में सती साध्वी की तरह व्यतीत करने में उन्हें तनिक भी क्लेश का अनुभव नहीं

हुआ। यह उनके सात्विक जीवन की कठोरतम परीक्षा थी। कुछ कार्य सीता के उचित नहीं जान पड़ते जैसे रावण की कपटपूर्ण मिथ्या प्रशंसा सुनना और उसका सत्कार करना प्रयोजनीय नहीं था। विनाश काले विपरीत बुद्धि।

सीता ने एक बार राम द्वारा राक्षसों के बध करने का विरोध किया था और उनसे अनुरोध किया था कि इन निरपराध राक्षसों का निरर्थक क्यों वध कर रहे हैं। राम ने प्रत्युत्तर में कहा - भद्रे ! यह कार्य तो मुझे बहुत आगे ही कर डालना था। अब भरी सभा में मुनियों के समक्ष हाथ उठाकर राक्षस वंश का समूल नष्ट कर देने की प्रतिज्ञा करके ऐसा न करूं तो मुझसे निकृष्ट और कौन हो सकता है।

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।
जानत हूं पूछिअ कस स्वामी। सम दरसी तुम अंतरजामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए।।

दोहा—निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह।।

सीता गुणावली—

दोहा—भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में।
सिन्धु पार वह विलख रहो है व्याकुल मन में।।

विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी।।
रंग भूमि जब सिय पगुधारी। देख रूप मोहे नर नारी।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहु। सो तेहि मिलहि न कछु संदेहु।।

मूल प्रकृति रूपत्वासा सीता प्रकृतिः स्मृता।
राम एव परं सत्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्।।

अनुसूया के पदगहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।
प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकी बाम अंग जनु देही।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।

Sita is the embadiment of mother nature and Rama the Symbol of the Supremespirit guiding the world towards peretien.

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रियश्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेउ अधम नारि जग सोई ॥
पति वंचक पर पति रति करई। रौरव अश्व कल्प सत परई ॥

राम हों कि रावन हों, बलि चाहे बावन हों,
यश अपयश शेष दुनियाँ में रहेंगे।
जब जब चर्चा चलेगी रघुनाथ जी की,
सीय तेरी! महिमा में तृण सम बहेंगे ॥

आगे-आगे राम सदा, पीछे-पीछे सीय चली,
किन्तु अब सीय आगे राम पीछे रहेंगे।
राम-सीता राम-सीता कोई न कहेगा,
लोग सीताराम! सीताराम!! सीताराम!!! कहेंगे ॥

सूरज के नाम पर बंश के गुमान वाले,
समय कहेगा कौन खोटा कौन है खरा।
सारी राजनीति एक दासी थी पलट गयी,
खानदान खूब पहचानती थी मंथरा ॥

बाप ने तो पूत को दिया था बनवास पर,
पूत ने तो एक पग और आगे है धरा।
राम ने कलंकहीन नारी को निकालने की,
रबि वंश में चलायी है नई परम्परा ॥

राम लड़े नहीं रावण के संग, सीय वियोग विलाप लड़ा था।
राम के संग में थे वरदान, दशानन लेकर शाप लड़ा था ॥
है भ्रम किन्तु कि राम के बाण, अमोघ तथा दृढ़ चाप लड़ा था।
सत्य उजागर हो न सका कि, पतिव्रता का सुप्रताप लड़ा था ॥

सीता सुरसरि सी पवित्र है, मुझे न किंचित शंका।
पर यह भी तो सत्य, जानकी कभी गई थी लंका।
आने वाला समय करेगा, माँ! सीता की पूजा।
सीता के लाभार्थं, न कोई अब उपाय है दूजा।
रजक नहीं, वह रावण का ही प्रेत अवध आया था।
जिसने तुमको एक बार, फिर रघुपति भरमाया था।
सीता का चरित्र इस जग की, पुण्यमयी गीता है।
इस त्रिलोक ने वहाँ वहाँ मैं, जहाँ जहाँ सीता है।
नभ का था संकेत, यवनिका भू पर गिरी महान।
रहा गूँजता लीला-गृह में, सीता का यश गान।
नर नारायण में न भेद कुछ कर्म·एक व्यवधान।
जो था दशरथ पुत्र अवध में, वह मेरा भगवान।

गंगा यमुना हार मुकुट तुहिनाचल, कांची, गिरि विन्ध्याचल।
सागर प्रक्षालत चरणों को कृष्णा कावेरी मृदु पायल।
उस विराट भारत जननी की नारी सप्रतीक जिसमें सब।
दर्शित राष्ट्र व्यक्ति, संस्कृति, श्रुति कला भारती प्रकृति सावयव।
नारी के साहस के आगे धैर्य तजा मर्दानी ने।
अमृत पिलाया युग मानव को नारी के बलिदानों ने।
गूँज रही उसकी जयगाथा सत्र इतिहास पुराणो में।
मुखरित हो उसका स्वरूप शुभ युग के नये तरानों में

नारी ही सम्पूर्ण राष्ट्र है धर्म, कर्म, संस्कृति युग चेता।
जन्म सिद्ध जन को समाज की देश जाति मानव की नेता।
प्राण दान कर भी न चुका सकते ऋण हम उस उपकारी का।
अब अपना अभिमान नष्ट हो रक्षित स्वाभिमान नारी का।
ब्रह्मानन्दास्वादन जन को दे सकते हरि,
और बधू दे सकती उसका सहज सहोदर।
आत्मलीन नर हुआ एक टक निरख बधू मुख,
एक स्तर पर दीख पड़े नारी अरु ईश्वर।।

सब में नर नारी दोनों है शक्तिमान और शक्ति अनूपा,
एक सत्य के उभय तत्व दो एक सत्व कृत मनु शतरूपा।

कौन बड़ा छोटा है इनमें दोनों हलके दोनों भारी,
नारी के मन में ऊँचा नर नर के मन में ऊँची नारी।
देवि ! तुम्हारे ही आश्रय में, निजादर्श कैवल्य पला है।
प्राणो को कर्त्तव्य, अभ्युदय, जीवन को संघर्ष मिला है।।
दिव्य पुष्प नारी, नर, बालक, सर्व सुधन, उपकरण।
देव प्रकृति के सहमत-सम्मत मर्यादित सब स्वजन।।
नवादर्श - उत्कर्श - हर्षमय सात्विक वातावरण।
हो गृहस्थ निज सफल, बधू तुम स्वर्ग करो निज सदन।।

ये विश्वे जत फूटिया छे फूल, फलिया छे यतफल,
नारी दिल तोह रूप - रस - मधु - गन्ध सूनिर्मल।
ताजमहले पाथर देखे छ, देखिया छ तार प्रान,
अन्तरे तार मोमताज नारी, बाहिरे ते शा-जहान।
पुरुष एने छ दिवसेर ज्वाला तप्त रौद्रदाह,
कामिनी एने छ यामिनी-शान्ति, समीरन, वारिवाह।
जगतेर जब बड़ बड़ जय, बड़ बड़ अभियान,
माता भग्नीओं बधुदेर त्यागे होंइया छे मन्नीयान्।
कौन रने कतो खून दिल नर लेखा आछे इतिहासे,
कत नारी दिल सिंधिर सिंधुर लेखा नाई तारपासें।
प्रेरना दिया छे शक्ति दिया छे विजयलक्ष्मी नारी,
लव कुशो बने त्याजिया छे राम, पालन करे छे सीता।
नारी से सिखाल शिशु पुरुसेर स्नेह प्रेम दया माया,

सीता की पवित्रता पर महाकवि भवभूति लिखते हैं—

उत्पत्ति- परि पूतायाः किमस्याः पापनान्तरेः।
तीर्थोदकञ्च वह्निश्चनान्यतः शुद्धि महंतः।।

जो सीता स्वतः पवित्र शुद्ध हैं उन्हें पवित्र करने वाले अन्य पदार्थों की क्या आवश्यकता थी।

अरे राम ! ओ अंतरयामी, तू तो अवतारी है।
अखिल लोक-जीवन-धारी को, सीता क्यों भारी है।।
प्रजा न दे यदि साथ, भूप, तो तज दे सिंहासन को।
हम सब सीता सहित चलेंगे, फिर से उस कानन को।।

तू न्यायी है, धर्मी है, पर दुख-कातर शैशव से।
फिर भी क्यों निष्कासितहो, सुख सनेह के भय से।।
सीते! सीते! दुखी राम का, हृदय आज रोता है।
कंचन मृग के बिना, सिया का हरण हाय होता है।।

दमन करूँ तो निश्चय ही, यह नीति भयंकर होगी।
रघुकुल की यह रीति, विश्व में फिर क्षण भंगुर होगी।।
नारायण भी भरता है, जिस गोदी में किलकारी।
वह नरता है धन्य बना दे जो सुत को अवतारी।।
सीता का अधिकार, छीन ले आज राजपद मुझसे।
किंतु प्रजा के सम्मुख हम दोनों ही सदा विवश थे।।
जो दिखता परित्याग, वही तो सीता का लय मुझमें।
क्षुद्र मोह ग्रस ले न सुयश को, एक यही भय मुझमें।।
जनता का है प्रश्न राम से, प्रजा साथ या सीता।
तुम्हीं बता दो, माँ ऐसा दुख, कभी किसी पर बीता।।

उर्मिला

मिथिला नरेश जनक सीरध्वज की दो कन्यायें थीं, यथा सीता और उर्मिला। राम विवाह के समय राजर्षि जनक सीरध्वज ने अपनी दूसरी कन्या का विवाह सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण से किया। उसी प्रकार राजा जनक सीरध्वज के कनिष्ठ भ्राता कुशध्वज की दो कन्याओं यथा माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से हुआ था। रामायण महाकाव्य में बहुधा सभी प्रमुख पात्र पत्रियों की यथा प्रसंग पुनरावृत्ति हुई है परन्तु उर्मिला की कवि ने नितान्त उपेक्षा की है और किंचित एकाक प्रसंग को छोड़कर उर्मिला का नाम या वर्णन सम्पूर्ण काव्य में नहीं मिलता।

अयोध्या नरेश महाराज दशरथ की चारो पुत्र बधुएँ यथा सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति से विवाह के बाद जनक-

पुर से अयोध्या के राजप्रासाद में यद्यपि एक साथ ही प्रवेश किया परन्तु उनके ललाट में विधि की निर्मित रेखाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। इसीलिए कवि ने विधि के विधान को सत्य प्रमाणित करने के हेतु सीता के अतिरिक्त किसी अन्य बधू की तरफ ध्यान नहीं दिया और वे सदा के लिए बाल्मीकि मुनि तथा प्रायः परवर्ती सभी काव्य प्रणेताओं के लिए चिर उपेक्षित बनी रहीं। किसी की लेखनी ने सीता के अतिरिक्त अन्य तीन बधुओं के प्रति तनिक भी अपनी लेखनी द्वारा सहानुभूति अथवा दया का भाव प्रकट करने का नहीं सोचा और न तो किसी काव्य ग्रन्थ या साहित्य में उनके जीवनवृत्त का कहीं विराट वर्णन हुआ है। सीता के दिव्य चरित्र एवं पतिव्रत आचरण का उल्लेख आदि कवि बाल्मीकि ने आदि से अन्त तक अनेक प्रसंगों में यथा समय और स्थान बर्णन किया है। परन्तु अन्य तीन बधुओं का जीवन १४ वर्ष राम बनवास की अवधि में अयोध्या के राजप्रासाद में किस प्रकार व्यतीत हुआ इस पर वह भी मौन रह गये।

राम बनवास की आज्ञा सुनकर लक्ष्मण क्रोधान्ध हो गए। उनका आत्म संयम भंग हो गया। अपनी मर्यादा का उल्लंघन करके क्रोध के वशीभूत उन्होंने अपने पूज्य पिता दशरथ के प्रति जिस प्रकार का कठोर और अशिष्ट आचरण का प्रदर्शन किया है वह उनके जैसे आदर्श आज्ञाकारी पुत्र के लिए स्तुत्य अथवा शोभनीय नहीं कहा जा सकता। उन्होंने यहाँ तक कह डाला—महाराज दशरथ ने क.म के वशीभूत होकर राम जैसे आज्ञाकारी पुत्र को बनवास की आज्ञा दी और भरत को राज्याधिकारी बनाया। यह सम्पूर्ण अन्याय है और ऐसा हम कदापि नहीं होने देगें। यदि ऐसा हुआ तो हम महाराज दशरथ का बध कर डालेंगे या उन्हें बन्दी बना लेंगे। यदि भरत ने इसका विरोध किया तो उनका भी बध कर डालेंगे। क्रोध से लक्ष्मण का शरीर काँपने लगा। यह दृष्य देखकर उर्मिला भय से काँपने लगी। वह सीधे सुमित्रा के पास गई और कहने लगीं—हे माता! आप अपनी संतान को शान्त करें। ऐसा लगता है कि कहीं अनर्थ न हो जाय। अन्त में राम ने लक्ष्मण को शान्त किया। उर्मिला का हृदय काँप उठा

और कहने लगी कि भरत के आने पर राज्याधिकार के प्रश्न को लेकर विवाद और वैमनस्य होने की पूरी आशंका है। क्योंकि लक्ष्मण का ऐसा अनुमान था कि इन सभी कुचक्रों के मूल भरत ही हैं। अंत में राम के समझाने से लक्ष्मण शान्त हो गए। अन्तोगत्वा सीता और लक्ष्मण ने राम के साथ बनगमन हेतु प्रस्थान कर दिया। बनगमन का हृदय विदारक दृश्य देखकर सभी प्रजा, नर नारी विह्वल हो उठे। बन जाते समय सभी राम और सीता को मुनि वस्त्र पहने देखकर रोने और राजा दशरथ को धिक्कारने लगे –

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्या मनाथवत।
प्रचुक्रोश जनः सर्वोधिक्त्वां दशरथं त्विति॥

यह अति विषाद और दुख की बात है कि सभी ने राम और सीता के लिये घोर असंतोष और दुख प्रकट किया परन्तु उन्हीं के साथ बनगमन करते हुए किसी ने न तो लक्ष्मण के प्रति सहानुभूति दिखाई और न नव वधु उर्मिला के लिए किसी ने कुछ दुख प्रकट किया और न किसी के नेत्र से आँसू का एक बूँद ही गिराया कि आपापतः १४ वर्ष के दीर्घ कालीन बनवास की अवधि में लक्ष्मण के वियोग में प्राणेश्वरी उर्मिला के जीवन का निर्वाह कैसे होगा। किसी ने करुणा की दृष्टि से भी उर्मिला की तरफ नहीं देखा सीता और लक्ष्मण के तो राम अनन्य इष्ट और आराध्य थे। उनका त्याग राम के प्रति स्वाभाविक था परन्तु उर्मिला के लिए साधारणतः स्वाभाविक नहीं था और न कोई ऐसा आभार था कि उन्होंने अपने प्राणपति परम प्रिय चिरआराध्य देव तुल्य स्वामी को राम की सेवा हेतु अर्पण कर दिया। इसके प्रतिफल उर्मिला को क्या लाभ हुआ ? १४ वर्ष तक पति वियोग का कठोर दारूण विरह। उनको तो मिली केवल गिरे हुए पर्दलित प्रसून के सुरभि की भाँति हृदय में रखने के लिए प्राप्त विमूर्त चिन्ता और स्मृति। यही उनके महत् त्याग और बलिदान का दयनीय उपहार। उन्हें इस स्मृति और आशा को दीर्घकाल तक अपने अन्तःपुर में जीवित रखना पड़ा। अपनी विरह वेदना को अपने ही हृदय में दबाकर उर्मिला को जीवन के १४ वर्ष कातरमन अयोध्यापुरी के राज-

प्रासाद की चहारदिवारी के भीतर ही भीतर मूक बन्दी पक्षी की भाँति व्यतीत करना पड़ा। किसी किसी ने उर्मिला को अपने स्वामी लक्ष्मण के साथ बन में जाने का परामर्श भी दिया था। उन्होंने उर्मिला को सान्त्वना देते हुए समझाया था—नारियों को पति की सहगामिनी रहकर जीवन व्यतीत करना ही परम धर्म और कर्त्तव्य है। किन्तु इसके विपरीत उर्मिला ने क्या उत्तर दिया ? उर्मिला ने अतिगर्व, साहस, दृढ़ता और प्रसन्न चित्त से कहा—हे शुभेच्छु ! आपका कहना यथार्थ है, परन्तु मेरे स्वामी एक महान उद्देश्य हेतु बनगमन कर रहे हैं। बन जीवन की अवधि में संकल्प सिद्धि के लिए उन्हें बन में तापस भेष में कठोर ब्रह्मचर्य, तपस्या एवं व्रत का पालन करने की अनिवार्य आवश्यकता है तभी उनका अभीष्ट लक्ष्य सिद्ध होगा। अतः बहुत संभव है कि यदि मैं उनके साथ बन को गई तो उनके तप और ब्रह्मचर्य जीवन पालन करने में व्यवधान उपस्थित हो सकता है और व्रत भंग होने की संभावना है और उनकी उद्देश्य पूर्ति भी न हो सके। सुतरां मैं लक्ष्मण के साथ बन में जाने का आग्रह या हठ कदापि नहीं करूँगी। उनके साथ रहने से उपकार की अपेक्षा अपकार ही होने की अधिक सम्भावना है। अतः मैं इस हेतु उनसे अलग विलग ही दूर रहकर अपना और उनका अभीष्ट समझती हूं और ऐसा ही मैं करूँगी। इससे यही उत्तम है कि मैं यहीं रहकर उनकी शुभ-कामना की तन मन धन से प्रार्थना करती रहूं। इसी प्रतीक्षा में मैं उनके वापस आने तक बैठी रहूंगी।

इसके उपरान्त उन्होंने और कुछ न कहा और मौन धारण कर सजल नेत्र अपने शयनागार में जाकर कपाट बन्द कर दिया। वहाँ सिसकते और आहें भरती हुई नेत्रों से अश्रुधारा बहाने लगी जैसे अपने विरह व्यथा का विसर्जन कर रही हो पर उनके हृदय में जो वेदना चुभ रही थी भावी विधान ने उसको भी सहा न कर सका। उसी क्षण लक्ष्मण उनके समक्ष आकर उपस्थित हो गए। ऐसा प्रतीत होता है उस क्षण लक्ष्मण के वहाँ जाने का उद्देश्य केवल मात्र उर्मिला से अंतिम विदाई लेने का ही था। किन्तु वह विरह युक्त कातर मिलाप कितना मधुर एवं त्यागमय था जिसकी

कल्पना भी नहीं की जा सकती लक्ष्मण के बनगमन का समाचार सुनकर तनिक भी उर्मिला को क्लेश या चिन्ता नहीं हुई। प्रत्युत उन्होंने प्रफुल्ल मन और प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण प्रिय स्वामी लक्ष्मण को सहर्ष विदा कर दिया। उर्मिला के विशाल हृदय और त्याग की निःस्सीम भावना को देखकर लक्ष्मण अवाक आश्चर्य चकित रह गए। अपने प्राणेश्वर स्वामी को मूल और निस्तब्ध देखकर उर्मिला ने ही प्रथम अपना मुख खोला और कहा—हे नाथ! मैं आपका अभिप्राय समझती हूं। मैं भी यही चाहती हूं कि आप सहर्ष राम के साथ बन जाइये। जाइये जाइये। आपके जाने से सबका कल्याण होगा। मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी। कारण आपके साथ रहने से आपके कठोर व्रत एवं पावन संकल्प सिद्धि में वाधा पड़ेगी। इतना कहते-कहते उर्मिला के नेत्र द्वय आसुओं से भर गए। उर्मिला आँसू पोंछकर कहने लगीं—आज हमारा जीवन धन्य और परम सुखी है कि मुझे आप जैसा परम आदर्श-वादी कर्तव्य परायण स्वामी प्राप्त हुआ है। यह कहकर उर्मिला ने अपना मुख विपरीत दिशा में मोड़ लिया। सहसा लक्ष्मण ने उर्मिला को सम्वोधित करते हुए कहा—हे देवि, सुनो! इतना सुनते ही उर्मिला चौंक पड़ीं और सहमते हुए लक्ष्मण के पास आकर खड़ी हो गई। फिर लक्ष्मण ने कहा—मुझे केवल तुम्हारो चिन्ता है। एक कर्तव्य और संकल्प पालन हेतु दूसरे कतव्य की उपेक्षा कर रहा हूं। मैं अनेक वर्षों के लिए तुमसे विलग होकर अत्यन्त दूरस्थ अरण्यक वन में जा रहा हूं और सम्भवतः तुम पूरा विवरण सुनकर दुखी भी हो सकती हो। तुम्हारे बिना सहमति एवं परामर्श के मैंने जो यह संकल्प किया है यह तुम्हारे प्रति अन्याय जान पड़ता है। उर्मिला ने पूरा विवरण सुनने के उपरान्त कहा—आर्य! आपने कुछ भी अनुचित नहीं किया है। आपने जो पावन संकल्प और व्रत ग्रहण किया है वह सम्पूर्णरूपेण आर्योचित है और किसी भी आर्य सन्तान के लिए परम गरिमामय और गौरव तथा सौभाग्य की वात है। जाइये! यदि आप मुझसे सम्मति लेते तो मैं सहर्ष यही कहती। जाइये, जाइये। मुझे लेशमात्र भी इससे कष्ट या चिन्ता नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप

अपने शुद्ध संकल्प और पावन व्रत को सफल मनोरथ सिद्ध करके यथा समय निश्चय निर्धारित अवधि के भीतर अयोध्या वापस आयेंगे।

लक्ष्मण ने उर्मिला के आन्तरिक त्यागमय संकल्प को सुनकर उन्हें हृदय से लगा लिया। उर्मिला अबोध बालिका की भाँति फूट-फूट कर रोने लगी। किसी प्रकार आसुओं को पोंछ उर्मिला ने कहा—आप जाइये! "दूर रहकर भी आप सदा हमारे अन्तःपुर में रहें।" इसी प्रकार स्वामी के शुभ कामना का व्रत पालन करते हुए उर्मिला ने १४ वर्ष व्यतीत किया। तदुपरान्त दशरथ की मृत्यु एवं भरत के अपने ननिहाल से अयोध्या वापस आने पर जो-जो दुःखद तथा अप्रिय घटनाएँ घटीं उससे यद्यपि यदा कदा उर्मिला का कोमल हृदय काँप उठता था परन्तु उन्होंने अपने धैर्य और साहस को नहीं छोड़ा। केवल एक बार वह धर्म संकट में पड़ गईं। जिस दिन भरत ने उन्हें सब माताओं बन्धु बान्धवों एवं परिवार तथा आत्मीयजनों के साथ राम को मनाकर वन से वापस लाने के लिए राम के पास जाने को कहा। उस समय उर्मिला दुविधा में पड़ गई कि उनका जाना उचित है या नहीं। सोचने लगीं कि राम को वापस लाना सहज काम नहीं है। क्योंकि वे दृढ़व्रती हैं और जो संकल्प किया है उससे कदापि विमुख नहीं होंगे। अतः बन में उनके यहाँ जाने से कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता। इस नाजुक परिस्थिति में लक्ष्मण का दर्शन न करना ही मेरे लिये अधिक अभीष्ट होगा। पुनः वह सोचने लगीं कि इतने स्वजनों, मंत्रियों, प्रजागण और पुरवासियों के अनुरोध को राम हठात ठुकरा भी कैसे सकते हैं? उन्हें वापस आना ही होगा। उर्मिला के मन में आशा और निराशा का द्वन्द होने लगा। अन्त में उन्हें बाध्य होकर राम को मनाने सबके साथ जाना ही पड़ा। अफसोस! वहाँ पहुंचने पर राम, लक्ष्मण और सीता ने सभी माताओं को प्रणाम किया, सबसे क्षेम कुशल पूछा, परन्तु उर्मिला के विषय में किसी ने भी जिज्ञासा नहीं की। यहाँ तक कि प्राण प्रिय लक्ष्मण ने भी एक शब्द उनसे नहीं कहा। फिर भी उर्मिला ने असन्तोष नहीं प्रकट किया। उनके जीवन का यह तपोमय त्याग

और व्रत की पराकाष्ठा है। रावण बध और लंका विजय के पश्चात राम, सीता और लक्ष्मण अपने सहयोगियों के साथ जब अयोध्या वापस आए तो लक्ष्मण सीधे उर्मिला के शयनागार में गए। वे उन्हें खिन्नमना भूमि पर लेटे हुए के समान देखा। सहसा उर्मिला की नींद खुल गई। सामने क्या देखती हैं कि उनके स्वामी लक्ष्मण सन्मुख खड़े हैं। उर्मिला का हृदय गर्व और उल्लास से भर आया। एक शब्द भी न बोल सकीं। लक्ष्मण उनके हृदय के भाव को समझ गए। उन्होंने कहा—तुम्हारा व्रत सफल हुआ। उठो! किन्तु उर्मिला फिर भी कुछ न बोलीं। उनके नेत्रों से प्रेम की अश्रु धारा बहने लगी। उर्मिला का नाम सार्थक हो गया। उर्मिला को सम्पूर्ण रामायण एवं भारतीय वाङ्मय में जितनी उपेक्षा हुई है उसके विषय में विश्व कवि रवीन्द्र नाथ वर्णन करते हैं—

कवि ने अपनी कल्पना के कमंडलु का सारा करुण जल जानकी के पवित्र अभिषेक में ही खर्च कर डाला है। किन्तु वह सीता की छाया में घूंघट काढ़े मलिन मुखी इस लोक के सब सुखों से वंचित एक ओर राज वधु खड़ी है उसके चिर दुख संतप्त मस्तक पर कवि के कमण्डल से एक बूंद भी अभिषेक का जल नहीं पड़ा। हाय, चुपचाप वेदना सहने वाली देवी उर्मिला, तुम प्रभात काल के शुक्र तारा के समान महाकाव्य सुमेरु पर एक ही बार दिखाई पड़ी उसके बाद अरुण के प्रकाश में तुम्हा रा दर्शन फिर नहीं हुआ। लोग यह पूछने को भी भूल गए कि तुम्हारे उदय और अस्त का स्थान कहाँ है। काव्य जगत में ऐसी एक दो स्त्रियाँ हैं जो कवि के द्वारा पूर्ण रूप से उपेक्षित होने पर भी अमर लोक से भ्रष्ट नहीं हुईं। पक्षपात कृपण काव्य ने उनके लिए स्थान संकोच किया है। इसी कारण पाठकों का हृदय आगे बढ़कर उनको आसन देने को तैयार हो जाता है।

कवियों की छोड़ी हुई इन रमणियों में किसको कौन अपने हृदय में स्थान देगा, यह बात पाठकों की प्रकृति और रुचि पर निर्भर है। मैं कह सकता हूं कि संस्कृत साहित्य में काव्य यज्ञशाला की प्रान्त भूमि में जिन उपेक्षिता स्त्रियों से मेरा परिचय हुआ है उनमें उर्मिला को ही मैं प्रधान समझता हूं।

शायद इसका एक कारण यह भी है कि उर्मिला का यह नाम वहुत ही मधुर है। इस नाम के समान मधुर नाम संस्कृत के काव्यों में और नही है। मैं उन लोगों में नहीं हूं जो नाम को केवल नाम ही समझते हैं। युरोप के महाकवि शेक्सपीयर ने कहा है गुलाब को चाहे किसी नाम से पुकारो, परन्तु उसका माधुर्य सौन्दर्य घट नहीं सकता, गुलाब के सम्बन्ध में यह बात ठीक भी हो सकती है क्योकि उसका माधुर्य एक छोटो सी सीमा के भीतर बँधा हुआ है। वह केवल कुछ एक प्रत्येक गुणों के ऊपर निर्भर है, किन्तु मनुष्य का माधुर्य उस तरह सब अंशों में प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर नहीं होता। उसमें अनेक सूक्ष्म सुकुमार भावों का समावेश होने से एक प्रकार से अनिर्वचनीय होती है। उसे हम केवल इन्द्रियों के द्वारा नहीं पा सकते। कल्पना के द्वारा उसकी सृष्टि करते हैं। नाम उस काम में सहायता करता है। थोड़ा विचार करने से हीं यह बात समझ में आ जायगो। द्रौपदी का नाम यदि उर्मिला होता तो उस पाँच वीर पतियों का अभिमान रखने वालो क्षत्रवधू की दीप्त तेज इस कारण कोमल नाम के द्वारा पग-पग पर अखरता। अतएव यह नाम रखने के लिए कम से कम बालमीकि मुनि का कृतज्ञ हूं। कवि गुरु ने उर्मिला के साथ वहुत अन्याय किया है। किन्तु विशेष सौभाग्य की बात है कि दैव संयोग से उन्होंने उर्मिला का नाम माण्डवी या श्रुतकीर्ति नहीं रक्खा। माण्डवी और श्रुतकीर्ति के विषय में हम लोग कुछ नहीं जानते। जानने की इच्छा भी किसी को नहीं है।

उर्मिला को हमने मिथिलापुरी की विवाह सभा में वधू वेश में देखा है। तदनन्तर जब से रघुराज वंश के विशाल अन्तःपुर में उन्होंने प्रवेश किया तब से फिर एक बार भी उनके दर्शन नहीं हुए। वही उनके वैवाहिक बधू बेश का चित्र हृदय में अंकित रह गया। उर्मिला सदा बहू और चुपचाप जान पड़ती है। भवभूति के उत्तर रामचरित में भी उनका वही चित्र थोड़ी देर के लिए प्रकाशित हुआ है। सीता ने केवल एक बार स्नेह पूर्वक उस चित्र पर ऊँगली रखकर अपने देवर लक्ष्मण से पूछा वत्स! यह कौन है? लक्ष्मण ने लजीली मुस्कान के साथ अपने मन में कहा—आर्या

उर्मिला के बारे में पूछ रही है ? यह कह कर उन्होंने उसी समय लज्जा से उस चित्र को छिपा दिया। इसके अनन्तर राम के अनेक विचित्र सुखदुख के चित्रों में फिर एक बार भी किसी ने कौतुहल वश भी उँगली इस चित्र पर नहीं रक्खा। कैसे रक्खे,वह तो केवल वधू उर्मिला है। उर्मिला ने पहले पहल जिस दिन माँग में सिन्दूर लगाया था, उसी दिन के समान वह सदा ही नव वधू है। किन्तु जिस दिन राम के मंगलाभिषेक की तैयारी में अन्तःपुर की स्त्रियाँ व्यग्र थी उस दिन यह नव वधू भी क्या अन्य रघुकुल की लक्ष्मियों को साथ लेकर तपस्वी के भेष में बन गये थे। क्या उस दिन भी यह नव वधू राज भवन के किसी एकान्त कमरे में डण्ठल से गिरी हुई कली के समान मूर्छित नहीं हुई थी ? उस दिन के उस विश्व व्यापी विलाप में इस फट रहे छोटे से कोमल हृदय का असह्य शोक क्या किसी ने देखा था ? जिस ऋषि का हृदय विरहिणी क्रौंच वधू के वैधव्य के दुख को पल भर भी न सह सका उन्होंने भी आँख उठाकर एक बार इस दुखिया की ओर नहीं देखा।

वीर लक्ष्मण ने राम के लिये सब तरह का स्वार्थ त्याग दिखाया है। भारतवासी आज भी इस बात को बड़े गौरव और गर्व के साथ स्मरण करते हैं। परन्तु सीता के लिये उर्मिला ने जो त्याग किया वह और भी उज्वल है। वह आत्मत्याग केवल संसार में ही नहीं हैं किन्तु काव्य में भी है। लक्ष्मण ने अपने देवता के लिये केवल अपने को अर्पण किया है, किन्तु उर्मिला ने अपने से भी अधिक अपने स्वामी को भी दे डाला है। परन्तु यह बात काव्य में नहीं लिखी गई। बेचारी उर्मिला सीता की अश्रुधारा के साथ एक दम बह गई। लक्ष्मण बारह चौदह वर्ष अपने उपास्य प्रिय भाई और भौजाई के प्रिय कार्य में लगे रहे। परन्तु उर्मिला के वे वर्ष जो नारी जीवन के बड़े मूल्यवान दिन हैं, कैसे बीते ? उर्मिला जिस दिन लज्जा युक्त नव प्रेम से पूर्ण हृदय कली को लेकर पहले ही पहल स्वामी के चरणों में उपस्थित होने वाली थी उसी दिन उसके स्वामी लक्ष्मण ने अपने आराध्य देव की आराधना करने के लिये सीता देवी के चरणों पर नम्र दृष्टि रखकर प्रस्थान किया। जब वे वन से लौटे तब क्या उस नव वधू के प्रेम प्रकाश से शून्य

हृदय में वह नवीनता थी ? सीता और उर्मिला के दुखों की कोई तुलना न कर बैठे, इसी भय से क्या महाकवि ने सीता के सुवर्ण मंदिर से इस शोक से उज्ज्वल दुखिया को एक दम निकाल बाहर किया है ? सीता के चरण के पास भी बैठाने का उन्हें साहस नहीं हुआ ?

अरुण पट पहने हुए आह्लाद में। कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में।
प्रकट मूर्त्तिमती ऊषा तो नहीं?कान्ति की किरणे उजाला कर रही।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई। आप विधिके हाथसे ढालीगई।
कनक लतिका भी कमल सी कोमला। धन्य है उस कल्प शिल्पीको।
जान पड़ते देख नेत्र बड़े बड़े। हीरकों में गोल कुण्डल हैं जड़े।
पद्म रागों से अधर मानों बने। मोतियों से दांत निर्मित हैं बने।
और इसका हृदय है किससे बना।यह हृदय ही है कि जिससे हैबना।
शाणपर सब अंग मानों चढ़चुके।प्राण फिर इनमें पड़े जब गढ़ चुके।
झलकता आता अभी तारुण्य है। आ गुराई से मिली आरुण्य है।
नील कुंडलमंडलाकृत गोल हैं। घन पटल से केश कान्त कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी दमकती है दामिनी सी द्युतिभरी।
है करों में भूरि भूरि भलाइयाँ। लचक जाती अन्यथा न कलाइयाँ।
चूड़ियों वे अर्थ है जो मणिमयी। अंगकी ही कान्ति कुन्दन बनगयी।
एक और विशाल दर्पण है लगा।पार्श्व से प्रतिबिम्ब उसमें है जगा।
मंदिर कौन यह देवी भला। किस कृति के अर्थ है उसकी कला।
कि यह सुमन धरती पर खिला। उचित ही है नाम इसकाउर्मिला।
सौन्ध्र सिंह द्वारपर अब भी वही। बांसुरी रस रागिनीमें बज रही।
अनुकरण करता उसीका कीर है। पंजरिस्था जो सुरम्य शरीर है।
उर्मिला ने कीर सम्मुख दृष्टि की।या वहाँ दो खंजनों की सृष्टि की।
मौनहोकर कीर तब विस्मित हुआ।सोचता वह रहगया सास्थितहुआ
प्रेमसे उस प्रेयसी ने तब कहा। रे सुभाषी बोल क्यों चुप हो रहा ?
पार्श्व से सौमित्र आ पहुंचे तभी। और बोले लो बता दूं मैं अभी।
नाकका मोती अधरकी कांति से।बीज दाड़िमका समझकर भ्रान्तिसे।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है।सोचता है अन्य शुक यह कौन है ?
तदपि तुम यह कीर क्या कहनेचला।कह अरे क्या चाहिएतुमको भला?
जनकपुर की राज कुंज बिहारिका।एक सुकुमारी सलोनी सारिका।

तोड़ना होगा धनुष उसके लिये। तोड़ डाला है उसे प्रभु ने प्रिये।
सुतनु टूटे का भला क्या तोड़ना। कीरका है काम डाड़िम फोड़ना।

लूँगी क्या तुमको रोकर ही ?
मेरे नाथ ! रहे तुम नर से नारायण होकर ही।
उस समाधि बल की वलिहारी अच्छी मैं नारी।
पूजा तो कर सकूँ तुम्हारी, धूलूँ चरण धोकर ही।
लूँगी क्या तुमको रोकर ही।

माण्डवी

रामायण कालीन या परवर्ती युग से आज पर्यन्त भारत में जितनी उपेक्षा नारियों की हुई है शायद ही इतनी अवहेलना किसी अन्य देश में हुई हो। रामायण के नारी पात्रियों में वाल्मीकि ने अपने काव्य की सम्पूर्ण प्रतिभा सीता के ही चरित्र प्रशंसा में उड़ेल दिया पर राजकुमार भरत पत्नी माण्डवी जिस दिन से जनकपुर के राजमहल से वधू बनकर अयोध्या के राजप्रासाद में आइ वह चिर काल जीवन पर्यन्त नव वधू की वधू ही रह गई। आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक रामायण कालीन सीता तथा अन्य कई नारियों के उज्ज्वल चरित्र एवं जीवन वृत्त का विशद या सक्षेप में वर्णन करने में उनकी लेखनी को संकोच नहीं हुआ परन्तु नहीं घूँघट काढ़े बैठीं हुई नव वधू माण्डवी के चरित्र वर्णन करने में किसी ने प्रयास नहीं किया।

किसी देश की सभ्यता, संस्कृति एवं प्रगति का मूल्यांकन वहाँ के नारी वर्ग की स्थिति एवं सामाजिक आचरण को देखकर ही उनका मूल्यांकन किया जाता है और समाज की रचना, नवनिर्माण और जागृति का कुछ न कुछ ऊत्तरदायित्व नारियों पर भी निर्भर करता है। ऋग्वेदिक युग से महाभारत काल तक समाज में नारियों को काफी प्रतिष्ठा थी।

यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

जहाँ पर नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। महाभारत काल के बाद नारियों की प्रतिष्ठा घटने लगी।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥

चेरी भी वो आज कहाँ कल थी जो रानी।
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी॥
अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

तुम्हारे अधरों का रसप्राण, वासना तट पर पिया अधीर।
अरी ओ मां हमने है पिया, तुम्हारे स्तन का उज्ज्वल क्षीर॥

मानवता है मूर्तिमती तू, भव्य भाव भूषण भंडार।
दया, क्षमा, ममता की आकार, विश्व प्रेम की है आधार।
तेरी करुण साधना का मां, है मातृत्व स्वयं उपहार॥

प्राचीन काल में स्त्रियाँ केवल भोजन पकाने की दासी ही नहीं थीं, वरन् पुरुष के साथ समाज के प्रत्येक कार्य में स्वेच्छापूर्वक भाग लेती थीं। ऋषि याज्ञवल्क्यं की सहचारिणी धर्मिणी मैत्रेयी और कात्यायनी आध्यात्मिक ज्ञान के इतने उत्तुंग शिखर पर पहुंची हुई थीं कि वे आध्यात्मिक ज्ञान के आगे लौकिक सुख को तुच्छ समझती थीं। वे गृह लक्ष्मी के रूप में पूजी जाती थीं।

हिन्दू समाज में प्रातः स्मरणीय पाँच महिलाओं में तीन का वर्णन हम पूजनीयाँ नारियों में पाते हैं। वे हैं तारा, मन्दोदरी और अहल्या। सीता और द्रौपदी, सीता और उर्मिला के त्याग तपस्या और पति भक्ति के संदर्भ में अनेक साहित्यिक काव्यों की रचनायें हुई हैं किन्तु खेद है कि तपोमूर्त्ति राज वधू भरत पत्नी के संदर्भ में कोई महत्वपूर्ण साहित्य, काव्य ग्रन्थ की रचना अभी तक देखने में नहीं आई। सीता राजसुख त्याग कर यदि बन में गई तो उनमें अपने पति की सेवा करने का स्वार्थ था। उर्मिला ने अपने पति लक्ष्मण को राम के साथ वन जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की तो वे विवश थी। क्योंकि लक्ष्मण बिना राम के साथ गये

मानते नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उर्मिला का त्याग महान और असाधारण है जिसने अपने प्राणप्रिय पति को सहर्ष निःसंकोच राम की सेवा हेतु १४ वर्ष के लिये साथ भेज दिया। लक्ष्मण और उर्मिला के १४ वर्ष बनवास की अवधि में एक दूसरे से मिलने का कोई साधन भी नहीं थी, न लक्ष्मण राम को छोड़कर अयोध्या जा सकते थे और न उर्मिला पति दर्शन के निमित्त वन में लक्ष्मण के पास जा सकती थीं। परन्तु भरत पत्नी माण्डवी को दशा इसके बिलकुल विपरीत थी। राम बनवास के बाद भरत और माण्डवी दोनों की दशा दारूण करूणाजनक, सोचनीय, भयंकर और जटिल हो गई थी। चौदह वर्ष तक भरत अयोध्या नगरी से थोड़ी ही दूर पर नन्दी ग्राम में राम की ही तरह जटा और वल्कल वस्त्र धारण किये नित राम के ही चिरंतन में तपस्या करते रहे और एक बार भी इस अवधि में अपनी प्रिया माण्डवी से राजमहल में मिलने नहीं गये। माण्डवी भी इस चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि में अपने प्राण प्रिय पति भरत से कभी साक्षात्कार करने नन्दी ग्राम में न गई। मूक प्रतिमा की तरह ऊन्होंने राजमहल में ही जीवन के कष्टदायक समय व्यतीत किया। वास्तव में इस कुल वधू का त्याग अपरिमित और अप्रतिम था। पति पास में हो और पत्नी न मिले। नारी चरित्र का यह श्रेष्ठतम अप्रतिम और असाधारण त्याग और बलिदान का अनुकरणीय ऊदाहरण है।

पति और पत्नी ने राम के अभ्युदय के निमित्त सतत सुखभोग का त्याग कर तपस्वी रूप में जीवन व्यतीत किया। अतः रामायण का गूढ़ भाव हृदयंगम करने पर यह निःशंकोच कहना पड़ता है कि सीता को छोड़कर यदि किसी अन्य नारी का अनुपम त्यागमय निस्वार्थ अप्रमेय उज्ज्वल चरित्र है तो वह है माण्डवी का। लक्ष्मण पत्नी उर्मिला के त्याग से माण्डवी का त्याग महत्तर है। क्योंकि उर्मिला का लक्ष्मण से साक्षात्कार होने का १४ वर्ष तक कोई आशा ही नहीं है परन्तु माण्डवी पास में ही नन्दीग्राम में बैठ अपने पति से जब इच्छा करती साक्षात्कार कर सकती थी परन्तु पति के साथ-साथ समानान्तर भाव से पति की तपस्या मनोभावना के वशीभूत करने हेतु पति से चौदह वर्ष तक विरक्त रही।

दूर उर्मिला का सागर था।

देह महल में रुद्ध हुई थी पर न विरुद्ध विरह कातर था।
भरी दृगों में जल धाराएँ शब्द-शब्द करुणा निर्झर था।
अहह माण्डवी के आहों का भरना भी वर्जिततर था।
जो हैं दूर उसी की आशा रखकर मन समझाया जाए।
समझ सराहूं उस मन की जो पास रहे पर पास न आए।
सलिल विरह की व्यथा न जाने स्वतः स्वांस उठना दुर्भर था।
अहह माण्डवी के आहों का भरना भी वर्जिततर था।

भरत की वह नारी।

कल थी वधू आज माता सी दिव्य देवियाँ हारी।
भोजन लेकर चली भिखारिन जहाँ भरत व्रतधारी।
भोजन जिसका कन्दमूल बस सब सामग्री सारी।
आई उतर तपस्या भूपर नारी बन सुकुमारी।

पर सुकुमारी अग्नि शिषा थी जग जन जीवन हारी।
तन पर दो खादी के टुकड़े चार चूड़ियाँ सारी।।
चार चूड़ियाँ हाथों में, माँथे पर सिन्दूरी बिन्दु।
पीताम्बर पहने थी सुमुखी कहाँ असित नभ भी वह इन्दु।

वह सोने की थाल लिये थी उस पर पत्तल छाई थी।
अपने प्रभु के लिये पुजारिन फलाहार सज लाई थी।
एक क्षत्र शासक की थी वह आधी देह दुलारी थी।
सम्मुख हैं राकेश चकोरी, पर न उधर निज नयन उठाए।
विकसित प्रभा प्रभाकर की है पर न कमलिनी मोद मनाए।
था बसन्त आँखों के आगे, पर कीलित पिक का ही स्वर था।
अहह माण्डवी के आहों का भरना भी वर्जिततर था।
भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान।

यशोधरा के अर्थ हैं, अब भी यह अभिमान।
मैं निज राज भवन में, सखि प्रियतम है बन में।
उन्हें समर्पित कर दिये यदि मैंने सब काम।
तो आयंगे एक दिन, निश्चय मेरे राम।।

सहधर्मिणी शत्रुघ्न प्रिया श्रुतिकीर्ति

सम्पूर्ण राम कथा साहित्य में शत्रुघ्न प्रिया श्रुतिकीर्ति के नाम मात्र का उल्लेख यदा कदा देखने के अतिरिक्त उनके जीवन का विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। नहीं उनके प्राण प्रिय पति शत्रुघ्न का ही विशेष परिचय उपलब्ध है। वाल्मीकि रामायण में उनके जन्म के संक्षिप्त संकेत के अतिरिक्त विशेष उनके जीवन-वृत्त का विवरण किसी काव्य का साहित्य ग्रन्थों में अंकित किया नहीं मिलता। फिर शत्रुघ्न प्रिया श्रुतिकीर्ति की तो कहना ही क्या। श्रुतिकीर्ति के चरित्र चित्रण के कथा प्रसंग किसी भी रामायणीय कथा वाचक, लेखक, कवि, साहित्यकार आलोचक या समालोचक हस्त द्वय के एक हस्त में दो बूँद शीतल मधुर जल मूक शत्रुघ्न प्रिया श्रुतिकीर्ति के मस्तक छिड़कने को नहीं मिला। वह जनकपुर से ब्याह होने के बाद जब अयोध्या के राज प्रासाद में पाँव रखा तब जीवन पर्यन्त सती तुल्य श्रुतिकीर्ति की श्रुतिकीर्ति ही रही और कीर्ति की तो बात ही क्या ? वाह रे नारी जीवन तुम्हारा जीवन भी धन्य है। किसी के नेत्र में आँसू के एक बूँद भी न रहा कि उसे गिराकर उसके तप्त हृदय को शान्ति कर दे। क्या ही विस्मयी जीवन था इस पतिव्रता नारी की। विधि का विधान ही कुछ ऐसा था। सच है—

चेरी भी वह आज कहाँ कल थी जो रानी।
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों यह मन मानी ?
अवला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी।

यूरोप वाले जब इस देश के लोगों को आँखे दिखला कर कहते हैं तुम लोग नारियों का मूल्य नहीं जानते, उनकी मर्यादा नहीं समझते, आमोद और आह्लाद में उन्हें सम्मिलित नहीं होने देते और उन्हें कोने में बन्द करके रखते हो, इसलिये तुम लोग बर्बर हो।' तब मनु आदि ग्रन्थों से पूजा हो आदि श्लोक निकाल सब लोग उन्हें उत्तर देते हुए उलटे उन्हीं से कहते हैं—'नहीं, हम लोग

अपनी माँ-बहनों के मुंह पर रंग पोतकर उन्हें शैम्पेन और क्लारेट पिलाकर इस प्रकार उन्हें उत्तेजित करके सभा-समितियों में नचाते नहीं फिरते। हम लोग घर के कोने ही में रखकर इनकी पूजा करते हैं। तुम लोगों के बाल डान्स की पोशाक देखकर हम लोग मारे लज्जा के सिर झुका लेते हैं और तुम्हारा नाच देखकर आँखें बन्द कर लेते हैं। हम लोग वर्बर बनकर अपनी माँ बहनों को सदा घर के कोने में बन्द रखेंगे लेकिन उनकी मर्यादा बढ़ाने के लिये प्रकाश्य रूप से भरी सभा या भीड़ के सामने नचा नहीं सकेंगे। अवश्य ही युरोप वाले इस तिरस्कार की परवाह नहीं करते। प्रसिद्ध आचार्य प्रोफेसर मैस्पेरो (Prof. Maspero) ने प्राचीन मिश्र की नारियों की सभ्यता के प्रसंग में अपनी Dawn of civilisation (सभ्यता का प्रभाव) नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि मिश्र की महिलाएँ अपनी छाती प्राय: खोलकर सड़कों पर निकला करती थीं, इसलिये अवश्य ही वे यथेष्ट उन्नत थीं। क्योंकि "Like Enwfocans they must have covetia public admiration" युरोपियनों की भाँति वे भी जनता से अपनी प्रशंसा कराने की इच्छुक रही होगी। अपनी महिलाओं के सम्बन्ध वे तो विना किसी प्रकार के संकोच के कह गये, लेकिन इस Admiration शब्द का देशी भाषा में ठीक-ठीक अनुवाद करने में मारे लज्जा के हमारा सिर झुक जाता है। हम भारतीय विदेशियों जैसे अपनी महिलाओं को सभा सोसाइटी आम जनता में नचा नहीं सकेंगे और अपने घर के कोने में ही रखकर हम उनकी पूजा करते हैं।

भारतीय नारियों का सर्वोत्तम धर्म और प्रथा सतीत्व से बढ़कर नारी का कोई गुण नहीं हो सकता। रामायण, महाभारत और पुराणों आदि में इस बात की बार-बार आलोचना की गई है कि यह सतीत्वपन नारी का कितना महत्वपूर्ण धर्म है। यह है भारत की भारतीय नारी का यशोधर्म जो चिर सनातन है। शत्रुघ्न प्रिया श्रुतिकीर्ति ने उपरोक्त नारी चरित्र का दीप्तिमान प्राज्वल्य दृष्टान्त प्रकट किया है।

अबला नारी सबला नारी। बिधि की पहली रचना नारी॥

नारी के विषय में कुछ विवरण नीचे दिए जाते हैं—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृह दीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गहेषु न विशेषोऽस्तिकश्चन ।।

अर्थात स्त्रियाँ प्रजोत्पत्ति के लिए हैं, महा भाग्यशाली हैं, पूजा के योग्य हैं, घरों की दोप्ति हैं। घरों में स्त्री और श्री में कोई अन्तर नहीं है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रिया ।।

अर्थात जहाँ स्त्री की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ नहीं होती, वहाँ सारे फल निष्फल होते हैं।

विशीलः काम वृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्या सततं देव वत्पतिः ।।

अर्थात् चाहे सदाचार ही न हो, चाहे कामी दुराचारी हो और चाहे गुणहीन हो, सती साध्वी स्त्री को पति की सदा देवता के समान सेवा करनी चाहिए।

वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना, अँध बधिर क्रोधी अतिदीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।
एकै धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पति-पद प्रेमा ।।

न स्त्रीणां पृथग्यज्ञं न व्रतं नाप्युपोषणाम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ।।

अर्थात् स्त्रियों के लिए न कोई जुदा यज्ञ है, न व्रत और न उपवास। यदि वे पति की सेवा करें तो उसी से स्वर्ग में पूजी जाती हैं।

अनुसूया अत्रि मुनि की सहधर्मिणी

ऋषि पत्नी अनुसूया एक उज्ज्वल अन्यतम आदर्शमय चरित्र-वान तपस्विनी थी। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षि अत्री की सह-धर्मिणी थीं। इनकी सतीत्व महिमा विश्व विश्रूत थी। केवल

मात्र पतिव्रत्य धर्म पालन करने के आधार पर असाधारण क्षमता अर्जन किया था ये सीता जी की परमाध्या थी।

एक दिन ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर अनुसूया के सतीत्व को परीक्षा लेने हेतु अत्रि मुनि के आश्रम में पहुंचे। उस समय मुनि अत्रि आश्रम में उपस्थित नहीं थे। अतः अनुसूया को ही आगत ब्रह्मादि का स्वागत भार ग्रहण करना पड़ा। आगत देवों का स्वागत सत्कार करने के बाद उन्हे आहारार्थ भोजन करने का आह्वान किया। खाने के समय आगत अतिथियों ने कहा—हम प्रत्येक ने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि वस्त्राच्छादित किसी व्यक्ति के परिवेशन करने पर हम वह अन्न नहीं ग्रहण करेंगे। अतिथिगण के ये वचन सुनकर साध्वी अनुसूया घोर संकट में पड़ गईं। उनके पति के लौटने का समय कोई निश्चित नहीं था। अतः वस्त्राच्छादित न होकर नग्न रूप में सेवा करने में असमर्थता का अनुभव करने लगी। ऐसी विकट विस्मय स्थिति में उन्होंने मधुसूदन का स्मरण कर मंत्रपूत जल आगत अतिथिगण के मस्तक पर छिड़का। तत्काल ही सतीत्व के धर्माचरण की महिमा देखकर अतिथिगण शिशु रूप में परिणित हो गए। तब अनुसूया तीनों शिशुगण को गोद में लेकर उन्हें अपना स्तनपान कराने लगीं।

इधर सरस्वती, लक्ष्मी एवं पार्वती अपने अपने स्वामी को खोजते-खोजते सती अनुसूया के आश्रम में आकर अपने-अपने स्वामी की दशा देखकर वे अति विस्मित हुई। उनकी दशा देखकर उनके उद्धार हेतु मानस तपस्या करने लगीं। उसके फलस्वरूप देवताओ का प्रादुर्भाव हुआ और त्रिमूर्ति उनके प्रभाव से अपने-अपने पूर्वावस्था को प्राप्त हो गए। अनुसूया ने जब देखा कि अतिथिगण छद्म भेषी ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर थे तब वे तीनों देवों के पद पर गिर कर प्रार्थना भिक्षा करने लगीं। त्रिमूर्ति प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा। अनुसूया ने प्रार्थना की कि यदि आप मेरे ऊपर संतुष्ट हैं तब मुझे निम्न वर दें—यह कि आपके सादृश्य मुझे पुत्र प्राप्त हो। त्रिदेव तथास्तु कहकर अन्तरध्यान हो गये। काल क्रम में अनुसूया के गर्भ से ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर अवतार स्वरूप महर्षि दत्तात्रेय के रूप में जन्म ग्रहण

किया। सती अनुसूया अनन्त काल से पूजित चली आ रही है। राम बनवास के अवधि में सीता जी ने भी उनका स्वागत किया था जो गो० तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में वर्णन किया है—

अनुसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।

अनुसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम्।
प्रति गृह्णीष्व वैदेहीम ब्रवीदृषिसत्तमः।।
वा. रा. अयो० ११७।८

अपनी धर्मचारिणी और तपस्विनी अनुसूया से महर्षि अत्रि ने कहा—देवी सीता को गले से लगाओ। आश्रम में विश्राम करने के कुछ दिन बाद राम, लक्ष्मण सीता आगे चले गये।

शबरी की कथा

राक्षस कवन्ध के उद्धार करने के बाद श्रीराम लक्ष्मण सहित आगे बढ़े। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्हें भक्त शबरी की कुटिया मिली जहाँ शवरी अनन्त काल से श्रीराम के दर्शनार्थ तप कर रही थी।

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धासिद्धि समता।
शशंस शबरी बृद्धारामाय प्रत्युपस्थिता।।
अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः।।
अद्य मे सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ।।
वा. रा. अर. सर्ग ७४ श्लोक १०-१२

वह वृद्धा तपस्विनी शवरी राम से कहने लगी। नाथ! आज आपके दर्शन मात्र से मेरी तपस्या सिद्ध हो गई। आपका पूजन करके मैं स्वर्ग प्राप्त करूंगी। श्रीराम से सम्भाषण करने के बाद शबरी अग्नि में प्रवेश कर गई।

अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ।
अ. रा. सर्ग १० श्लोक ३९

शवरी देखि राम गृह आए । मुनि के बचन समुझि जिय भाए ।।
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई शवरी परी चरण अकुलाई ।।
पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।।
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ।।

गोस्वामी तुलसी दास ने शबरी में केवल एक मात्र भक्त की भावना देखी परन्तु आदि कवि बाल्मीकि ने उसमें (शवरी में) मानवता की भावना देखी ।

भगवान राम कहते हैं—

मैं तो आया हूं केवल करने जयकार सती का ।
मैं हूं कृतार्थ पाकर यह स्वागत सत्कार सती का ।।

सदन सिधाऊँ पाऊं व्यंजन अनेक तऊ,
याके सम एकहूं पदारथ न तुलैगो ।
करि करि प्यार मातु अशन करे हैं जब,
मेरे हिय तबहीं सनेह यह झूलेगो ।।
आजु को अपार सुख कहँ लौं बखान करों,
छिन छिन नित्य प्रति चित्त अति फूलैगो ।
शबरी तिहारे इन बेरिन को खाद मोहिं,
रसिक - बिहारी कहूं कतहूँ न भूलैगो ।।

शबरी के फल भक्ति रस अनूठे थे—

बिबिध विधान के अनेक पकवान जेते,
होत है जहान मेरे जान सब सीठे हैं ।
रसिक बिहारी फल सरस रसाल आदि,
तेऊ यह स्वाद पाइ सकल उबीठें हैं ।।
कन्द मूल अधिक अतुल रुचिकारी सोऊ,
नेकहूँ न इनके समान मोहि दीठे हैं ।
रचहूँ न सीठे यों न दीठे न उबीठे बन्धु,
लखन कहो तो सत्य कैसे बेर मिठे है ।।

शबरी के फल खाकर श्रीराम क्या कहते हैं—लक्ष्मण !

ब्रह्म के उपासी तप रासी सुखरासी बर,
बिपुल मुनीसन के आश्रम सिधायो मैं।
कीन्हें सनमान तिन सहित बिधान तऊ,
काहूँ ठौर पेट भरि कबहूँ न खायौ मैं॥
अमृत समान शवरी के इन वेरिन में,
रसिक बिहारी मन भायो स्वाद पायौं मैं।
अवध विहाय वन आयों जब तेहौं बन्धु,
तबते बिचारो सत्य आज ही अघायो मैं॥

प्रभु चाहत है निह केवल प्रेम न चाहत रूप कुले वल हैं,
इस रंगमयी भलि भीलिन को, निज मातु समान दिए फल हैं।
रघुनन्दन प्रेम के भूखे सदा, फल खाय भले न पिए जल हैं,
शवरी के सुप्रेम पगे फल ये, फल हैं कि चहूं फल के फल हैं॥
कृता रामेण भक्तानां शबरी मणिः।

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावन मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध शवरी कहँ प्रभु न अधिक जिय जानी॥

रघुबर रावरि इहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई।
मिलि मुनि वृन्द फिरत दण्डक वन सो चरचौ न चलाई।
वारहिं बार गीध शबरी की बरनत प्रीति सुहाई।

दसकंध के मारन कौं चतरंगिनि सक्तिमती नृपताहुती खासी।
रिषि औ मुनि के सतकारन कौं वहु नग्य-विधान हुते सुखरासी।
मन राखत बंधु भरतय को औसि, धरै फिरि जाते प्रजाके उपासी।
शवरी वन वासिनि होति न जो प्रभु रामहु ना बनेत यनवासी।
शुचि होय न नीर सरोवर को, सत जग्यहु बेद विधान किये।
नहिं रोग नसै विनु जाने विदान, जथा वह मूरि प्रदान किये॥
अव एक उपाय रह्यो मुनि वृन्द, बनै नहिं जाति गुमान कियो।
शवरी अपमान की छूति लगी, सु मिटै सवरी असमान कियो॥

शबरो कहि राम, धसौ सर में, छुअतै पद छूति धुआँ ह्वै गई।
उर लौं गई तौ उर वासना-जोग, सुबास सुधा जल से भ्वै गई।।
गर लौं गई तौ जलजात खिले, मुख भा सों मलानि सवै ख्वै गई।
चरनामृत मैं जटा भीजीं जबै सुचिता सिव - जूटिन कीम्वै गई।।
शबरी भई आई-गई, बचनो से न फेरि कबौं भव में अत्र आइ है।
पथ प्रेम को ऐसो चलाय गई, दृग मूँदि चले सोउ प्रीतम पाइ है।।
वन चारिनि ह्वै जो दिखाय गई, जुग पं जुग जाय न गाय सिराइहै
जब्र लौं रहै रामको नाम बन्यौ,तब लौं सबरीहु को नाम न जाइ है
शबरी की अकत्थ्य, प्रेम कथा, बिधिहूं के मनै मन हेरन की।
करि साहस हौं जु कही हठ सों गुनि जुक्ति सु राम के टेरन की।।
छमियो बुध चूक निवन्धकला बचनेस न नीके निबेरन की।
नहिं सक्ति इतीहु कहौं महिमा शबरी के चखे उन बेरन की।।

आकाश भागवत की वह, श्री प्रथम श्लोक सी शबरी।
करने कृतार्थं जाती थी, अब स्वर्ग लोक को शबरी।।
जय जयकार कर उठे, सारे सच ही परम सती थी।
उस कृष्ण कमल में निश्चय ही, आर्य गंध बसती थी।।

ऋषि मतंग उसे आश्रम में सेवा करने का सुयोग देते हैं, उस अवसर पर शबरी की कैसो दशा थी—

आखें भर आयी शबरी की, गिर पड़ी पदपद्मोंपय।
मैं पापी हूं, हूं हतभागी इस भवसागर से पार करो।
प्रभु चरणों में हो भक्ति अटल मुझको दासी स्वीकार करा।

शबरी कहती है—

मैं समझी प्रभु हैं अग्नि रूप सब संसारिकता से ऊपर।
अन्त्यज भी हो जाते पावन जिनकी पवित्रता को छूकर।
क्या आत्मा की उन्नति केवल है उच्चवर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला उनका आराधन क्यों सीमित ?

शबरी मतंग ऋषि से कहती है—मैं तो अधम पापी हूँ। यदि आप की कृपा हुई तो मैं हरि गुण गाते गाते इस भवसागर से पार हो जाऊँगी।

बोले मतंग शबरी बेटी। यदि अन्त्यज तू, तो कौन श्रेष्ठ ?

आश्रम में पहुंचने पर भगवान राम कहते हैं—

शवरी अन्त्यज है तो क्या वह शक्ति रूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल शिवशक्ति रूप है शूद्रा।

शवरी प्रेम विभोर होकर बैरों को चख-चख कर भगवान को अर्पित करने लगी—

वह सहज भाव से चखती मीठे प्रभु को दे देती।
प्रभु सहज भाव से खाते आँखों से कृपा बरसती।।

प्रभु बोले मन्द स्वरों में जनता को कर सम्बोधन,
शवरी तो जगज्जननी है, मैं हुआ तो आज ही पावन।
थी ज्ञात मुझे पहले ही गाथा इस परम सती की,
वह जन्म चक्र से ऊपर जिस पर हो कृपा सती की।।

जैसा कि पूर्व वर्णन किया गया है भगवान पुनः कहते हैं—

मैं तो आया हूं केवल करने जयकार सती का,
मैं हूं कृतार्थ पाकर यह स्वागत सत्कार सती का।

शबरी की बात सुनकर आशीर्वाद देते हुए मतंग मुनि ने कहा—

बोले मतंग-बेटी शबरी, यदि अन्त्यज तू तो कौन श्रेष्ठ।
तुम में तो प्रभु ही बोल रहे, निश्चय होगी तू भक्त श्रेष्ठ।।

भगवान के भक्ति भावना से प्रेरित होकर वह संसारी जीवन से विरक्त होकर कहने लगी—

घोर वितृष्णा घिर आयी, श्रमणा शबरी के मन में,
त्यागो परिवार-मोह यदि, करना कुछ जीवन में।

शवरी मतंग ऋषि के आश्रम के द्वार पर रुक जाती है और ऋषि से आत्म निवेदन करती है·—मतंग शोच में पड़ जाते हैं।

अन्त्यज अछूत, फिर शबर जाति उस पर स्त्री क्या हेतु कहुं,
अध्यात्म - पिपासा लेकर मैं आयी हूं, कैसे बात कहूं?
बोली प्रभु के दर्शन से मेरा जीवन आज कृतार्थ हुआ,
मैं शबर जाति की श्यामा हूँ प्रभु सेवा मेरा इष्ट हुआ।।

शबरी की तप साधना से रुष्ट होकर आश्रमवासी साधु संत उसकी तथा मतंग ऋषि की निन्दा करने लगे। कहने लगे--

यह भील जाति की कुलटा, सतियों सो होगी पावन ?
अब आर्य - कण्ठ से शूद्रा का, करना होगा गायन ?
चाहे मतंग ऋषि जो भी, जैसा भी इसको मानें,
वे शबरी पर चाहें तो, मंत्रों को ही रच डालें।

शबरी घर, जीवन और परिवार से विरक्त वितृष्णा होने लगती है और सोचती है।

सब वन्धन से कहीं श्रेष्ठ है, उस प्रभु का ही बन्धन,
कुल कुटुम्ब की चिन्ता से, अच्छा है प्रभु-आराधन।
घोर वितृष्णा घिर आयी, श्रमणा शबरी के मन में,
त्यागो यह परिवार-मोह यदि, करना कुछ जीवन में।

शबरी का दार्शनिक चिन्तन सुनकर मतंग चौंक गए।

चौंके मतंग, वह समझ गये, कीचड़ में कमल खिला है यह,
होगी अछूत, पर जाने किन, जन्मों का पुण्य मिला है यह।

मतंग शबरी के नित्य प्रति कार्य क्रम को देखते रहते हैं और सोचते हैं।

छिप कर मतंग ने देखी, पशु-शबरी की यह लीला,
सोचा-किस घाट बही थी निर्मल, पुण्या यह सलिला।
विश्वास हो गया ऋषि को, शबरी निश्चय पुण्यात्मा,
जाने किन कर्मों के हित थी, भटक गई यह आत्मा।

राम लक्ष्मण सहित पम्पासर आए और सारी कथा जानने के बाद मतंग ऋषि के आश्रम में पहुंच कर कहा—

मैं सुन आया हूं शबरी की, सारी तप गाथा को,
होगी कृतार्थ मानवता, सुनकर सुगन्ध गाथा को।
शवरी अन्त्यज है तो क्या, वह शक्ति रूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल, शिवशक्ति रूप है शूद्रा।

शबरी सोचती है कि त्रिभुवन के स्वामी को किस प्रकार का भोग सामग्री परोसे—वह कहने लगी—

तुम इसे मुक्ति दो प्रभु ! अब, है पाद-पद्म अनुरागी,
इस कुलकलंकिनी शूद्रा को, कर दो तुम बड़भागी।

वह झुकी हुई थी प्रभु के, चरणों पर श्रद्धानत हो,
आँसू से भींग गये पग, श्रद्धा थी झुकी विनत हो।

शबरी का जीवन राम भक्ति के प्रति अपरिमित था। उसके जीवन की सर्वश्रेष्ठ निष्ठा राम की भक्ति और दर्शन थी। शबरी को संकोच था—

संकोच भक्त को था पर, भगवान भाव के भूखे,
उत्सुक प्रभु जो देखा, आँसू शबरी के सूखे।

शबरी की निश्छल अटूट प्रभु भक्ति।

वह सहज भाव से चखती बेर मीठे प्रभु को दे देती,
प्रभु सहज भाव से खाते आँखों से कृपा बरसती।

भगवान राम प्रसन्न होकर कहते हैं—

है अन्य कौन त्रेता में जो श्रेष्ठ भक्त शबरी से,
है मंत्र, यज्ञ यह सब कुछ सब सिद्ध इसी शबरी से।

शबरी भगवान के शरण में ही आना चाहा और भगवान से प्रार्थना की और अग्नि देव के प्रकट होते ही उसमें अन्तर्ध्यान हो गई। प्रभु धाम को चली गई।

विश्वास हो गया ऋषि को शबरी निश्चय पुण्यात्मा,
जाने किन कर्मों के हित, थी भटक गयी यह आत्मा।

मतंग ऋषि ने कहा—

सम्भव है आश्रम के जन या अन्य तपोवन बासी।
आपत्ति करें शबरी के बनने पर अन्तर्वासी।।

मतंग ऋषि का शबरी के प्रति सेवक भक्तिभाव देखकर आश्रम के निवासी मतंग की निन्दा करते थे। कहने लगे—

एकत्र हुए थे सारे ऋषि-मुनि-साधू सन्यासी,
शबरी मतंग को लेकर उत्तेजित अन्तर्वासी।

माना मतंग थे ऋषिवर ज्ञानी औ परम तपस्वी,
पर उनके यश दिनकर परछायी थी शबरी बदली।

Shri N. R. Navlekar in his book on Ramayan-comments that the so called illusory Sita was Sabari who is said to

have died according to every poet, Voluntarily in blazing fire before the eyes of Rama.

Shri Navlekar suggests or Supposcs that Sabari In fact made a generous Sacrifice at Lanka one year after, Sabari imperconated Sita and plased Sita's role and self immolation, the only course left for her and she was only carried off by Ravan in haste while playing Sita's role.

रावण द्वारा सीता अपहरण के सम्बन्ध में श्री नावलेकर जी का मत है कि वास्तविक सीता के बजाय रावण शबरी को ले गया जो राम भक्ति के कारण लंका में शबरी ने अपना शरीर विसर्जन कर दिया। यह तर्क अति गंभीर और सुधि समुदाय द्वारा गहन विचार का विषय है।

राम ने षडयन्त्र करके सीता को अग्निदेव के आश्रम में भेज दिया और कहा—

तुम पावक महुं करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा ॥

और सीता के बदले शबरी को प्रतिनिधि रूप में छद्मभेष में अपने निवास में बैठा दिया। यह भेद रहस्य लक्ष्मण को भी नहीं बताया और लक्ष्मण इस भेद को न जान सके उन्हें अन्य कार्य व फल फूल लाने में फँसाये रखते थे।

लछिमनहूं यह मरम न जाना। जो कुछ चरित रचा भगवाना ॥

लक्ष्मण भी स्थानापन्न शबरी को नहीं जान सके, कारण वह सीता के मुख को कभी देखा ही नहीं था जैसा कि बाल्मीकि जी ने वर्णन किया है—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नुपूरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात् ॥

वा. रा. कि. सर्ग ६।२२

राम ने अति चतुराई और सुचारु रूप से यह षडयन्त्र सम्पादन हेतु शबरी को भली प्रकार चतुराई से करने की शिक्षा और आदेश दे रखा था जो अंत तक शबरी ने राम की सेवा में निभाया। रावण भी अनुमान नहीं कर सका कि जिसका वह अपहरण कर रहा है

वह वास्तविक सीता है या नहीं। ऋषि मतंग को आश्रम वासियों की मनो दशा देखकर मार्मिक कष्ट हुआ।

सुनकर समाज का निर्णय, बस खिन्न हुए ऋषि मन में,
कब धर्म-मर्म जागेगा, साधू समाज के मन में?
अपने को श्रेष्ठ समझना, यह दम्भ नहीं तो क्या है?
जिसका जीवन है सात्विक, वह आर्य नहीं तो क्या है?

मतंग ऋषि आश्रमवासियों की कटूक्ति विरोध सुनते हुए भी शान्त रहे। अन्त में भगवान स्वयं आकर उन्हें दर्शन देते हैं तब सबको आँखें खुल जाती है और मतंग ऋषि तथा राम भक्त आश्रमवासी शवरी की जय जयकार ध्वनि करने लगे।

मैं अथक आराधना से भक्त को भगवान कर लूँ। जय जय हो, जय हो, राम भक्तों की जय हो॥



जटायु की जीवनान्त झाँकी

सीता की खोज करते करते लक्ष्मण सहित राम बन में पृथ्वी पर रथ-छत्र धनुष इत्यादी पड़े देखे। राम ने लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण! देखो यहाँ सीता जी को ले जाते हुए किसी पुरुष को कोई अन्य व्यक्ति युद्ध में जीत कर हर ले गया है।

एवं विचिन्वन्सकलं बनं रामः लक्ष्मणः।
भग्नं रथं छत्र चापं कूबरं पतितंभूवि॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण केनचित।
नीयमानां जनकजां तं जित्वान्यो जहारताम्॥
एष वै भक्षयित्वा तां जानकी शुभ दर्शनाम्।
शतेविविक्तेऽति तृप्तः पश्य हन्मि निशाचरम्॥

अ० रा० अर० सर्ग ८।२१, २२, २३, २५

श्री रामजी अनासक्त होते हुए भी मूढ़ पुरुषों जैसे आसक्त से प्रतीत होते हैं, किन्तु तत्त्व ज्ञानियों को ऐसा भ्रम नहीं होता। राम लक्ष्मण सहित सीता की खोज करते समय बन में टूटे रथ चक्र, छत्र धनुष और कूबर पड़े देखे! उन्होंने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण देखो यहाँ सीता को ले जाते हुए किसी पुरुष को कोई अन्य व्यक्ति युद्ध में जीत कर उन्हें हर ले गया है। कुछ दूर जाने पर विशाल पृथ्वी पर पड़े शरीर को देखकर राम ने कहा—लक्ष्मण! देखो यही सीता का भक्षण करके निश्चिन्त सो रहा है। मैं अभी इसे मार डालता हूँ। राम के वचन सुनकर भयभीत जटायु ने कहा—आप मुझे न मारें। मैं जटायु हूं। मैं आपको सहधर्मिणी सीता को रावण द्वारा ले जाते हुये इसका विरोध किया था। उसने मेरी यह गति की है। रावण सीता को दक्षिण दिशा को ले गया है। मैं अब आपके सामने ही अपना प्राण त्यागना चाहता हूँ। उसने इतना कहकर प्राण त्याग दिया।

ततः प्राणान्परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि।

अ. रा. अर. सर्ग ८।३६

इस प्रकार उस क्रूर कर्म करने वाले रावण के हाँथों से पंख कट जाने से पक्षीराज जटायु पृथ्वी पर गिर पड़ा और रामधाम को चला गया।

पक्षौपाश्वौंच पादौ च खङ्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्।
सच्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।।
वा. रा. अर. सर्ग ५१-२३

सीता की रावण द्वारा हर ले जाते समय की करुण विलाप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—गृद्धराज कहता है—

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ।।
अधम निसाचर लीन्हों जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई ।।
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा ।।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानहि मोही ।।
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहिबहु बाहू ।।
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।।
काटेसि पंख परे खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्‌भुत करनी ।।
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उतावल त्रास न थोरी ।।

लंकेश रावण ने पंचवटी में जब जनक तनया सीता का अपहरण किया उस समय रावण के उतावलेपन और घबराहट पर गोस्वामी तुलसी दास जी वर्णन करते हैं—

दोहा—क्रोधवन्त तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ ।।

सीता का विलाप सुनकर—

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ।।

सीता की आर्तवाणी सुनकर गृद्धराज जटायु उनकी करुण व्यथा को सुनकर सहन न कर सके और कहने लगे—

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहऊँ जातुधान कर नासा ।।

गृद्धराज जटायु की ललकार सुनकर रावण उस पर टूट पड़ा।

धावा क्रोधवन्त खग कैसे। टूटहू पवि पर्वत कहूँ जैसे ।।

रावण के कुकृत्य का विरोध करते हुये जटायु नें उसे फटकारते हुये कहा—

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जाना मोही।

रावण ने देखा कि उसका कोई विरोध कर रहा है।

आवत देखि कृतान्त समाना। फिर दसकंधर कर अनुमाना॥
की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाड़िहि देहा॥

जटायु ने न केवल रावण को डाँटा वरन उससे भिड़ गया।

धरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा।सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दण्ड एक भई मुरछा तेही॥
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम की अद्भुत करनी॥

अति घायल दोउ कटे परवाना, पैतऊ रसना रट लाती रही।
तन पीर अधीर परौ तबहूँ, हरि नाम की प्रीति सुहाती रही॥
'रघुनाथ' दसा लख के तेहि की, केहि को उँमगे छिन छाती रही।
गति गीधकी देख दयानिधि की,सुधि सोयके सोध की जाती रही॥

जब श्रीराम ने गीध के मस्तक पर हाँथ रखा, गीध ने नेत्र बन्द किये चोंच से सीता का दिया हुआ मंत्र जाप कर रहा था।

दोहा—कर सरोज सिर परसेउ, कृपा सिंधु रघुवीर।
निरखि राम छबि धाम सुख, मुख विगत भई पीर॥

जटायु कहता है—

कोई भी हो मैं कहता हूं, बस जाओ मुझको मरने दो।
हा राम! मंत्र यह माता का, आराधन इसका करने दो॥

दोहा—गदगद ह्वै बोले प्रभु, मैं ही हूँ वह राम।
भक्त राज देखो तुम्हें, करता राम प्रणाम॥

जटायु ने अश्रुपूर्ण नेत्र खोलकर श्रीराम का दर्शन किया जब श्रीराम ने गीध को गोद में बैठा लिया।

कवि उस दृश्य का वर्णन करते हुए कहता है—

गीध को गोद में राख कृपानिधि, नैन सरोजन के भरि वारो।

बारहिं बार सम्हारत पंख, जटायु की घूर जटान सो झारी ॥

फिर श्रीराम ने कहा—

राम कहा तन राखहु ताता ।

गीधराज नकारते हुए कहता है—

प्रभु ! शरीर किसलिए रखूँ ।

श्रीराम ने कहा—

हमारी और आपकी केवल एक एक इच्छा अपूर्ण रह गई है । जटायु ने कहा—प्रभु ! वह कौन सो इच्छाएँ रह गई हैं ?

श्रीराम ने कहा—मेरे पिता नहीं रहे और आपके कोई पुत्र नहीं है, इसलिए कहता हूँ—

मेरे जान तात कछुक दिन जीजे ।
देखिये आप सुवन सेवा सुख मोहि पितु की सुख दीजे ।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मन ये गहि लीजे ।
हरिहर सुयश सुनाय दरस पै लोग कृतारथ कीजे ॥

गृद्धराज अंध विश्वासी भक्त नहीं था । कहने लगा—

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमहु मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
सो मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥

जिसका नाम मरते समय मुख से निकल पड़े वे अधम भी मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं और यहाँ मुझे गोद में लिये प्रेमाश्रु बहा रहे हैं । इससे अधिक मेरा सौभाग्य क्या हो सकता है जिसके लिए जीवन रखूँ ? जिस प्रभु ने विराध को मारकर 'देख दुखी निज धाम पठावा' ।

सरभंग ऋषि ने ऐसा वरदान माँगा था—
'मम हिय बसहु निरन्तर सगुन रूप श्रीराम' ।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

असि कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा ॥

गोसाईं जी गीधराज के तन विसर्जन पर लिखते हैं—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा ।

यथा गीध को हरि दर्शन क्यों प्राप्त हुआ। इसका मूल कारण है गीधराज जटायु की महाराज दशरथ के बाल सखा की मित्रता। अत: श्रीराम ने गीधराज को 'तात' कहकर सम्बोधित किया। श्रीराम ने कहा—

तात करम निज ते गति पाई।

गीधराज के अन्तकाल शरीर छोड़ते समय श्रीराम ने कहा था—

तन तज तात जाहु मम धामा।

इसके आगे श्रीराम जटायु से कहते हैं—

सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाय।

श्रीराम ने जटायु को बार-बार 'तात' कहकर ही सम्बोधित करते रहे। जैसे—

नाथ दसानन यह गति कीन्हीं, लै दच्छिन दिस गयउ गोसाईं।
दरस लागि प्रभु राखेहुं प्राना, चलन चहत अब कृपा निधाना।।

जब गृद्धराज जटायु श्रीराम के गोद में बैठा था तो उनमें आपस में अनेकानेक प्रश्नोत्तर हुए थे। जैसे—

श्रीराम—माँगो बरदान प्रिय, तात बिछुरती का।
देगो सब हार ये, राम रुचि तुम्हारी मैं।

जटायु कहता है—

देंगे कहा आप! रहा पास क्या तुम्हारे आज?
देखूँ महाराज को बिराग भेषधारी मैं।

क्या देंगे महाराज? आप तो बन विचरण कर रहे हैं। इतना कहते ही लक्ष्मण जी तमतमा उठे और श्रीराम से कहने लगे।

जानते नहीं हो कौशलेश हूं रमेश हुँ मैं।
अखिल भुवनेश बैकुण्ठ का बिहारी मैं।।

इस गोद में बैठे गीधराज ने कहा—

'गोद ले लिया है गृद्ध को विनीत याते,
प्रभु की सम्पत्ति को भयो हूँ अधिकारी मैं।

इस कथन को सुनकर जब श्रीराम कुछ नहीं कह पाए तो गीध ने क्या किया? गोस्वामी जी कहते हैं—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।

दोहा—अविरल भगति माँगि बर, गीध गयऊ हरि धाम।
तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम।।

जो सौभाग्य महाराज दशरथ को भी प्राप्त नहीं हुआ था वह परम सौभाग्यशाली भक्त गीधराज जटायु को प्राप्त हुआ। उसका अंतिम संस्कार श्रीराम ने ही किया। उसका देहावसान संस्कार करते हुए श्रीराम ने कहा—

जावो जावो हे भक्तराज जाओगे मेरे धाम को तुम।
जाते जाते इतना सुनलो कर चले ऋणि इस राम को तुम।।

इस देश में पक्षी कुल में भी ऐसे राम भक्त हुए जिनके श्रीराम भी ऋणि रहे। ऐसी सद्गति गृद्धराज जटायु को क्यों और कैसे प्राप्त हुई। गोस्वामी जी कहते हैं—

परहित बस जिनके मन माहीं। तिन्ह कह जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

कवित्त—

जानकी कौ हरन, श्री जटायु न देख सके,
मरन ठान रन में स्वदेश बिता गये।
गीध की सुदृष्टि को बसा के हिय गांधी गुरु,
देस लख आरत विशेष अकुला गये।।

गीध दूर तक देख सकता है। कहता है—

मैं देखहुं तुम नाहि गीधहिं दृष्टि अपार।

जीवन में जरठ जटायु इतौ काम कियौ।।
सिया को संदेश प्रभु राम को सुना गये।
कर्मवीर बापू विती 'वह करनी करी',
हरी गई जननो को धाम में पठागये।।

अंत में जटायु का अन्तिम संस्कार श्रीराम जी के हाँथों से हो हुआ। सूरदास कहते हैं—

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।
कहि कै बात सकल सीता की तन तजि चरन कमल चित लायौ।
श्री रघुनाथ जानि जन अपनौ। अपने कर करि ताहि जरायौ।।
'सूरदास' प्रभु-दरस-परस करि तत क्षन हरि के लोक सिधायौ।।

जय हो, जय हो, परहित परायण परम रामभक्त सेवक जटायु की जय हो।

हनुमान

सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥

रामायण में हनुमान का चरित्र अति उत्तम रूप से प्रकाशित किया गया है। संसार में सर्व गुण सम्पन्न ऐसे पुरुष का सम्भवतः कम प्रादुर्भाव हुआ है। हनुमान ने परम सुन्दरी अप्सरा पुञ्जिक-स्थला ऋषि श्राप से वानर कुल में जन्म लिया था। उनके पिता वानरेन्द्र कुञ्जर थे। कुञ्जर ने अपनी सुन्दरी कन्या का नाम अञ्जना रक्खा था। सुमेरु पर्वत वानराधिपति केसरी के साथ अञ्जना का विवाह हुआ। पवन देव एक बार अंजना के रूप लावण्य पर मोहित होकर अपने स्पर्श मात्र से अंजना के गर्भ से महाबलशाली पुत्र हनुमान को उत्पन्न किया। एक बार शैशवा-वस्था में हनुमान सूर्य को पकड़ने आकाश में चले गए। इन्द्र ने सूर्य और अपने ऐरावत हाथी के रक्षार्थ हनुमान को अपने वज्र द्वारा मारकर भूमि पर गिरा दिया। वज्र के प्रहार से पृथ्वी पर गिरने से हनुमान की एक ठोड़ी टेढ़ी हो गई इससे उनका नाम हनुमान पड़ा। कहीं कहीं वर्णन मिलता है कि हनुमान अपने मामा के घर हनुमानपुर में उत्पन्न हुए थे इस कारण उनका नाम हनुमान पड़ा। उनको देवताओं ने अजेय होने का वर दिया था। हनुमान वर से दर्पित होकर ऋषि मुनियों के आश्रम में जाकर उत्पात करने लगे। हनुमान के उपद्रव से संतप्त होकर ऋषि मतंग ने उन्हें श्राप दे दिया और कहा! हे वानर! तुम जिस शक्ति के गर्व से हम लोगों को पीड़ित करते हो, हम लोगों के श्राप से तुम अपनी शक्ति को भूल जाओगे। किन्तु जब कोई तुम्हारे शक्ति का स्मरण करायेगा तब तुम अपने बल बुद्धि को प्राप्त होगे। हनुमान के गुणों की प्रशंसा करते हुए गोस्वामी तुलसीदास वर्णन करते हैं—

अतुलित बल धामं हेम शैलाभ देहं,
दनुज बन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं,
रघुपति प्रिय भक्तं वात जातं नमामि॥

विद्या और बुद्धि में हनुमान अतुलनीय थे। उनके समान जगत में धैर्यवान और विद्वान व्यक्ति कोई नहीं था। रावण के वध और सीता के उद्धार के लिए जब राम चिन्ता कर रहे थे तो पवनसुत हनुमान ने ही उनको सान्त्वना देते हुए कहा था।

राघौ जू! कितिक बात, तजिचिंत।
केतिक रावन-कुंभ करन दल, सुनियै देव अनंत।।
कहौ तौ लंक लकुट ज्यौं फेरौं, फेरि कहूं लै डारौं।
कहौ तौ परबत चाँपि चरन तर, नीरखार मैं गारौं।

कहौ तो असुर लंगूर लपेटौं, कहौ तो नखनि बिदारौं।।
कहौ तो सैल उपारि पेड़ि तैं, दै सुमेरु सौं मारौ।
जेतिक सैल, सुमेरु धरनि मैं, भुज भरि आनि मिलाऊँ।
सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ।।

चली जाउ सैना सब मोपर, धरौ चरन रघुवीर।
मोह असीस जगत जननी की, नवतन बज्र सरीर।।
जितिक बोल बोल्यौ तुम आगै, राम! प्रताप तुम्हारे।
'सूरदास' प्रभु की सौं साँचे, जन करि पैज पुकारे।।

वे व्याकरण शास्त्र के महान ज्ञाता थे। वह सुग्रीव के सचिव थे। हनुमान विवाहित थे कि नहीं इसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उनको ब्रह्मचारी कहते हैं। एक घटना से यह यद्यपि विवाद ग्रस्त है कहा नहीं जा सकता कि वह ब्रह्मचारी थे या नहीं। हनुमान ने लंका विजय के पश्चात जब राम के अयोध्या आने का सुसंवाद भरत को सुनाया तो हर्ष से प्रफुल्लित होकर भरत अचेत होकर गिर पड़े। भरत ने हनुमान को बहुमूल्य उपहार दिया था—

गवां शत सहस्रं च ग्रामाणां चसतम परम।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्याश्चषोडश।।
बा. रा. ६।१२८।४४

गवां शत सहस्त्रां च ग्रामाणां च शतं वरम्।
सर्वा भरण सम्पन्ना मुग्धा कन्याश्च षोडशः।।
अध्यात्म रामायण ६।१४।६१

भरत ने हनुमान को एक लाख गौएँ, एक सौ गाव एवं सुन्दर सोलह कन्यायें भार्या बनाने के लिए दिया। हनुमान ने उन्हें ग्रहण करने में कोई आपत्ति किया हो ऐसा उल्लेख नहीं है और न ग्रहण करने का ही कोई संकेत मिलता है। कहीं कहीं हनुमान के पुत्र की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न वृत्तान्त मिलते हैं। जैसे जैमिनी भारत गुजराती कथा कोश आदि के अनुसार लंका दहन के पश्चात जब हनुमान समुद्र में नहाने गए थे तब एक मछली ने उनका स्वेद पान कर लिया था जिसके कारण वह गर्भवती हो गई और उससे एक पुत्र मकरध्वज उत्पन्न हुआ। भावार्थ और आनन्द रामायण में भी ऐसा वर्णन है। अन्य कई राम सम्बन्धी कथाओ में भी ऐसे वृत्तान्त मिलते हैं। इसका कोई विश्वसनीय पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता अतः इस विषय में अधिक विस्तार पूर्वक विवेचन करना सुधीजनों पर छोड़ देते हैं। हनुमान ने हो सुग्रीव की राम के साथ मित्रता करायी। हनुमान की सुमधुर वाणी सुनकर राम विस्मित हो गए थे। वह लक्ष्मण से कहने लगे—

नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥
नूनं व्याकरण कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिद पशब्दितम्॥

वा. रा. ४।३।२८-२९

जिसने ऋग्वेद की शिक्षा न पाई हो, जिसे यजुर्वेद का ज्ञान न हो, जो सामवेद न जानता हो, वह ऐसी शुद्ध बातें नहीं कर सकता। इनको व्याकरण शास्त्र का पूरा ज्ञान है इत्यादि इत्यादि। हनुमान दोनों वीर पुरुषों राम और लक्ष्मण को अपने पीठ पर बैठाकर सुग्रीव के पास ले आये। हनुमान के प्रयास से ही राम और सुग्रीव की मित्रता हुई। बालिबध के बाद राम ने सुग्रीव को किष्किन्धा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

सीता का अन्वेषण करने के लिये सुग्रीव ने विशेष रूप से हनुमान को ही समझाया था।

विशेषेण तु सुग्रीवो हनुमत्यथ मुक्तवान्।
स हि तस्मिन् हरि श्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थं साधने ।।

वा. रा. ४।४४-१

राम भी हनुमान के बुद्धि और सामर्थ्य पर विशेष रूप से आस्थावान थे। उन्होंने अपने नाम अंकित अंगूठी को सीता का अनुसंधान करने हेतु जाते समय हनुमान को ही दिया था। जाम्बवान के प्रोत्साहित करने पर हनुमान ने अनेक संकट विपदाओं का सामना करते हुए सागर पार करके सीता अन्वेषण हेतु लंकापुरी में प्रवेश किया राम संदेशा लेकर निर्भय हनुमान ने विचार किया कि राक्षसों द्वारा रक्षित लङ्कापुरी में सीता का अन्वेषण करना रात्रि में ही सुविधा जनक होगा। सूक्ष्म शरीर धारण कर हनुमान लंका में घूम-घूम कर अन्वेषण करने लगे। अन्त में हनुमान ने जानकी को लंका के अशोक बन में वृक्ष के नीचे बैठा देखा। जनक नन्दिनी सीता को हनुमान ने राम का गुणगान करते हुए अपने आने का उद्देश्य बताया एवं अपना पूरा परिचय दिया। सीता को विश्वास दिलाने के लिए हनुमान ने राम की दी हुई अँगूठी उनको दे दिया।

जानकी को विश्वास हो गया कि हनुमान निश्चित रूप से राम दूत हैं और उन्होंने अपना चूड़ामणि उतार कर हनुमान को दिया और कहा कि इसे राम को दे देना चूड़ामणि का विस्तृत वर्णन व गुण हो सका तो किसी परवर्ती परिच्छेद में वर्णन करने की चेष्टा करेंगे। हनुमान ने लंकापुरी का दाह कर दिया। हजारों राक्षसों का वध कर डाला। इस दुर्दान्त घटनाको देखकर इन्द्रजीत मेघनाद हनुमान को बन्दी बनाकर रावण के सम्मुख उपस्थित किया। हनुमान ने रावण को सीता को वापस कर देने के लिये बहुत समझाया परन्तु गर्वोन्मत्त रावण ने हनुमान के सत्परामर्श पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। रावण ने अपने अनुचरों को हनुमान का वध करने का आदेश दिया। परन्तु विभीषण के सुझाव देने पर रावण ने हनुमान को मुक्त कर दिया। राक्षसों ने हनुमान को पकड़ कर उनके पूँछ में कपड़ा बांध कर, तेल छिड़क कर तथा पूँछ में आग लगाकर हनुमान को छोड़ दिया। सुयोग पाकर

हनुमान ने एक राम भक्त विभीषण और सीता का वासस्थान छोड़ सारी लंका को जला डाला। लंका में हाहाकार मच गया। हनुमान को शंका हो गई कि कहीं सीता जी न जल गई हों परन्तु उन्होंने एक नागरिक से सुना कि सीता का अशोक बन नहीं जला और न जानकी जलीं। वह पुनः सीता के पास गये और उन्हें सुरक्षित पाया। सीता से आज्ञा ले और प्रणाम करके राम के शिविर में वापस आ गये। हनुमान ने सीता के अन्वेषण का सुसंवाद राम को सुनाया। सीता की दुखद अवस्था का वर्णन सुन-कर अङ्गद अति उत्तेजित हो गए और तत्काल लंकापुरी में जाकर रावण को सीता को वापस करने हेतु बहुत समझाया परन्तु रावण पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। रावण की दुर्भावना से क्षुब्ध होकर उसका भाई विभीषण राम की शरण में आकर गिर गया। हनुमान को छोड़कर कोई भी राम की शरण में विभीषण को आश्रय देने को सहमत नहीं था परन्तु हनुमान की सहमति से राम ने विभीषण को शरण दिया। अन्त में राम रावण युद्ध अनिवार्य हो गया। घनघोर युद्ध आरम्भ हो गया। हनुमान ने रावण के धूम्राक्ष, अकम्पन एवं देवात्मक को मार गिराया। हनुमान ने रावण को ऐसा चपत मारा कि उसका सिर घूम गया। त्रिसरा का सिरच्छेद करके उसका भी अन्त कर दिया। रावण स्वयं युद्ध स्थान में आकर युद्ध करने लगा और अनेक बानरों को मार डाला। रावण ने अपने शक्ति अस्त्र से मार कर लक्ष्मण को मुर्छित कर दिया। लक्ष्मण धरती पर गिर पड़े। बानर वैद्य सुषेण को लक्ष्मण की चिकित्सा करने के हेतु बुलाया गया। हनुमान को द्रोण गिरि से सञ्जीवनी बूटी लाने के लिए कहा गया जिससे लक्ष्मण जीवित हो सकते हैं। पर्वत पर सञ्जीवनी बूटी को ठीक से न पहिचान पाने के कारण हनुमान द्रोणगिरि पर्वत को ही उठा लाये। लक्ष्मण को सञ्जीवनी बूटी खिलाया गया और वह जीवित हो उठे। अंत में रावण द्वारा और मेघनाद लक्ष्मण द्वारा मारे गये। राम की लंका पर विजय हुई। राम ने हनुमान को लंका विजय एवं रावण वध का शुभ संवाद सुनाने सीता के पास भेजा। सीता यह संवाद सुन-कर विह्वल हो गई और कहने लगीं—हे वानर श्रेष्ठ तुम्हारे इस

संवाद के लिए पृथ्वी पर कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तुमको उपहार स्वरूप दे सकूं। हनुमान ने कहा—हे देवि ! आपका स्नेह युक्त वचन ही बहुत है। राम का शत्रु पर विजय पाने से ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो गया और मुझे समस्त वस्तु प्राप्त हो गया। लंका से अयोध्या वापस आते समय राम कुछ समय के लिए प्रयाग समीपस्थ भरद्वाज के आश्रम में विश्राम करने हेतु रुक गये। राम ने हनुमान से कहा—हनुमान तुम अयोध्या जाकर भरत से मेरे आगमन का समाचार सुना आओ। यह संवाद सुनाने के लिए राम ने हनुमान को ही भेजा और किसी को नहीं भेजा।

हनुमानके बल बुद्धि और विद्या पर राम का अत्यधिक भरोसा रहता था। राम अयोध्या के राज सिंहासन पर अभिषिक्त हुये। राम सीता ने हनुमान को नाना प्रकार का उपहार दिया। हनुमान प्रणत होकर राम से कहने लगे –

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणा मम न संशयः॥

बा. रा. ७।४०।१६

हे धर्मज्ञ ! जब तक यह राम कथा पृथ्वी पर प्रचलित रहे, तब तक हमारा शरीर न छूटे।

राम ने कहा :—

एवमेवत् कपि श्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥

हे कपि श्रेष्ठ ! जैसा तुम कह रहे हो, वैसा ही होगा। मेरी राम कथा जब तक पृथ्वी पर रहेगी, तब तक तुम्हारे प्राण नहीं छूटेंगे।

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्योपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

हे कपि श्रेष्ठ ! तुम्हारे एक एक उपकार के बदले मैं अपने प्राण देने को तैयार हूँ। बाकी उपकारों के बदले सदा तुम्हारे ऋणी रहेंगे। यह कहकर राम ने अपने कंठ से उज्ज्वल हार उतार कर हनुमान के कंठ में डाल दिया।

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कंठात् स राघवः ।
वैदुर्यं तरलं कण्ठे ववन्ध च हनूमतः ।।

वा. रा. ७।४०।२४

राज्य सिंहासन पर बैठने के बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उसमें हनुमान ने भी योग दिया था। राम के महाप्रस्थान के अवसर पर भी हनुमान उपस्थित हुये थे।

तमेव मुक्त्वाकाकुत्स्थो हनूमन्तमथा ब्रवीत् ।
जीविते कृत बुद्धिस्त्वमा प्रतिज्ञा विलोपय ।।
मत्कथाः प्रचिरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ।
तावद्रमस्व सुप्रीतेमद्वाक्यमनु पालयन् ।।
एवमुक्तस्तु हनुमान राघवेण महात्मना ।
वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप्य च ।।
यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनो ।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।।

वा. रा. ७।१०८।३३-३६

इसके बाद राम ने हनुमान से कहा —

हे कपि श्रेष्ठ ! तुम्हारी इच्छा जीने की है, तुम अपनी प्रतिज्ञा को कभी मत भंग करना। हे वानरेन्द्र ! जब तक मेरी कथा का प्रचार रहे, तब तक तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुए आनन्द से विचरण करो। हनुमान ने कहा ! प्रभु, ऐसा ही करूँगा। समस्त हिन्दू समाज महावीर हनुमान को चिरंजीवी कहते हैं। सम्पूर्ण भारत में स्थान-स्थान पर इस परम भक्त हनुमान के प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा होती है। ऐसा अहेतुकी रामभक्त दुर्लभ है। ऐसा जितेन्द्रिय वीर पुरुष, कठोर कर्त्तव्यनिष्ठ व निष्काम कर्म के जीवन्त उज्ज्वल प्रतीक हैं। भारतवासी ऐसे राम भक्त महावीर की प्रणत श्रद्धा से नित पूजा करते हैं।

मनोजवं मारुत तुल्य वेगम्, जितेन्द्रियाम् बुद्धिमता वरिष्ठम् ।
वातात्मजम् वानरयूथ मुख्यम्, श्रीराम दूतम् सिरसा नमामि ।।

सर्वोपरि श्रीराम भक्त अंजनी नन्दन श्री हनुमान धैर्य, साहस, शौर्य और पराक्रम, दक्षता, बल, बुद्धिमत्ता, नीति और प्रभाव

प्रभृति सद्‌गुण सभो श्री हनुमान में थे। पराक्रम, उत्साह, सुशीलता, चरित्रमाधुर्य, नीति और दुर्नीति के परम ज्ञाता और अनुभवी थे। विवेक, गम्भीरता, चतुरता प्रभृति इत्यादि सद्‌गुण परम भक्त बाल ब्रह्मचारी हनुमान के अतिरिक्त और किसमे है।

हनुमान की प्रशंसा—गो० तुलसीदास।

महाबीर बिनवऊँ हनुमाना। राम जासु जस आव बखाना॥

दोहा—प्रनवऊँ पवन कुमार, खल बल पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर॥

सम दरसी मोहि कहि सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य मति सोऊ॥
पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहि समझाएहु। कहि बल ब्रिरह बेगि तुम आयहु॥
कहई रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वता कारा॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुं माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥
राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सब ही विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीति। सेवक पर ममता अरु प्रीति॥

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहूं पर रघुवीर।
कीन्हीं कृपा समुझि गुन, भरे बिलोचन नीर॥

देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥
अबहि मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहहिं रघुबीरा॥
मोहि न बाँधे कइ कछु लाजा। कीन्ह चहहुं निज प्रभु कै काजा॥
नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनी। सहसहुं मुख न जाइ सो बरनी॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई ॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी॥

पवन सुत हनुमान का जोवन वृत्त--

हनुमान जी बन्दर नहीं थे। अशोक वाटिका में वृक्ष पर बैठें हुए हनुमान को सीता ने देखा, इसका वर्णन निम्न प्रकार किया है—

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलित मानसा।
वेष्टितार्जुन वस्त्रं तं विद्युत्संघात पिङ्गलम् ॥
सुन्दरकाण्ड ३२।१

श्रीराम सुग्रीव से कहते हैं—

प्रवृत्ताः सौम्यचत्वारो मासा वार्षिक संज्ञकाः।
नायमुद्योग समयः प्रविश त्वं पुरी शुभाम् ॥
कि० २६।१४

हे सौम्य! वर्षा के चार मास आरम्भ हो गये हैं अब (सीता के लिए) कुछ उद्योग करने का समय नहीं है इसलिये तुम अपनी शुभ नगरी में प्रविष्ट होओ।

रामजी लक्ष्मण से कहते हैं—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्यमहात्मनः।
तमेव कांक्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः॥
नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ।।
वा. रा. कि. सर्ग ३

यथा हनुमान चारों वेदों के प्रकाण्ड पंडित हैं इत्यादि।

श्री लक्ष्मण ने भी हनुमान जी को विद्वान कहा था।

विदिता नौ गुणा विद्वन सुग्रीवस्य महात्मनः॥ कि. सर्ग ३

सीता का अशोक बन में दुख शोक देख हनुमान जी कहते हैं—

दुख देख सती सीता का, हनुमान रो पड़े व्याकुल।
सबसे रे काल प्रबल है, कह कर हो गये वे आकुल॥

डरें न मैं कोई राक्षस हूँ, मन में तनिक न त्रास करें ।
राम दूत हनुमान नाम है, मुझ पर कुछ विश्वास करें ।।
सिन्धु पार कर समाचार ले, पुनः लौट आये सत्वर,
सम्भव किया असम्भव को कपि, प्राण बचाए बन शंकर ।

तुम में कितना पौरुष बल है तुम कितने उपकारी हो,
केवल तुम्हीं प्रशस्त कर्म से हरिपद के अधिकारी हो ।
जय हनुमान विजय हो जय हो जय हनुमान अजर जय हो,
जय हनुमान अजर जय हो जय जय हनुमान अजर जय हो ।

कपि को खींच पुलक आँखे भर गले लगाया राघव ने,
तन स्पर्श से हनुमान का ज्ञान जगाया राघव ने ।
हनुमान के साथ वानरों ने भी जय जय कार किया,
गिरि वन ने भी राम राम जय का भारी उच्चार किया ।

क्रूर दृष्टि से इन्हें देखकर, बोला वह रे बन्दी वानर ।
यह दुःसाहस ! विपिन उजाड़ा, शठ ! तूने किससे बल पाकर ।
मारुति बोले 'लंकाधीश्वर' ! बल का मूल एक ही स्थल है,
उसे अचिन्त्य शक्ति कह लो या कह लो वह ईश्वर केवल है ।

लंका दहन में हनुमान जी के न जलने का कारण—

लंका को जलाते समय हनुमान के न जलने का कारण बताते हुए कृतिवास अपने बँगला रामायण में लिखते हैं कि उनका लंका दहन के पूर्व ही सीता ने न जलने का आशीर्वाद दिया था । इसके अतिरिक्त न जलने की सीता ने अग्निदेव से प्रार्थना भी की थी । कृतिवासी और तुलसी कृत रामायण दोनों में रावण के शक्तिवाण से लक्ष्मण का मूर्छित होना दर्शाया गया है । मानस में लक्ष्मण ही सचेत होकर रावण को घायल करते हैं ।

कृति हनुमान बले मोर किसेर बखान ।
मोर चापड़े ते बोर रहिल परान ।। लंका पृ० २०१

मानस-धिग धिग मम पौरुष धिग मोही ।
जों तैं जियत रहेसि सुर द्रोही ।। ६।८३।८

वाल्मीकि-धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण । ६।५६।६५

राम युद्ध—मानस में लक्ष्मण ही सचेत होकर रावण को घायल करते हैं। बाल्मीकि अध्यात्म और कृत्तिवासी रामायण में राम रावण का मुकुट काट कर छोड़ देते हैं। कृतिवास के अनुसार रावण शक्ति द्वारा लक्ष्मण को आहत करता है और इसके विपरीत मानस में मेघनाद द्वारा।

राम की सुग्रीव से मैत्री—

नाथ सैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तब अहई॥
एहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥
सो सीता कै खोज कराही। जह तह मरकट कोटि पठाही॥

दोहा—तव हनुमत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना—हनुमान।

सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥
बिप्र रूप धरि कपि तह गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु वन वीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु वन स्वामी॥
कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि वन आए॥
राम नाम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥
प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं वरना॥
पुलकित तन मुख आवन वचना। देखत रुचिर वेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्हीं। हरष हृदय निज नाथहि चीन्हीं॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तव माया वस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

दोहा—एकु मैं मंद मोहबस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन बन्धु भगवान॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥

ता पर मैं रघुवीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।।
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तें मम प्रिय लछिमन ते दूना।।

हनुमान का प्रभुत्व—

हौं प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि पार लै आऊँ।।
अबहीं जम्बु द्वीप इहाँ तैं, लै लंका पहुचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपिदल, छिनक बिलंब न लाऊँ।।
अब आवै रघुबीर जीति दल, तौ हनुमन्त कहाऊँ।
'सूरदास' सुभपुरी अजोध्या राघव सुबस बसाऊँ।।

रघुपति ! मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यों मरिहैं, मोको आज्ञा दीजै।।
कहौं तो सूरज उगल देउँ नहिं, दिसि दिसि बाढ़े नाम।
कहौं त गन समेत ग्रसि खाऊं, जमपुर जाइ न राम।।
कहौ तौ कालहि खंड-खंड करि, टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तो मृत्युहि मारि डारिकै, खोदि पतालहि पाटौं।।
कहौ तौ चन्द्रहि लै अकास तैं, लछिमन मुखहि निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा के सागर, जल समस्त मैं छोरौं।।
श्री रघुवर ! मोसौ जन जाके, ताहि कहा सकराई।
'सूरदास' मिथ्या नहि भाषत मोहि रघुनाथ दुहाई।।

सीता का हनुमान के प्रति संदेह—

तुम्हैं पहिचानति नाहीं बीर।
इन नैनन कबहूँ नहिं देख्यौ रामचन्द्र के तीर।।
लंका बसत दैत्य अरु दानव, तिनके अगम सरीर।
तोहि देखि मेरौ जिय डरपत, नैननि आवत नीर।।
तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्हीं, जिहिं जिय उपज्यो धीर।
'सूरदास' प्रभु लंका कारन, आए सागर तीर।

सीता को हनुमान का परिचय देना।

जानकी ! हौं रघुपति के चेरौ।
बीरा दै रघुनाथ पठायौ, सोध करन को तेरौ ॥
दस और आठ पद्म बानचर लै चाहत गढ़ घेरौ।
तिहरे कारन स्याम मनोहर निकट दियौ है डेरो ॥
अब जिन सोच करौ मेरि जननी ! जनम-जनम हौं चेरौ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन कौ, सारद रंक कित फेरौ ॥

हनुमान द्वारा राम सुग्रीव की मित्रता—

भाई से होकर भीत कपीश्वर छिपा रहा जब बन में।
निज जीवन की कुछ भी आशा रही न उसके मन में।
तब हनुमन ! रघुबर से उसको तुमने तुरत मिलाया।
बैरी हीन कराया उसको, गया राज दिलवाया ॥

राम खोजते थे सीता को बन में जब अकुला के।
वहीं मिले तुम उनसे आकर द्विज का रूप बना के।
अभिज्ञान भी सीता का कपि ! तुमने उन्हें दिया था।
थे हताश वे पर आशान्वित तुमने उन्हें किया था ॥
कपि करि हृदय बिचारि, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार मंह दीन्ह हरषि उठिकर गहेउ।

सीता जी अंगूठी उठाकर क्या देखती हैं :—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥

इधर हनुमान जी क्या करते हैं।

रामचन्द गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥
श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रकट होत किन भाई ॥

उत्तर में हनुमान जी कहते हैं।

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना निधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम्ह कह सहिदानी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥
जनि जननी मानहुं जिय ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कै दूना ॥

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखउ करि विचार मन माहीं॥

भरत जी हनुमान जी से कहते हैं—

चढ़ मम सायक सैल समेता। पठवऊँ तोहि जहँ कृपा निकेता॥
सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलहि किमि बाना॥
राम प्रभाव विचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥
हनूमान सम नहिं बड़ भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

अशोक वाटिका में सीता के साथ साक्षात्कार करते समय हनुमान की बुद्धि का विलक्षण परिचय मिलता है।

कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहँ सकल भए विपरीता॥
नवतरु किसलय मनहुं कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय विपिन कुंत बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा॥

हनुमान जी कहते हैं—

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
नाहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुं पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत गयऊ॥

सीता का चूड़ामणि लाकर दिया राम को तुमने।
जिसे राम ने कहा किया कपि, उसी काम को तुमने।
कोई कार्य कभी स्वामी का, किया न कच्चा तुमने।
स्वामि भक्ति का पाठ पढ़ाया, सब को सच्चा तुमने॥

हनुमान जी ने चूड़ामणि लाकर श्रीराम जी को दिया। श्रीराम पूछते हैं?

कहहु तात केहि भांति जानकी। रहति करति इच्छा स्वप्रान की॥

श्री हनुमान जी कहते हैं—

दोहा—नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥

लक्ष्मण को जब लगी शक्ति तब तुम्हीं बैद्य को लाये।
औषधि को भी लाकर तुमने उनके प्राण बचाये।
हनुमन! जो होते न, तुम जीते लक्ष्मण कैसे।
प्राण के साथ राम भी रिपु से कर लेते रण कैसे।

राम संदेसा लेकर निर्भय चले गये लंका में।
तुम्हें देखकर भीता सीता मग्न हुई शंका में।

तो भी वृत्त मधुर रघुवर का तुमने उन्हें सुनाया।
और मुद्रिका देकर उनके भ्रम को दूर कराया॥
रघुबर के सुग्रीव विभीषण यद्यपि दास सही थे।
पर तुम्हरे से वे हनुमान स्वार्थ विहीन नहीं थे॥

हनुमान का अद्भुत शौर्य—

जामवन्त ने कहा था।

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥
नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनो। सहसहुं मुख न जाइ सो बरनो॥

स्वयं भगवान राम ने भी कहा था।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखउँ करि विचार मन माहीं॥

स्वयं शिव जी ने भी हनुमान की सराहना की थी—

हनुमान सम नहि बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

लक्ष्मण से तुम कभी न कम थे रामाज्ञा के प्रेमी।
इन्द्रिय निग्रह में भी उनसे तुम न न्यून थे नेमी।

लक्ष्मण दक्षिण वाहु राम के थे, बाया कर तुम थे।
जल वाहक लक्ष्मण थे उनके, पर छाया कर तुम थे।
जैसे जैसे काम राम के तुमने किये कपीश्वर।
उनका वर्णन ठीक ठीक कर सके न आदि कवीश्वर।
कपे! आपकी बल प्रज्ञा का कुछ भी अन्त नहीं था।
त्रिभुवन में भी कोई तुमसा सच्चा सन्त नहीं था।
भाई से होत भीत कपीश्वर, छिपा रहा जब बन में।
निज जीवन की कुछ भी आशा रही न उसके मन में।
तब हनुमन! रघुवर से उसको तुमने तुरत मिलाया।
वैरी हीन कराया उसको, गया राज दिलवाया।
राजनीति में तुमसे हनुमन! लंकेश्वर भी हारा।
काल नेमि आदिक क्रूरों को तुमने लड़कर मारा।
तुम्हें कठिन से कठिन कार्य भी सहज जान पड़ता था।
वैसा करते थे जब जैसा समय आन पड़ता था।
राम खोजते थे सीता को बन में जब अकुला के।
वहीं मिले तुम उनसे आकर द्विज का रूप बना के।
अभिज्ञान सीता का कपि! तुमने उन्हें दिया था।
थे हताश वे पर आशान्वित तुमने उन्हें किया था।
भेद नीति के सहित विभीषन को भी खूब मिलाया।
राम चरण पर उसे गिराकर लंका राज्य दिलाया।
क्या ऐसी ही कार्य कुशलता हो सकती है पर में।
इसीलिये तुम पूज्य हुए हो हनुमन बसुधा भर में।
बन्धन पाकर धन्य, राम के लिए हँसे तुम रण में।
रावण गर्व नष्ट कर तुमने नगर जलाया क्षण में।
फिर सीता से मिलकर सागर के उत्तर तट आये।
वीर शिरोमणि! कपि ऋक्षों से बहु विधि मिले मिलाये।
अवधि निकट में वैठ भालु कपि चिन्ता मग्न हुए थे।
वारिधि को तरने में वे सब आशा भग्न हुए थे।
उसी समय हो गये खड़े तुम हनुमन! कटि कस करके।
विगत शोक कर उन्हें, चले तुम लंका को हँस करके।

रामा गमन भरत से तुमने कहा दौड़ कर आगे।
सुनकर उसे भरत के मन से शोक दुःख सब भागे।
सुनि प्रिय बचन तुम्हारे मुख से उनके दृग भर आये।
तुमको कंठ लगाकर हनुमन राम मिलन सुख पाये।
यों ही जब जब राम भरत आदिक् को हुई निराशा।
हनुमन! तब तब उनका तुमने संग दिया है खासा।

स्वामि भक्त या मित्र सहायक कौन तुम्हारे सम है।
और तुम्हारे तुल्य वायुसुत किसमें सम है दम है।
रघुबर के सुग्रीव विभीषण यद्यपि दास सही थे।
किन्तु तुम्हारे से वे हनूमन स्वार्थ विहीन नहीं थे।

एक राम थे इष्ट तुम्हारे जीवन धन सुख दाता।
उन्हें छोड़कर और किसी से न था तुम्हारा नाता।
किन्तु कौन तुम किस कारण से मुझे अचानक मारा?
सत्य कहो कि हुआ है मुझसे कुछ भी अहित तुम्हारा?
लक्ष्य बेध पर वीर तुम्हारे बार बार बलिहारी।
पर अविचार अदूर दर्शिता पर है दुख भी भारी॥

जिस विधि ने इतना बल साहस तुम्हें अपार दिया है।
उसने क्यों न विवेक बुद्धि वर विमल विचार दिया है।
सच है विना सुयोग्य सचित के समुचित मंत्र बताये।
छोटे बड़े सभी को होता अहंकार पद पाये।

मुझे नहीं अपने मरने का कुछ भी दुख है भाई।
पर न लखन के बिना जियेंगे पल भर भी रघुराई।
फिर कौन छुड़ायेगा सिय को रावण के बन्धन से।
यह कहते कहते मारुति के आँसू ढुरे नयन से।

सुनकर भरत हुए शोकाकुल सकरुण कपि को वाणी।
हा तन आया काज न प्रभु के यों ही आयु सिरानी।
हुआ अनर्थ हाथ से मेरे अहो व्यर्थ का कैसा।
हो सकता न किसी सज्जन से कभी स्वप्न में जैसा।

असमय बन्धु बिहीन राम को हा मैंने कर डाला।
कैकेयी सम्भव है इस तन नियम यथा बिधि पाला।

उठो उठो हे वीर महाकपि कुछ तो धीर बँधाओ।
राम लखन सीता की चर्चा तनिक सप्रेम सुनाओ।
बोलो बोलो मधुर बचन कुछ नयन नलिन दल खोलो।
फिर ले यह गिरि नभ मंडल में बाहु तुला पर तोलो।
अयश सिंधु में मुझे न तजकर जाओ वीर अकेला।
अब न सहा जायेगा पल भर लोक प्रपंच झमेला।
बोले हो सचेत धीरे से गिरा श्रवण सुखदाई।
भरत तुम्हीं हो भरत धर्मधुर रघुबर के प्रिय भाई।
दुख निदास में सुरतरु छाया शाश्वत मुझे मिली है।
चिन्ता तरल तुषार धार में मानस कली खिली है।
कहाँ द्रोण गिरि मूल सजीवन कहाँ अवध अघनासी।
कहाँ निरंकुस निपट नीच हम कपि पंपासुर वासी।
रघुपति कृपा सुलभ शुभ दर्शन हुआ पुनीत तुम्हारा।
यह कहकर कुछ सोच दृगों में बही प्रेम जलधारा।
कहा भरत ने धन्य पवन सुत है अनुकूल विधाता।
सो तुम हुए सचेत सुतवती हुई सुमित्रा माता।
प्रभु प्रसाद सब कार्य असम्भव सम्भव कर सकता हूं।
मेरु बाँध सकता हूं पल में सागर तर सकता हूं।
चिंता नहीं लखन की अब कुछ मन में धीरज धारो।
उठो उठो हे वीर बाहु पर अपने शैल संभारो।
राम भक्त का क्या कोई अनभल कर सकता है?
असफल कभी देव बल को, क्या पशु बल कर सकता है?
अतः सशैल वीर आ मेरे बैठ बाहु पर जाओ।
प्राणाधिक प्रिय बन्धु लखन के सत्वर प्राण बचाओ।
हा! धिक पामर प्राण व्यर्थ ही तन का भार बना है।
आया तनिक न काम राम के लोक प्रपंच सना है।
उपकारों के भार पवनसुत मुझ पर अधिक तुम्हारे।
हो सकता न उतृण उससे मैं युग युग जीवन धारे।
अच्छा अब अविलम्ब पधारो मिलन भूल मत जाना।
प्रभु को अवध अवधि की सुस्मृति सादर सतत सुनाना।

बोले सजल नयन मारुति तब प्रेम मगन मन बाणी।
धन्य भरत हैं नहीं जगत में उपर आप सा प्राणी।
वार बार करते हैं निज मुख जिसकी आप बड़ाई।
जिसकी सुधि कर भर लेते हैं दृग जल दोनों भाई।

माताओं से मत कहियेगा मेरी मिलन कहानी।
आकर स्वयं कहेंगें सकुशल लखन लाल मृदु बानी।
अच्छा नाथ प्रणाम कृपा हो अधिक नहीं अवसर है।
जाना दूर शैल वन दुर्गम सागर भी दुस्तर है।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपा निधाना ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोहि राम पिरोते ॥

दोहा—भरत चरन सिर नाइ तुरत, गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि, चलेउ प्रभु जान चढ़ि।

ए हो हनू कह्यो श्री रघुवीर कछु सुधि है सिय की जग माही।
हे प्रभु लंक कलंक बिना, सो क्यों न मरी हमते बिछुराही।
जीवित है ? कहबोइ को नाथ,सो क्यों न मरी हमते बिछुराही।
प्राण वसे पद पंकज में, यम आवत है पर पावत नाहीं।

दोहा—नाम पाहरु दिवस ! निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन पद निज जंत्रित प्राण जाई केहि बाट।

महावीर विनवऊँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना ॥

दोहा प्रनवउँ पवन कुमार, खल बल पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रकट प्रीति उरलाई ॥
तव रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लक्ष्मन ते दूना ॥
सम दरसी मोहि कहि सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥
पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ॥
बहु प्रकार सीतहि समझायहु। कहि बल विरह बेगि तुम आयहु ॥

कहई रोछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
यह कहि नाइ सबन्हि कह माथा।चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥
राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं ॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो काल दिखाई ॥
सुनहु बिभीपन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही विधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनू, मोहूं पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा समुझि गुन, भरे विलोचन नीर ॥

देखि परम विरहा कुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥
अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहों राम दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहहिं रघुवीरा॥
मोहिं न बाँधे कइ कछु लाजा। कीन्ह चहहु निज प्रभु कै काजा ॥
नाथ आज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन कै आना ॥
नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनी। सहसहु मुख न जाइ से बरनी ॥
कह हनुमत विपनि प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई ॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी।नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होई न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि विचार मन माहीं ॥
राम प्रभाव विचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरि ॥

दोहा—राम विरह सागर मह, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत ॥

हनुमान सम नहि बड़ भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥

गवां सत सहाश्राणाम् ग्रामाणां च शत वरम्।
सर्वा भरण सम्पन्ना मुग्धाः कन्याश्च षोडषः ॥
गवां शत सहाश्राणाम् ग्रामाणाम् च शतं वरम्।
च कुण्डला शुभाचार्यो भार्या कन्यश्च षोडषः ॥
रामे वुवति राजेन्द्र सीतां त्यक्तुं कृतोद्यमे।
ततो भरत शत्रुघ्नै गृहं स्वयं स्वगच्छताम् ॥

जामवंत के वचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंदमूल फल खाई ॥
जब लगि आवौं सीतहिं देखी। होइहि काज मोहि हरष विशेखी ॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुं माथा। चले हरषि हिय धरि रघुनाथा ॥
जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता। सो चलि गयउ पताल तुरन्ता ॥
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ॥
प्रविसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा ॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि हनुमाना ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तह भिन्न बनावा ॥
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन करि वासा ॥
मन महुं तहक करैं कपि लागा। तिही समय विभीषनु जागा ॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
विप्र रुप धरि वचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तह आए ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥
नव हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहहुं जानकी माता ॥
देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहिं कलप सम बीता ॥

दोहा—कपि करि हृदय बिचारि, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥
जनि जननी मानहुं जिय ऊना। तुम्ह ते प्रेम राम कै दूना ॥
कहेउ राम वियोग तब सीता। यो कहुं सकल भए विपरीता ॥
नव तब किसलय मनहुं कृसानू। काल निसा सम निशि ससि भानू ॥
कुवलूय विपिन कंत बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
कहेहु ते कछु दुख घटि होई। काहि कहहुं यह जानि न कोई ॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहि। तिहु पर नारदादि जसु गैहहैं ॥

हनुमान द्वारा सीता-समाधान :—

जननी ! हौं अनुचर रघुपति को।
मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठगमति कौ ॥
आज्ञा होइ, देउं कर मुंदरी, कहौं संदेसो पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय रघुबर, हतिहैं कुल दैयत कौ ॥

कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कौ तौ मारि-संहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ॥
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊं तुम्है 'सूर' प्रभु, राम-रोष डर अति कौ॥

सीता द्वारा हनुमान को प्रशंसा :—

हनुमत ! भली करी, तुम आए।
बारंबार कहति बैदेही, दुख-संताप मिटाए॥
श्री रघुनाथ और लछिमन के समाचार सब पाए।
अब परतीति भई मन मेरं, संग मुद्रिका लाए॥
क्यों करि सिंधु पार तुम उतरे, क्यों करि लंका आए।
'सूरदास' रघुनाथ जानि जिय, तब बल इहाँ पठाए॥

कहौ कपि ! कैसे उतरें पार ?
दुस्तर अति गंभीर बारि निधि, सत जोजन बिस्तार।
इत-उत दैत्य क्रुद्ध मारन कौं, आयुध धरें अपार।
हारकपुरी कठिन पथ बानर, आए कौन अधार ?
राम-प्रताप सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार।
तिहि अधार छिन मैं अवलंघ्यो, आवत भई न बार॥
पृष्ठ भाग चढ़ि जनक-नन्दिनी, पौरुष देख हमार।

सीता का संताप देखकर हनुमान रो पड़े :—

दुख देख सती सीता का, हनुमान रो पड़े व्याकुल।
सबसे रे काल प्रबल है, कह कर हो गये आकुल॥
डरें न मैं कोई राक्षस हूँ, मन में तनिक न त्रास करें।
राम दूत हनुमान नाम है, मुझ पर कुछ विश्वास करें॥
सिन्धु पार कर समाचार ले, पुनः लौट आये सत्वर।
सम्भव किया असम्भव को कपि, प्राण बचाए वन शंकर।
तुममें कितना पौरुष बल है, तुम कितने उपकारी हो।
केवल तुम्हीं प्रशस्त कर्म से, हरि पटके अधिकारी हो।

हनुमान का अनुपम पराक्रम :—

लंका हनूमान सब जारी।
राम-काज, सीता की सुधि लगि, अंगद-प्रीति बिचारी॥

जा रावन की सकति तिहूं पुर, कोउ न आज्ञा टारी।
ता रावन के अछत, अछयसुत सहित सैन संहारी ।।
पूंछ बुझाइ गए सागर तट, जह सीता की बारी।
कर दंडवत, प्रेम पुलकित ह्वै, कह्यौ सुनि राघव-प्यारी ।।
तुम्हरेहिं तेज प्रताप रही बचि, तुम्हरी यहै अटारी।
'सूरदास' स्वामी के आगे, जाइ कहौ सुख भारी ।।

हनुमान की प्रशंसा : –

जगत में जन्म जो न हो तो हनुमान जी की,
असुर समूह को समूल ही मिटाता कौन ?
दुख और दुरित दूरि करि साधु संतन के,
लोक परलोक दोनो सुखद बनाता कौन ?
परम पुनीत दीर्घ जीवन को देनहार,
ब्रह्मचर्य व्रत के महत्व को बढ़ाता कौन ?
अति ही कुटिल कलिकाल के कुचालियों को,
'लल्लन' श्रीराम भक्ति मारग दिखाता कौन ?

हनुमान की बन्दना :—

ऐसो ओज सुजस विराजै महि मण्डल में,
परम प्रचण्ड तनु तेज भूरि भान को।
जाकी कल कीरति बखाने राम आप मुख,
सेष हू नगाइ सकैं जाके गुनगान को।
रसिक बिहारी सुखदायक सदा ही बीर,
दूजो जनपाल दानी करुणा निधान को।
दीनन को भाता, मोह मंगल बिधाता,
बहु रिधिसिधि दाता बन्दौं नाम हनुमान को ।।

हनुमान का लंका दहन :—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कीधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तखारि सो उघारी है।

तुलसी सुरेस चाप, कीधौं दामिनी कलाप,
केधौं चली मेरु से कृसानु सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजर्‌यो अब नगर प्रजारी है॥

साँचो एकं नाम हरि लीन्हें सब दुःख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाए हैं।
बानर न होहु तुम मेरे मानरस सम,
बलीमुख सूर बलीमुख निज गाये हैं॥

साखा मृग नाहीं बुद्धिबलन के साखामृग,
केधौं वेद साखामृग के सबको भाए हैं।
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम,
गए एक काज को अनेक करि आए हैं॥

आपन जठ आगि बड़वागि सागर कऽ.
बन कऽ दवागि आगि आगि में मिलाइ देब।
एहरउ से आगि रहे ओहरउ से आगि रहे,
आगि बनि अगिया में अगिया लगाइ देबऽ॥

कहले पवन सुत कतउ न मिले जौ आगि,
सूरुज़ के तोरि तारि फोरि के गिराइ देब।
एक अंगरा के बदे माई मोरि तरसली,
सारो नगरी के हम अंगरा बनाइ देब॥

बढ़लें पवन सुत बढ़ि के अकास भइलें,
घूँसा मारि रवि में बजाइ देलें डंका।
सूरुज लोकात जालें उपरइं परात जालें,
फेरि लीलि जाइ न भइल मन संका॥

धरती दवाइ देलें गगन उठाइ लेलें,
वाह-वाह-वाह अंजनी के बीर बंका।
बाप ओनचास हाँथ बेटवा पचास हाँथ,
बाप पूत मीलि के झउँसि देलें लंका॥

हनुमान का साहस ।

जौ पै राम रजा हौं पाऊँ ।
करौं संक लंक गढ़ की कछु, सागर खोद बहाऊँ ।।
बढ़ सरीर, पेट परिमि कर, सकल कटक पहुँचाऊँ ।
कहौ तो रावन कुल समेत सब विधिहिं चरन तर लाऊँ ।।
हौं सेवक हरि ! ऐसौ तुम्हरौ, निज मुख कर का गाऊँ ।
सुर और असुर सबै जुर आवैं, रन नहि पीठ दिखाऊँ ।।
रावन मारि, सिया घर लाऊँ, तुम्हरौ दास कहाऊँ ।
'सूरदास' मुख हो सौं कहि हौं, तुमहो आन दिखाऊँ ।।

हनुमान का संकल्प :—

जौ हौं नैक रजायसु पाऊँ ।
तौ दस सीस बीस पेंड़े करि काटि जानकी लाऊँ ।।
बिना कहे अंकुस मेरे सिर, तातैं करत न आगी ।
बात उठाय धरौं नहि राखौं और दितन कौं लागी ।।
अजहूं जो तुम कहौ कृपानिधि, तौ छिन भीतर मारौं ।
आप जिवब कत इतनि बात कौं तुमही का करौं पारौं ।।
तू बल बीर धीर अंतक सम, अरु सबहीं बिधि लायक ।
राख्यो न्यैंति बहुत दिन ते यह छुधा-कंप अति सायक ।।
जाको रस एकहि मन मो तन आदि मध्य अरु अंत ।
इहाँ हू की सब लाज हमारी तो लागी हनुमन्त ।।
संग्या समै लोन जुत कीन्हीं छाड़ौ कछु नहोवैं ।
'सूर' समुद्र इतनि मागैं जाउँ, यह कृत मोही कीवैं ।।

कैसे पुरी जरीं कपिराइ ।
बड़े दैत्य कैसे के मारे, अंतर आप बचाइ ?
प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे ।
तैंतीस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुम सों क्यों हारे ।।
तीनि लोक डर जाके काँपैं, तुम हनुमान न पेखे ?
तुम्हरें क्रोध श्राप सीता कें, दूरि जरत हम देखे ।।
हौ जगदीस, कहा कहौं तुम सौं, तुम बल-तेज-मुरारी ।
'सूरदास' सुनो सब संतो ! अबिगत की गति न्यारी ।।

कहियौ कपि ! रघुनाथ राज सौं, सादर यह इक बिनती मेरी।
नाहीं सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी ।।
यह तौ अंध बीस हूं लोचन, छल-बल करत आनि मुख हेरी ।
आइ शृगाल, सिंह बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी ।।
जिहि भुज परसुराम-बल करष्यौ,ते भुज क्यौं न सँभारत फेरी।
'सूर' सनेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाइ जानकी चेरी ।।

रावन से गहि कोटिक मारौं ।
जो तुम आज्ञा देहु कृपा निधि ! तौ यह परिहस सारौं ।।
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊं, कहौ तौ लंक बिदारौं ।
कहौ तौ अबहीं पैठि, सुभट हति, अनल सकलपुर जारौं ।।
कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि, एकहिं एक पछारौं ।
कहौ तौ तुम प्रताप श्रीरघुबर, उदधि पखाननि तारौं ।।
कहौ तौ दसौ सीस, बीसो भुज, काटि छिनक मैं डारौं ।
कहौ तौ ताकौं तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौं ।।
कहौ तौ सैना चारु रचौं कपि, धरनी ब्योम - पतारौं ।
सैल-सिला-द्रुम बारषि ब्योम चढ़ि, सत्रु-समूह संहारौं ।।
बार बार पद परसि कहत हौं कबहूं प्रभु नहिं हारौं ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे बचन लगि, सिव-बचननि कौं टारौं ।।

फारि डारि डारौं कुंभकर्नहि, बिदार डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यौं बल अनन्त हौं ।
कहै 'पदमाकर' त्रिकटहूं को ढाहि डारौ,
डारत करेई जातु धान को अन्त हौं ।
अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उजारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन को कछुवै न संत हौं ।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावनै तो मैं हनुमन्त हौं ।।

सातो समुद्र घरी बसुधा यह सातो गिरीस धरे सब ओरे ।
सात ही दीप सबै दरम्यान में होहिंगे खंड किते तेहि ठोरे ।
'दास' चतुर्दस लोक प्रकासित है ब्रहमांड इको सहि जोरे ।
एते ही में भजि जैहै कहाँ खल श्री रघुनाथ सो बैर बियोरे ।

स्वस्थ हुए तब हनूमान ने राम कथा इस भाँति सुनाई।
जिसने कुल की नाक कटाई, जिसके कानों सीख न भाई।
उस नारी ने नाक कान खो, लंका - जय की राह बताई।
छल साधा जग विद्रावण ने, सीता हरण किया रावण ने।
अनायास इस भाँति रचाई राम और सुग्रीव मिताई।
किष्किंधा-गृह-कलह बचाने, छिप कर प्रभु ने शर संधाने।
उत्तर दक्षिण एक बनाने, बालि रूप आपत्ति हटाई।
खोज मिली सीता की ज्यों ही, लंका दहन हो गया त्योंही।
धाक उड़ी रावण की जग से, दनुज-कुलों में फूट समाई।
न्याय विभीषण को यों भाया, प्रभु की शरण अन्त वह आया।

रघुपति ! जो न इन्द्रजित मारौं।
तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ, जो न प्रतिज्ञा पारौं ॥
यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू ! एकहिं बान निवारौं।
सपथ राम परताप तिहारे, लंक खंड करि डारौं ॥
कुंभकरन, दससीस बीसभुज, दानव-दलहि बिदारौं।
तबै 'सूर' संधान सफल हौं, रिपु कौ सीस उतारौं ॥

सोचि जिय पवन-पूत पछिताइ।
अगम अपार सिंधु दुस्तर तरि, कहा कियौ मैं आइ ॥
सेवक कौ सेवापन एतौ, आज्ञाकारी होई।
बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहैं लोई ॥
वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोई।
या भयभीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होई ॥
इतनी कहत गगन बानी भइ, हनू ! सोच कह करई।
चिरंजीवि सीता तरुवर तर, अटल न कबहूँ टरई ॥
फिरि अवलोकि 'सूर' सुख लोजै, पुहुमी रोम न परई।
जाके हिय अंतर रघुनन्दन, सो क्यों पावक जरई ॥

सीता अन्वेषण के बाद हनुमान की लंका से प्रत्यागमन के समय सीता से अपने भेंट के प्रमाण-हेतु चिन्ह माँगना जो राम को दिखा सकें :—

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ ॥
कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा ॥
दीन दयाल विरद संभारी। हरहु नाथ मम संकठ भारी ॥
नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के माना ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेखा ॥
नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनी। सहसहुं मुख न जाइ सो बरनी ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति इच्छा स्वप्रान की ॥

सीता संदेश श्रीराम के प्रति :—

यह गति देखे जात, संदेसौ कैसे कै जु कहौं ?
सुनु कपि, अपने प्रान कौ पहरौ, कब लगि देति रहौं ?
ये अति चपल, चल्यौ चाहत हैं, करत न कछू विचार !
कहि धौं प्रान कहाँ धौं राखौं, रोकि देह मुख द्वार ?
इतनी बात जनावति तुम सौं, सकुचति हौं हनुमंत !
नाहीं 'सूर' सुन्यौ दुख कबहूं, प्रभु करुनामय कंत ॥

जानकी ! मन संदेह न कीजै।
आए राम-लखन प्रिय तेरे, काहे प्राननि दीजें।
जामवंत, सुग्रीव, बालिसुत, आए सकल नरेस।
मोहि कह्यौ तुम जाहु खबरि कौं, अब जिनि करहु अंदेस ॥
रावन के दससीश तोरि कें, कुटुंब समेत बहैहौं।
तैतिस कोटि देवता बंधन, तिनहि समस्त छोड़ैहौं।
आयसु दीजै मातु ! मोहि अब, जाइ प्रभुहि लै आऊँ।
'सूरदास' हौं जाइ नाथ पह, तेरी कुसल सुनाऊँ ॥

तू जननी ! अब दुख जनिमानहि।
रामचन्द्र नहि दूर कहूं, पुनि भूलिहुं चित चिंता नहिं आनहि।
अबहि लिवाइ जाउँ सब रिपु हति, डरपत हौं आज्ञा-अपमानहि ॥
राख्यौ सुफल सँवारि, बान दें कैसे विफल करौं वा बानहि ?
है केतिक ये तिमिर निसाचर उदित एक रघुकुल के मानहि।
काटन दें दससीस बीस भुज, अपनो कृत येउ जो जानहि ॥
देहि दरस सुभ नैननि कह प्रभु, रिपु कौं नासि सहित संतानहि।
'सूर' सपथ मोहि, इनहि दिननि मैं लेजु आइहौ कृपा निधानहि ॥

ए हो हनु कह्यो श्री रघुवीर, कछु सुधि है सिय की जगमाहीं।
है प्रभु लंक कलंक बिना, सो बसै तह रावण बाग की छाहीं।
जीवित है? कहवोई को नाथ, सो क्यों न मरी हमते बिछुराहीं।
प्राण बसे पद पंकज में, यम आवत है पर पावत नाहीं।

दोहा—नाम पाहरू दिवसि निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन पद निज जंत्रित, प्राण जाइ केहि बाट॥

रघुबर बेगि जतन अब कीजैं।
बाँधउँ सिंधु सकल सैन मिलि, आपनु आयसु दीजै।
तौं लौं तुरत एक तो बाँधौं, द्रुम पाषाननि छाई।
द्वितीय सिंधु सिय नैन नीर ह्वै, जौं लों मिलै न आई।
यह बिनती हौं करौं कृपा निधि, बार बार अकुलाई।
'सूरदास' अकाल प्रलय प्रभु, मेटो दरस दिखाई।

राघव जी कितिक बात तजि चित।
केतिक बात रावण कुंभ करण दल, सुनिये देव अनन्त।
कहो तो लंक चांपि चरण वर, दै समुद्र में गारौं।
कहो तो लंक लकुटि लौं फेरौं, फेरि लकुटि लौं डारौं।
कहो तो लंक उखाड़ि शैल तें, दै समुद्र में डारौं।
जेतहि शैल सुमेरु धरनि पर, भरि भुज आन मिलाऊँ।
सात समुद्र चापि छाती तर, एतहि देह बढ़ाऊँ।
चढ़ी जाय सब सैन देह पर, चरण धरौं रघुबीर।
मोहि असीस जगत जननी की, मुड़ै न बज्र शरीर।
जितिक बात बोल्यो तुम आगे, राम प्रताप तुम्हारे।
'सूरदास' प्रभु की सौं सांचे, जन करि पैज पुकारे।

मैं परदेसिन नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।
रावन भेष धर्यो तपसी को, कब मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़-मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसे दवद्रुम-बेली।
'सूरदास' प्रभु बेगि मिलावो, प्रान जात हैं खेली॥

सीता का चूड़ामणि-प्रदान करना—

मेरी केतिक बिनती करनी।
पहिलें करि प्रनाम, पाइँनि परि, मनि रघुनाथ-हाथ लैं धरनी।
मंदाकिनि-तट-फटिक-सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी।
कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी॥
तुम हनुमंत, पवित्र पवन-सुत, कहियौ जाइ जोइ मैं बरनी।
'सूरदास' प्रभु आनि मिलावहु, मूरति दुःख-भय-हरनी॥

सीता संदेश श्रीराम के प्रति :—

यह गति देखे जात, संदेसौ कैसें कै जु कहौं?
सुनु कपि! अपने प्रान कौ पहरौ, कब लगि देति रहौं?
ये अति चपल, चल्यो चाहत हैं, करत न कछु बिचार।
कहि धौं प्रान कहाँ लौ राखौं, रोकि देइ मुख द्वार?
इतनो बात, जनावति तुम सौं, सकुचति हौं हनुमंत।
नाहीं 'सूर' सुन्यौ दुख कबहूं, प्रभु करुनामय कंत॥

हनुमान जी श्रीराम के पास आए :—

श्रीराम पूछते हैं?

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति इच्छा स्वप्रान की॥

दोहा—नाम पाहरु दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं। रघुपति हृदय भाइ सोइ लीन्हीं॥

श्रीराम हनुमान से कहते हैं :—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि बिचार मन माहीं॥

रघुपति, बेगि जतन अब कीजै।
बाँधै सिंधु सकल सेना मिलि, आपनु आयसु दीजै॥
तब लौं तुरत एक तौं बाँधो, द्रुम पाखाननि छाई।
द्वितिय सिंधु सिय नैन नीर ह्वै, जब लौं मिलै न आई॥

दोहा—यह बिनती हौं करौं कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ।
'सूरदास' अकाल प्रलय प्रभु, मेरो दरस दिखाइ॥

मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता॥

दोहा—राम पदारबिन्द सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जातु पवन सुत लेन॥

हनूमान संजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं, हाथ जोरि सिर नायौ॥
परबत आनि धर्‍यो सागर तट, भरत संदेस सुनायौ।
'सूर' संजीवनि दै लछिमन कौं, मूर्छित फेरि जगायौ॥

श्रीमुख आपुन करत बड़ाई।
तूँ कपि आज भरत की ठहर, जिहिं मिलि बिपति बटाई॥
लछिमन होत मूरि लै आयौ, लांघत अगनित घाटी।
दसहूं दिसा भयो हम कारन बौछाहर की टाटी॥
तूँ सेवक स्वामी तोही बल, सो तजि और न मेरं।
निधरक भए मिटी दुचिताई, सोवत पहरैं तेरैं।
इतनीं सुनत दौरि पद टेके, अरु मन-ही-मन फूल्यौ॥
पिता मरन कौ दुःख है यारौ, तोही ते सब भूल्यौ।
जु कछू करोसु प्रताप तुम्हारैं, हौं को करिबे लायक।
'सूर' सेवकहि इती बड़ाई, तुम त्रिभुवन के नायक॥

लंका दहन—

मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचार्‍यौ।
राजन कह्यौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मार्‍यो॥
इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधू पाइन परौं।
यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि, अब नइ काहु करौ॥
हरी बिधाता बुद्धि सबनि की, अति आतुर ह्वै धाए।
सन अरु सूत, चीर-पाटंबर, लै लंगूर बँधाए॥
तेल तूल पावक-पुट धरिकै देखन चहैं, जरौ।
कपि मन कह्यो भलो मति होनी, रघुपति काज करौं॥
बंधन तोरि मोरि मुख असुरनि ? ज्वाला प्रगट करी।
रघुपति चरन प्रताप 'सूर' तब, लंका सकल जरी॥

सोचि जिय पवन-पूत पछिताइ।
अगम अपार सिंधु दुस्तर तरि कहा कियौ मैं आइ ॥
सेवक कौ सेवा पन एतौ, आज्ञाकारी होइ।
बिनु आज्ञा मैं भवन पधारे, अपजस करिहैं लोइ ॥
वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरगामो सोइ।
या भयभीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होइ ।
इतनी कहत गगन बानी भइ, हनू ! सोच कत करई।
चिरंजीवि सीता तरुवर तर, अटल न कबहूं टरई ॥
फिरि अवलोकि 'सूर' सुख लीजै, पुहुमी रोम न परई।
जाके हिय अंतर रघुनन्दन, सो क्यों पावक जरई ॥

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनन्दन जी को।
को रघुनन्दन रे ? त्रिसिरा - खरदूषन - दूषन भवन भू को ॥
सागर कैसे तऱ्यो ? जस गोपद काज कहा? सिय चोरहि देख्यो।
कैसे बँधायो ? जू सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेख्यो ॥

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि ? न जानिये।
कांख चाँपि तुम्हें जो सागर सात नहात बखानिये ॥
है कहाँ वह ? बीर अंगद देव लोक बताइये।
क्यों गयो ? रघुनाथ बान बिमान बैठि सिधाइये ॥
किन्तु कौन तुम किस कारण से मुझे अचानक मारा ?
सत्य कहो कि हुआ है मुझसे कुछ भी अहित तुम्हारा ?
लक्ष्य बेध पर बीर तुम्हारे बार-बार बलिहारी।
किन्तु अविचार अदूर दर्शिता पर है दुख भी भारी।
जिस विधि ने इतना बल साहस तुम्हें अपार दिया है।
उसने क्यों न बिबेक बुद्धि वर विमल विचार दिया है।
सच है बिना सुयोग्य सचिव के समुचित मंत्र बनाये।
छोटे बड़े सभी को होता अहंकार पद पाये।
मुझे नहीं अपने मरने का कुछ भी दुख है भाई।
पर न लखन के बिना जिये पल भर भी रघुराई।
फिर कौन छुड़ाएगा सिय को रावण के बन्धन से ?
यह कहते कहते मारुति के आंसू ढरे नयन से।

सुनकर भरत हुए शोकाकुल सकरुण कपि की वाणी।
हा तन आया काज न प्रभु के यों ही आयु सिरानी।
हुआ अनर्थ हाथ से मेरे अहा व्यर्थ मैं कैसा।
हो सकता न किसी सज्जन से कभी स्वप्न में जैसा।

मरा बन्धु विहीन राम को हा मैने कर डाला।
कैकेयी सम्भव है इस तन नियम यथा विधि पाला।
उठो उठो हे बीर महाकपि कुछ तो धीर बँधाओ।
राम लखन सीता की चर्चा तनिक सप्रेम सुनाओ।

बोलो बोलो मधुर बचन कुछ नयन नलिन दल खोलो।
फिर ले यह गिरि नभ मंडल में बायु तुला पर तोलो।
अयश सिंधु में मुझे न तजकर जाओ बीर अकेला।
अब न सहा जायेगा पल भर लोक प्रपंच झमेला।।

बोले हो सचेत धीरे से गिरा श्रवण सुखदाई।
भरत तुम्हीं हो भरत धर्म धुर रघुबर के प्रिय भाई।
दुःख निदाख में सुरतरु शाषा शाश्वत मुझे मिली है।
चित तरल तुषार धार में मानस कली खिली है।

कहाँ द्रोण गिरि मूल सजीवन कहाँ अबध अघनासी।
कहाँ निरंकुश निपट नीच हम कपि पंपा सुरबासी।
रघुपति कृपा सुलभ शुभ दर्शन हुआ पुनीत तुम्हारा।
यह कह कर कुछ सोच दृगों से बही प्रेम जल धारा।

कहा भरत ने धन्य पवन सुत है अनुकूल बिधाता।
जो तुम हुए सचेत सुतवती हुई सुमित्रा माता।
प्रभु प्रसाद सब कार्य असम्भव सम्भव कर सकता हूं।
मेरु बाँध सकता हूं पल में सागर तर सकता हूं।

चिंता नहीं लखन को अब कुछ मन में धीरज धारो।
उठो उठो हे बीर बाहु पर अपने शैल सम्हारो।
राम भक्त का क्या कोई अनभल कर सकता है?
असफल कभी देव बल को क्या पशुबल कर सकता है?

अतः सशैल बीर आ मेरे बैठ बाहु पर जाओ।
प्राणाधिक प्रिय बन्धु लखन के सत्वर प्राण बचाओ।

हा ! धिक पामर प्राण व्यर्थ ही तन का भार बना है।
आया तनिक न काम राम के लोक प्रपंच सना है।

उपकारों के भार पवन सुत मुझ पर अधिक तुम्हारे।
हो सकता न उऋण उससे मैं युग युग जीवन धारे।
अच्छा अब अविलम्ब पधारो मिलन भूल मत जाना।
प्रभु को अवध अवधि सुस्मृति सादर सतत सुनाना।

बोले सजल नयन मारुति तब मगन हुई मन वाणी।
धन्य भरत हैं नहीं जगत में अपर आपसा प्राणी।
बार बार करते हैं निज मुख जिसकी आप बड़ाई।
जिसकी सुधि कर भर लेते हैं दृग जल दोनों भाई।

माताओं से मत कहियेगा मेरी मिलन कहानी।
आकर स्वयं कहेंगे सकुशल लखन लाल मृदु बानी।
अच्छा नाथ प्रणाम कृपा हो अधिक नहीं अवसर है।
जाना दूर शैल बन दुर्गम सागर भी दुस्तर है।

देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥
मोहि न बाधे कइ कछु लाजा। कीन्ह चहहु निज प्रभु कै काजा॥
नाथ आज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह कै प्राना॥
नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनी। सहसहुं मुख न जाइ सो बरनी॥
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहि कोउ सुरनर मुनि तनधारी॥
मन महुं तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तह आए॥
सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हिमहुं जीभ बिचारी॥
तरु पल्लव महुं रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावन तह आवा। संग नारि बहु किए बनावा॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनसुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि बिचार जग माही॥
चढ़ मम सायक सैल समेता। पठवउँ तोहिं जहं कृपा निकेता॥

सुनु कपि मन उपजा अभिमाना । मोरे भार चलहि किमि बाना ।।
राम प्रभाव विचारि बहोरी । बंदि चरन कह कपि कर जोरी ।।

दोहा—राम विरह सागर मह, भरत मगन मन होत ।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत ।।

हनुमान सम नहिं बड़ भागी । नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुखगाई ।।
कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि के बल घालेहु बन खीसा ।।
कीधौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही । देखेउ अति असंक सठ तोही ।।
मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा ।।
सुन रावण ब्रह्माण्ड निकाया । पाइ जासु बल विरचित माया ।।
जाके बल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दस सीसा ।।
जा बल सीस धरव सहसानन । अंड कोस समेत गिरि कानन ।।
संकर सहस विष्णु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ।।
बोला बिहसि महा अभिमानी । मिला हमहि कपि गुरु बड़ग्यानी ।।
मृत्य निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।।
उलटा हो इहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ।।

गवां शत सहस्त्रांच ग्रामाणांच शतं वरम् ।
सर्वा भरण सम्पन्ना मुग्धा कन्याश्च षोडशः ।। आ.रा.यु. १४।६१

जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता । चलेउ सो जाइ पताल तुरन्ता ।।
मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ।।
प्रविसि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोसलपुर राजा ।।



सुर्पणषा-कर्ण छेदन

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनो ।।

अहं सूर्पणषा नाम राक्षसी काम रुपिणी ।
भभिनी राक्षसेन्द्रस्व रावणस्य महात्मनः ।। अ.रा.अर. सर्ग ५-६

सूर्पणषा कहती है मैं राक्षस राज रावण की बहिन कामुक राक्षसी हूं ।

सा़तु सूर्पणषा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः ।
भगिनी राममासद्य ददर्श त्रिदशोषमम् ।। वा.रा.अर.सर्ग १७-३

वह राक्षस राज रावण की बहिन थी । उसने देवता सदृश सुन्दर राम को देखा ।

सूर्पनषा का नाक छेदन—

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनो ।।
पंचवटो सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।।
भ्राता पिता पुत्र उर गारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।
होइ विकलमन सकइ न रोकी।जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी।।
रुचिर रूप धरि प्रभु पहि आई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।।

वह मुस्करा कर कहने लगी—

तुम सम पुरुष न मो सम नारी । यह संजोग बिधि रचा विचारो ।।
मम अनुरूप पुरुष जग माही । देखेउँ खोज लोक तिहु नाहीं ।।
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।।

राम कहते हैं—

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुमार मोर लघु भ्राता ।।

फिर वह कुटिला लक्ष्मण के पास गई । लक्ष्मण ने उसके दुष्टा-चरण को देखकर कहा—

दोहा—लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ, मनो चुनौती दीन्ह॥

लक्ष्मण द्वारा दण्ड दिए जाने और कुरूप करने पर वह अपने भाई रावण के पास जाकर यह वृत्तान्त कह सुनाया।

जाइ सुपनखा रावन प्रेरा।

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिचारी॥

ताके कर रावन कह मनहुं चुनौती दीन।

अतः राम रावण युद्ध का यहीं से सूत्रपात हुआ। सूर्पणषा के दुष्टाचरण के कारण लक्ष्मण ने उसका सामाजिक उचित दण्ड दिया था ताकि भविष्य में वह किसी और अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा दुराचरण व्यवहार करने का साहस न करे, अतः इसी कारण लक्ष्मण ने उसे कुरूप किया था।

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धा रामस्य पश्यतः।
सद्धत्य खड्गं बिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥
वा. रा. अर. सर्ग १६ श्लोक २१

अध्यात्म रामायण में भी ऐसा ही वर्णन है—

इत्युक्त्वा बिकटाकारा जानकीमनु बावनि।
ततो रामाज्ञाखड्गमादाय परिगृह्यताम्॥
अ. रा. अर. सर्ग ५ श्लोक १६

अर्थात—राम के कहने पर लक्ष्मण क्रुद्ध हो गए और उसके (सूर्पणषा) नाक कान काट कर कुरूप कर दिए। लक्ष्मण के व्यवहार से क्रुद्ध होकर वह चिल्लाते हुए कहने लगी—

कहा क्रुद्ध होकर तब उसने—तो अब मैं आशा छोड़ूं?
जो सम्बन्ध जोड़ बैठी थी उसे आप ही अब तोड़ूं?
किन्तु भूल जाना न इसे तुम, मुझ में है ऐसी भी शक्ति?
कि झंख मार कर करनी होगी, तुमको फिर मुझ पर अनुरक्ति?

फिर वह कहती है—

मेरे भृकुटि-कटाक्ष-तुल्य भी, ठहरेंगे न तुम्हारे चाप।
बोले तब रघुराज—"तुम्हारा, ऐसा ही क्यों न हो प्रताप।

किन्तु प्राणियों के स्वभाव की होती है ऐसी ही रीति।
पर-वशता हो सकती है पर होती नहीं भीति मे प्रीति।

राम उसके प्रेमालाप को दुष्कृत अलाप को सुनकर चुप रहे पर सौमित्र लक्ष्मण क्रोधित होकर कहने लगे—

इतना कह कर मौन होकर प्रभु और तनिक गम्भीर हुए।
पर सौमित्र न शान्त रह सके, उन्मुख वे बर बीर हुए।
और इसे तुम भी न भूलना, तुम नारी होकर इतना।
अहम्भाव जब रखती हो, तब रख सकते हैं नर कितना।

लक्ष्मण के कटु वचन को सुनकर सूर्पणषा क्रुद्ध होकर कहने लगी—

झंकृत हुई बिषम तारों की तन्त्री-सी स्वतन्त्र नारी।
तो क्या अबलाएँ सदैव ही अबलाएँ हैं-बेचारी?
नहीं जानते तुम कि देखकर, निष्फल अपना प्रेमाचार।
होती हैं अबलाएँ कितनी, प्रबलाएँ अपमान विचार।
पुनः वह कहती है—

देख क्यों न लो तुम, मैं जितनी, सुन्दर हूं उतनी ही घोर।
दीख रही हूं जितनी कोमल, हूं उतनी ही कठिन कठोर॥
सचमुच विस्मयपूर्वक सबने देखा, निज समक्ष तत्काल।
वह अति रम्य रूप पलभर में, सहसा बना बिकट विकराल।

उसके अनर्गल वचन को सुनकर लक्ष्मण कहने लगे।
मायाविन, उस रम्यरूप का था, क्या बस परिणाम यही?
इसी भाँति लोगों को छलना, है क्या तेरा काम यही?
विकृत परन्तु प्रकृत परिचय से, डरा सकेगी तू न हमें।
अबला फिर भी अबला ही है, हरा सकेगी तू न हमें॥

सूर्पणषा के अनर्गल दुर्व्यवहार पर लक्ष्मण क्रोधित होकर उसके नाक कान काट कर उसे कुरूप बना दिया ताकि भविष्य में किसी और के साथ ऐसा दुर्व्यवहार न कर सके।

उस आक्रमणकारिणी के झट, लेकर शोणित तीक्ष्ण कृपाण,
नाक कान काटे लक्ष्मण ने, लिये न उसके प्राण।

और कुरुपा होकर तब वह, रुधिर बहाती बिलखाती,
धूल उड़ाती आँधी ऐसी, भगी वहाँ से चिल्लाती।

सूपर्णखा के चीत्कार से सम्पूर्ण आकाश गूंज उठा। सीता भय-भीत, उदास, आतुर और अस्थिर हो गई और कहने लगी—

हुआ आज अपशकुन सबेरे कोई संकट पड़े न हा।
कुशल करे कर्तार उन्होंने लेकर एक उसाँस कहा।
लक्ष्मण ने समझाया उनको आर्य्ये, तुम निःशङ्क रहो?
इस अनुचर के रहते तुमको किसका डर है तुम्हीं कहो?

लक्ष्मण कहने लगे--

नहीं विघ्न-बाधाओं को हम स्वयं बुलाने जाते हैं;
फिर भी यदि वे आ जावें तो कभी नहीं घबराते हैं।
मेरे मत में तो विपदाएँ हैं प्राकृतिक परीक्षाएँ;
उनसे वही डरें, कच्ची हों जिनकी शिक्षा-दीक्षाएँ॥

लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटने के बाद वह अपने भाई रावण से जाकर अपने कुरूप करने के वृत्तान्त को कहने लगी। यहीं से राम-रावण युद्ध का श्रोत आरम्भ हो गया।

ताके कर रावन कहँ मनहुं चुनौती दीन।

राम ने सूर्पणखा के नाक कान कटवा कर न्यायोचित दण्ड दिया। राम ने कहा—

जौं नहि दण्ड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा॥

सूर्पणखा के दो प्रमुख अपराध थे—एक तो प्रत्यक्ष दूसरे अनुमान का अनादर था, दूसरी उसकी दुर्भावना पूर्ण कामुकता आचरण विपरीत थी।



सुग्रीव

सुग्रीव बालि के छोटे भाई थे। दोनों समवयस्क एक ही रूप के थे। सुग्रीव को अनेक भार्यायें थी।

बह्वीश्च विविधाकारा रूप यौवन गर्विताः।
स्त्रियः सुग्रीव भवने ददर्श स महाबलः॥ वा.रा. ४।३३।२२

उनमें प्रधान सुषेण की कन्या रूमा थी। सुग्रीव को कोई सन्तान न थी। सुग्रीव का बालि पत्नी तारा के प्रति विशेष आसक्ति थी। हनुमान ने अंगद से कहा है—हे अंगद! सुग्रीव तुम्हारी माता का प्रिय कार्य करने के अभिलाषी हैं और तुम्हारी माता के प्रसन्न करने के निमित्त हो जीवन धारण कर रहे हैं। तारा से सुग्रीव की गोपनीया आशक्ति थी और इसी कारण बालि सुग्रीव से द्वेष रखता था। यह बात सुग्रीव ने राम से नहीं बताई थी।

प्रिय कामश्च ते मातुस्तमर्थं चास्य जीवितम्। वा.रा. ४।५४।२२

वानर श्रेष्ठ सुग्रीव तेजस्वी, महाबीर, सत्य प्रतिज्ञ, विनीत स्वभाव धीर, बुद्धिमान, महान, कार्यदक्ष, पराक्रमशाली और क्रान्ति युक्त थे। सुग्रीव के हनुमान, नल, नील व तार सचिव थे। बालि ने सुग्रीव को निर्वासित करने के समय इन चारो सचिवों को बन्दी बना रखा था। बाद में उन्हें मुक्त कर दिया। बालि के भय से सुग्रीव अपने सचिवों के साथ जाकर ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा। मुनि श्राप से बालि ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जा सकता था। सुग्रीव से मैत्री हुई। राम और सुग्रीव ने आपस में संधि करते समय शपथ ग्रहण करके प्रतिज्ञा की थी कि एक दूसरे के विपदा में सहायता करेंगे। राम ने बालि का बध करके सुग्रीव को किष्किन्धा के राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। सुग्रीव ने सपथ लिया था कि वह जिस प्रकार भी होगा पूर्ण रूप से सीता के अन्वेषण का प्रयास करेगा। सुग्रीव ने सीता के अनुसंधान के

लिए चारो दिशाओं में बानरों को भेजा। बानरगण ने पूर्व, पश्चिम व उत्तर दिशा में सीता का अन्वेषण किया परन्तु कहीं कोई पता नहीं लगा और हताश होकर बानर यूथ राम के शिविर में वापस आ गए। सभी बानर मण्डली ने अनुमान लगाया कि दक्षिण दिशा में हनुमान गए हैं। उन्हीं के द्वारा यह कार्य सिद्ध होगा। सीता का दर्शन करके दो माह बाद हनुमान वापस आए। राम सीता का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु सागर पार करने की समस्या से कुछ चिन्तित हो गए। सुग्रीव ने राम को प्रोत्साहित करतें हुए कहा—हे बीर! आप सागर पार करने की चिन्ता न करें। हम सब सागर पार करके लंका में जायेंगे और रावण का बध करके सीता का उद्धार करेंगे। सुग्रीव ने कहा—

रावणं पाप कर्माणं तथा त्वं कर्तुं मर्हसि।
सेतुमत्र यथा बद्ध्वा यथा पश्याम तां पुरीम्॥
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव।
तां दृष्ट्वा तु पुरीं लङ्कां त्रिकूट शिखरेस्थिताम्॥
हतं च रावणं युद्धे दर्शनादुपधारये।
अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे तु वरुणालये॥
लंका नो मर्दितुं शक्या सेन्द्रै रपिसुरा सुरैः।
सेतर्बद्धः समुद्रे च यावलङ्का समीपतः॥

वा. रा. ६:२।३-१२

हे राघव! आप भी कुछ ऐसी युक्ति करें जिससे सागर पर पुल निर्माण किया जा सके और हम सब लंकापुरी में प्रवेश कर उस रावण को देखें। आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंकापुरी को हम देख सकें। जब हम सब लंकापुरी को देख लेंगे तो आप रावण को मरा ही समझियेगा। उस घोर वरुणालय समुद्र पर बिना पुल बाँधे इन्द्र सहित देवताओं का भी वहाँ पहुंचना असम्भव है। बस समुद्र पर पुल बँधने भर की देर है। हे महाबाहो! आप अपनी हताश बुद्धि का त्याग कर दें।

'पुरुषस्य ही लोकेऽस्मिञ्शोकः शौर्यापकर्षणः'।

अतः आप इस कायर बुद्धि का त्याग कर दें। लंका में प्रवेश

करने की पूरी योजना बना ली गई। सागर पर पुल बांध राम ने सेना सहित लंकापुरी में प्रवेश किया। सुग्रीव क्रोधवश रावण से कहने लगा—

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।
न मया मोक्ष्य सेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा।।
बा. रा. ६।४०।१०

हे राक्षस! मैं लोकपति राम का मित्र और दास हूं! तूं आज मेरे हाथों से बच कर नहीं जा सकता। इतना कहके सुग्रीव कूदकर रावण के ऊपर जा पहुंचे और जमीन पर गिरा दिया। रावण क्रुद्ध होकर जब अपना मायाजाल फैलाने लगा तो सुग्रीव वहाँ से राम के शिविर में वापस आ गए। सुग्रीव पुनः युद्ध करने लगे। उन्होंने विरूपाक्ष और महोदर को मार गिराया। लंका विजय के उपरान्त सुग्रीव सपरिवार राम सहित अयोध्या आए। अयोध्या पहुंचने पर भरत ने सुग्रीव का भाई के समान स्वागत किया। राम के राज्याभिषेक के पश्चात सुग्रीव किष्किन्धा वापस आ गये। राम के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भी सुग्रीव अयोध्या गये थे। राम के महाप्रस्थान के समय भी सुग्रीव अयोध्या गए थे। राम के महाप्रस्थान के साथ साथ सुग्रीव भी देह त्याग कर विष्णु लोक को चले गए। विष्णु लोक को जाते समय सुग्रीव ने राम से कहा था।

अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर।
तवानु गमने राजन् विद्धि मांकृत निश्चयम्।।
वा. रा. ७।१०८।२४

हे नरनाथ! मैं आज यहाँ अंगद को राज्य सौंप कर आपके साथ चलने को आया हूं।

श्रीराम सुग्रीव मैत्री—

बड़े भाग्य इहि मारग आए।
गदगद कंठ, सोक सौं रोवत, बारि बिलोचन छाए।।
महाधीर गंभीर वचन सुनि, जामवंत समुझाए।
बड़ी परस्पर प्रीति-रीति तव, भूषन सिया दिखाए।।

सप्त ताल सर साँधि, बालि हति, मन अभिलाष पुजाए।
'सूरदास' प्रभु-भुज के बलि-बलि, बिमल-बिमल जस गाए।।

यहीं पर राम और सुग्रीव की भेंट हुई।

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा।।
गगन पंथ देखी मैं जाता। पर बस परी बहुत बिलपाता।।
राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी।।
मांगा राम तुरत तेंहि दीन्हा। पट उरलाइ सोच अति कीन्हा।।

हनुमान श्रीराम से कहते हैं—

नाथ सैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तब अहई।।
तेहि संग नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।।
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।।
जब सुग्रीव राम कहुं देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा।।

दोहा—तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेश कुमारी।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।।
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई।।

दोहा—सखा बचन सुनि हरषे, कृपा सिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव।।

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।
मय सुत मायाबी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।।
अर्धरात्रि पुर द्वार पुकारा। बाली रिपुबल सहै न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउ बंधु संग लागा।।
गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई।।
परखेहु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा।।
मास दिवस तह रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।।
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साँई। दीन्हेउ मोहि राज बरिआई।।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा।।

रिपु सम मोहि मारेसि अतिभारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउ बिहाला।।
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।।
सुनि सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला।।

दोहा—सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गएँ न उबरहिं प्रान।।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रन धीरा।।
लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा।।
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।
सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।

दोहा—कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहिं मारहि, तौं पुनि होउँ सनाथ।।

बालि का शरीर त्याग—

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहिं जानी।।
भिरे उभौ बाली अति गर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।।
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला।।
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ।।
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा।।
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई।।

दोहा—बहु छल बल सुग्रीव कर, हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदय माझ सर तानि।।

परा बिकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।।

बालि कहता है—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

दोहा—सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूं मैं पापी, अंतकाल गति तोरि।।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी।।
अचल करौं तनु राखहु प्रामा। बालि कहा सुनु कृपा निधाना।।
जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा।।

दोहा—राम चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग।।

सुग्रीव की राम भक्ति—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रन धीरा।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती।।
बार बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा।।
उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला।।
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।

रामकाज सुग्रीव बिसारा—

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई।।
सुग्रीवहुं सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।।
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।।

दोहा—तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव।।

इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।।
सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना।।
नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ मन माहीं।।

दोहा—हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आए जहँ रघुनाथ।।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहिं कछु नाहिन खोरी।।
विषय वस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी।।
तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई।।
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि विधि सीता कै सुधि पाई।।

सीता अन्वेषण —

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई।।
जनक सुता कहुं खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई।।
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई।।
पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
हनुमंत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना।।
जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर।।
कहा रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा।।
सिंह नाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।

सीता सदर्शन —

यह कहि नाइ सबन्हि कहुं माथा।चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।।

दोहा—हनूमान तेहि परस करि, पुनि मन कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम।।

संजीवनी शोध—

जामवंत कह वैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना।।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।।

दोहा—राम पदारबिंद सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन सुत लेन।।

सो० – प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरखाई॥

जानकी! हौं रघुपति को चेरौ।
बीरा दै रघुनाथ पठायौ सोध करन को तेरौ॥
दस और आठ पदम बानचर लै चाहत हैं गढ़ घेरौ।
तिहरे कारन स्याम मनोहर, निकट दियौ है डेरौ॥
अब जिन सोच करौ मेरी जननी! जनम जनम हौ चेरौ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन को, सारद रंक कित फेरौ॥

जानकी! मन संदेह न कीजै।
आए राम लखन प्रिय तेरे, काहै प्राननि दीजै॥
जामवंत, सुग्रीव, बालि सुत, आए सकल नरेस।
मोहि कह्यौ तुम जाहु खबरि कौं, अब जिनि करहु अंदेस॥
रावन के दससीस तोरि कै, कुटुंब समेत बहैहौं।
तेतीस कोटि देवता बंधन, तिनहिं समस्त छुड़ैहौं॥
आयसु दीजै मातु! मोहि अब, जाइ प्रभुहि लै आऊँ।
'सूरदास' हौं जाइ नाथ पहँ, तेरो कुसल सुनाऊँ॥

जननी! हौं अनुचर रघुपति को।
पति माता करि कोप सरपै, नहिं दानब ठग मति को॥
आज्ञा होइ, देउ कर मुदरी, कहौं संदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ॥
कहौ तो लंक उखारि डारि देउ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तो मारि-संहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ॥
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति की।
अबैं मिलाऊं तुम्हैं सूर' प्रभु, राम-रोष डर अति की॥

तू जननी! अब दुख जनि मानहि।
रामचन्द्र नहिं दूरि कहूं, पुनि, भूलिहुं चिंता नहिं आनहि॥
अबहिं लिबाइ जाउँ सब रिपु हति, डरपत हौं आज्ञा-अपमानहिं॥
राख्यौ सुफल सँवारि, सान दै, कैसे निफल करौं वा बानहि?

हैं केतिक ये तिमिर-निसाचर, उदित एक रघुकुल के मानहिं।
काटन दै दस सीस बीस भुज, आपनो कृत येऊ जों जानहिं॥
देहिं दरस सुभ नैननि कहँ प्रभु, रिपु कौ नासि सहित संतानहिं।
'सूर' सपथ मोहि,इनहि दिननि मैं, ले जु आइहौं कृपा निधानहि॥

भरत हनुमान मिलन—

दोहा—राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत॥

जासु विरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय वचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपा निधाना॥
दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेटेउ उठि सादर॥
हनुमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

सुग्रीव—

तुमसा रे सुग्रीव ! मतलबी इस त्रिभुवन में,
हुआ न कोई और न होगा, तेरे मन में—
यश अपयश या पाप पुण्य का तनिक न डर था,
अपने सुख के लिए अनय में तू तत्पर था।

भाई का भी नहीं हुआ तू सुन रे पामर।
इससे तेरा कौन करेगा जग में आदर ?
धन्यवाद के योग्य रहा बस केवल बाली।
तेरे छल से हाय ! मरा पर वह बलशाली।

अज्ञ ! तुझे धर्मज्ञ, विज्ञ, कह कौन कहेगा ?
तूने जो दुष्कर्म किया, क्या छिपा रहेगा ?
क्या तारा के साथ प्रेम तेरा पवित्र था ?
बालि-चरित सा निंद्य न क्या तेरा चरित्र था।

तेरे कारण राम चरित भी समालोच्य है,
तुझे दिया क्यों राज्य राम ने ? यही शोच्य है।

यदि तुमको भी मार राज्य अंगद को देवें,
तब तो जग में राम पुण्य अक्षय ले लेवें ।।
जब बाली को निहत देख रोती थी तारा,
शिशु अंगद भी सिसक रहा था वहीं बेचारा ।
तब तू रोया नहीं, न उनको कुछ समझाया ।
क्यों मन में रे मूढ़ ! शोक भी तुझे न छाया ।।
राम भरत की दशा तुझे क्या ज्ञात नहीं थी ?
तेरे मन में किन्तु कभी यह बात नहीं थी ।
बाली का वध करा, राज्य तुमको लेना था ।
रच करके षड्यन्त्र अयश उसको देना था ।।
या करके तू राज्य गर्व से फूल गया था,
सीता जी की खोज कराना भूल गया था ।
जब लक्ष्मण ने तुझे मारने को धमकाया,
रे कृतघ्न ! निर्लज्ज ! होश में तब तू आया ।

दोहा—बहु छल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि ।
मारा बालि राम तब, हृदय माँझ सर तानि ।।

परा विकल महि सर के लागे ।

बालि राम आचरण पर आक्षेप करते हुए कहता है—

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं । मारेहु मोहि ब्याध की नाईं ।।
मैं बैरी सुग्रीव पियारा । अवगुन कवन नाथ मोंहि मारा ।।

राम अपने कृत्य की सफाई देते हुए कहते हैं, हे बालि सुनो । तुमने युद्ध नियम का उल्लंघन करके जब सुग्रीव तुमसे युद्ध बन्द करके थोड़े समय विश्राम करने का अनुरोध किया था । तो तुम उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद जा रहा था तो तुमने अन्याय पूर्वक उसके पीठ पर मुष्ठि प्रहार कर दिया । यही अन्याय है । सुग्रीव बालि के बल से भयभीत था, राम से कहता है—

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रन धीरा ।।

सुग्रीव राम की परीक्षा लेने लगा कि राम बालि को मारने में सक्षम हैं या नहीं । उसने राम की शक्ति परीक्षा लेने हेतु ताल वृक्षों को एक ही बाण से गिराने को कहा—

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराये । बिन प्रयास रघुनाथ ढहाये ।।

तब—

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधव इन्ह भइ परतीती ।।

सुग्रीव राम के मैत्री प्रकरण से ऐसा मालूम पड़ता है कि सुग्रीव निराश्रित और भयभीत था।

रिपु सन मोहि मारेसि अति भारी।हरि लीन्हेसि सर्बस अरुनारी ।।
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउ बिहाला ।।
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माही ।।

सुग्रीव की आर्त दुख भरी बातें सुनकर भगवान राम के नयन सजल हो गए और भुजा उत्तेजित हो उठी।

सुन सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठी द्वौ भुजा बिसाला ।।

सुग्रीव की आर्तमय भयभीत दशा देखकर प्रतिज्ञा की।

दोहा—सुनु सुग्रीव मारिहौं, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गए, न उबरिहिं प्रान ।।

सुग्रीव मिलन—

रिष्यमूक परवत विख्याता।
इक दिन अनुज सहित तह आए, सीतापति रघुनाथा ।।
कपि सुग्रीव बालि के भय ते, बसत हुतौ तह आई।
त्रास मानि तिहि पवन, पुत्र कौं दीनौ तुरत पठाई ।।
को ये वीर फिरै बन बिचरत, किहि कारन ह्यां आए।
'सूरदास' प्रभु के निकट आइ कपि, हाथ जोरि सिर नाए।।

बालि बध—

बड़े भाग्य इहि मारग आए।
गद गद कंठ, सोकसौं रोवत, बारि बिलोचन छाए ।।
महा घोर गंभीर बचन सुनि, जामवंत समुझाए।
बढ़ी परस्पर प्रीति-रीति तव, भूषन सिया दिखाए ।।
सप्त ताल सर सांधि, बालि हति, मन अभिलाष पुजाए।
'सूरदास' प्रभु-भुज के बलि-बलि बिमल-बिमल जस गाए ।।

बालि अन्त में राम से क्षमा माँगते हुए कहता है—

दोहा—सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूं मैं पापी, अन्तकाल गति तोरि ।।

राम बालि की अति कोमल वाणी सुनकर कहते हैं—

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना।

राम चरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कण्ठ ते, गिरत न जानै नाग॥

तब भगवान कहते हैं—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकहि जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

हे बालि तुमने जो दुष्टाचरण अपराध किया है उसका धर्मानुकूल उचित दण्ड देना मेरा परम धर्माचरण कर्तव्य था।

विभीषण रावण को राम के शरण में जाने की सलाह देता है—

सरन गए प्रभु काहु न त्यागा। विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम भय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन॥

अंगद ने कहा—

एक पट दिये मुकुटि उड़ि जायेगे, सभा सब चरन सौं चाप डारूं।
बालि कौ पूत हौ सोच जिय में करुँ, सिंघ ह्वै मेंढकनि कहाँ मारुँ॥
करत अपराध उतपात छोटेन कूँ, बड़े कूँ छेमाभूषन कहावै।
जान देहु दूत अब लौं न मार्‍यो कहूं,पसुन सौं लरत जिय लाज आवै।
'सूर'नृप-किसोर जब बालि-नंदन कह्यो,सीस अब कौन तोसौं पचावै।
नेक धरु धीर, रनधीर रघुबीर भट, देख तरबार कैसी चलावै॥

तब अंगद यह वचन कह्यो।
को तरि सिंधु सिया-सुधि ल्यावै, किहिं बल इतौ लह्यो ?
इतनौ वचन स्रवन सुनि हरष्यो, हँसि बोल्यौ जमुवंत।
या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत, जाहि नाम हनुमंत॥
वहै ल्याइहै सिय सुधि छिन मैं, अरु अइहैं तुरंत।
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, वाके बलहि न अंत॥
पवन-पुत्र मुख पैठि पधारे, तहाँ लगि कछु बार।
'सूरदास' स्वामी प्रताप-बल, उतर्‍यौ जल निधि पार॥

—:●:—

बालि

वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड में बालि और सुग्रीव के जन्म के विषय में विचित्र कथा का उल्लेख है। यह विवरण नारद ने महर्षि अगस्त से कहा है। ब्रह्मा के अश्रु से एक दिव्य वानर उत्पन्न हुआ। वानर जल पीने के निमित्त सरोवर के किनारे गया। सरोवर के जल में अपने ही छाया को देखकर छाया को ही दूसरा वानर समझ बैठा और उसे पकड़ने हेतु जल में कूद पड़ा। पीछे उसे अपनी भूल और भ्रम का जब उसे ज्ञान हुआ तो वह जल के बाहर निकल आया और क्या देखता है कि वह नारी के रूप में परिवर्तित हो गया। उसका शरीर रूप-लावण्यमय अति सुन्दर मोहिनी था। उसे देखकर इन्द्र और सूर्य मोहित हो गए। उस रमणी के मस्तक पर इन्द्र का तेज वीर्य स्खलन हो गया जिससे बालि उत्पन्न हुआ और उसी समय सूर्य का तेज वीर्य उस रमणी के ग्रीवा पर स्खलन होने से सुग्रीव उत्पन्न हुआ। इन्द्र का वीर्य बाल पर गिरने से बालि और गर्दन पर वीर्य गिरने से सुग्रीव नाम पड़ा। यथा—

बालेषु पतितं बीजं बालि नाम वभूव सः।
ग्रीवायां पतितं बीजं सुग्रीवः सम जायत ॥

परन्तु दूसरे दिन पुनः रमणी पुरुष रूप को प्राप्त हो गई।

अंगद कहता है :—

बभूवर्क्षरजा नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान्।
ममार्यः पार्थिवः पक्षिन् धार्मिकस्तस्य चात्मजौ ॥

हे पक्षिन्! मेरे पितामह ऋक्षरजा नाम के प्रतापी वानर थे। वानर वैद्य सुषेण की कन्या तारा बालि की पत्नी थी। इसके अतिरिक्त बालि की और भी पत्नियाँ थीं। वह किष्किन्धा नगर का राजा था। वह अति स्वाभिमानी था और अपने बल पौरुष का उसको अति अहं था। वह युद्ध सम्बन्धी किसी शत्रु की ललकार को नहीं सहन कर सकता था। एक दिन रात्रि को मय दानव का

पुत्र मायावी कहीं कहीं दुंदुभी असुर कहा गया है। बालि के द्वार पर आकर बालि से युद्ध करने को ललकारने लगा। बालि असुर मायाबी की ललकार को सुनकर जब घर से बाहर निकला तो मायाबी बालि को देखकर भागा। बालि ने उसका पीछा किया। बालि के साथ पीछे-पीछे सुग्रीव भी गया। मायाबी कुछ दूर जाने पर पर्वत की गुफा में घुस गया। बालि भी गुफा के भीतर घुस गया। वहाँ पर बालि और मायाबी में बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। गुफा में घुसते समय बालि ने सुग्रीव से कहा था—तुम गुफा के बाहर ही प्रतीक्षा करना। यदि एक पखवारे के बाद मैं बाहर न आऊँ तो समझ लेना मैं मारा गया। सुग्रीव ने बालि की गुफा से बाहर आने की एक माह तक प्रतीक्षा की परन्तु बालि के बाहर न आने पर गुफा से एक रुधिर की धारा बाहर निकली जिसे देख सुग्रीव घबड़ा गया और यह अनुमान लगाया कि बालि मारा गया। इस भय से अपने प्राण बचाने हेतु सुग्रीव ने गुफा के द्वार को एक विशाल पत्थर से बन्द कर दिया जिससे दानव मायाबी गुफा के बाहर न आवे और सुग्रीव किष्किन्धा चला आया।

आगे चले बहुरि रघुरायी। रिष्यमूक पर्वत नियरायी॥
तहँ रहँ सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सीवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिय सैन बुझाई॥
पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरंत तजौं यह सैला॥
विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महं कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

दोहा—जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति, लीन्ह मनुज अवतार॥

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥

इहां हरी निसिचर वैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनि कपि जियं मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
आपन चरित कहा हम गाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पुछहु कस नर को नाईं॥
तब माया बस फिरहु भुलाना। ताते मैं प्रभु नहिं पहिचाना॥
नाथ सैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मैत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥
सो सीता कै खोज कराहीं। जहं तहं नरकट कोटि पठाहीं॥

दोहा—तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति बढ़ाइ॥

एको नाहं प्रमोक्ष्यामि वाण मोक्षेण संयुगे।
मम दर्शय सुग्रीव वैरिणंभ्रातृ रुपिणाम॥
न च कार्यो विषादस्ते राघव प्रतिमत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति॥
न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरि यूथप।
वा गुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नरा॥
विपदा गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः।
क्षय दारा हरश्चतान्षड्विद्या दात तायिनः॥
नात तायि वधो दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशवऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्यु मृच्छति॥
आततायिन हत्वा नात्र प्राणच्छेत्तुः।
किंचित्किल्विष माहुः॥
आत्म नश्च परित्राणे दक्षिणामां च सागरे।
स्त्री विप्राश्यु पपत्तौ चध्नधधर्मेण न दुष्यन्ति॥

अपनी दक्षिणा स्त्री और ब्राह्मण की विपत्ति मे धर्म युक्त युद्ध में दूसरे का वध करने वाला अपराधी नहीं होता।

गुरू वा बाल वृद्धौ वा ब्राह्मण वा बहुश्रुतम।
आता तायिन मां यान्तं हन्या देवा बिचार यन॥

गुरू बालक बूढ़ा व अधिक शास्त्र पढ़ा ब्राह्मण भी आततायी-पन से मारने को चढ़ आवे तो बिना विचारे उस पर प्रहार करे।

पर दारा भिमर्शेषु प्रवृत्तान्नन्म हो पतिः।
उद्वेजन करैर्दण्डेश्छिन्नयि त्वा प्रचासयेत ॥

पर स्त्री संभोग में प्रवृत्त हुए, पुरुषों, व्याकुल करने वाले की नाक कान काटकर देश से निकाल दे।

तवाहं वादिनं क्लीबनिर्हेति पर संगप्तम।
न हन्या द्विनिवृतञ्च युद्ध कादिकम ॥

आत्म समर्पण करने वाले को, नपुंसक को, निहत्थे को युद्ध में पीठ दिखाने बाले को, न मारे।

रण में आए नहीं राम भी तेरे सम्मुख।
इसे सोचकर किसे नहीं हो सकता है दुख?
धर्म युद्ध कर राम हार क्या तुमसे जाते?
किन्तु सुयश दे तुझे, जगत में अयश न पाते?
मूक हुए थे राम प्रश्न कपि! तेरे सुनकर,
पछताते भी रहे मनो मन में सिर धुन कर।
सौंपा तूने तनय विनय करके जब उनको,
चुभ सी तेरी गई मनों बातें तब उनको।
प्रत्य भाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव।
उपकार फलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥
वालिनं तं विधिष्यामितवभार्यापहारिणम्।
अमोघाः सूर्यसंकाशा ममैते निणिताः शराः ॥

वा. रा. ४।५।२६।२७

सुग्रीव राम से कहता है—

हे काकुत्स्थः! आप कुछ ऐसा कार्य करें कि मेरा भय चला जाय। राम ने कहा—हे कपे! मुझे उपकार का फल मालूम है। मैं तुम्हारे भार्या का अपहरण करनेवाले बालि का अपने सूर्य के सदृश तीव्र वाणों द्वारा वध करूँगा।

यहाँ पर राम प्रतिज्ञा करते हैं कि बालि का वध अपने वाणों द्वारा करेंगे।

राम ने कहा—हे सुग्रीव ! सुनो, मैं एक ही वाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्म और रुद्र की शरण में भी जाने से उसका प्राण नहीं बचेगा। राम का प्रथम अनेक वाणों से वध करने के बदले एक ही वाण से मारने की प्रतिज्ञा करने में राजनीतिक चाल थी। एक वाण के अतिरिक्त दूसरा बाण चलाते ही बालि सावधान हो जाता कि उसके पीछे कोई और है। जैसा कि उसकी पत्नी तारा पूर्व ही संकेत और सावधान कर चुकी थी।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समझावा ॥
सुनुपति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सीवा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

अपनी पत्नी तारा के उत्तर में बालि कहता है—

दोहा—कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥

किष्किन्धा की प्रजा ने बालि की अनुपस्थिति में उसे मृत जान कर सुग्रीव को किष्किन्धा के राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। एक साल के बाद बालि दुन्दुभी मायवी राक्षस का वध करके किष्किन्धा आया। सुग्रीव को वहाँ राजसिंहासन पर आसीन देखकर अति क्रोधित हो गया और सुग्रीव को राजसिंहासन से अपदस्थ करके उसकी पत्नी को रख लिया और उसे राज्य से निष्कासित कर दिया। सुग्रीव बालि के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर रहने लगा जहाँ पर बालि मतंग ऋषि के श्राप के कारण अपनी प्राण हानि समझ कर वहाँ नहीं जाता था। सुग्रीव ने बालि को वास्तविक घटना स्थिति को बहुत समझाने की चेष्टा की पर बालि को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ। उसके कारण थे कि प्रथमतः सुग्रीव गुफा का द्वार शिला से बन्द करके क्यों आया ? द्वितीयतः सुग्रीव ने बालि की पत्नी तारा को अपनी भार्या बनाकर रख लिया था और यह बात सुग्रीव ने राम को कभी नहीं बताया। सुग्रीव को निर्वासित करके बालि पुनः राजसिंहासन पर आसीन हो गया और अपनी पत्नी तारा के अतिरिक्त सुग्रीव की पत्नी रुमा को भी भार्या बनाकर रख लिया। सुग्रीव की ऋष्यमूक पर्वत

के निकट उसके सचिव हनुमान के माध्यम से राम से मित्रता हुई। राम ने तत्क्षण कनिष्ठ भ्राता सुग्रीव की पत्नी को रखने के कारण, बालि वध की प्रतिज्ञा की। राम के आदेश पर सुग्रीव ने बालि को युद्ध करने का आह्वान किया। राम, लक्ष्मण और हनुमान वन में घने वृक्षों की ओट में छिप गये। सुग्रीव की ललकार सुनकर बालि राजमहल से बाहर आया और सुग्रीव से भीषण युद्ध करने लगा। दोनों भ्राताओं, बालि और सुग्रीव का एक सा ही रूप देखकर राम ने प्रथम दृष्टया भ्रमवश बालि को नहीं मारा। सुग्रीव बालि की मार से क्लान्त और आहत होकर राम के पास भागा भागा आया और राम के समक्ष अपनी दुर्गति का पूरा विवरण कह सुनाया। राम ने किसी प्रकार समझा बुझाकर सुग्रीव को सान्त्वना दिया। राम ने सुग्रीव को पुनः उसके गले में गजपुष्पी की माला पहिना कर बालि से युद्ध करने के लिये भेजा। दोनों में घमासान युद्ध हो रहा था उसी समय राम ने एक ही वाण से बालि का प्राणान्त कर दिया। बालि प्राण विसर्जन के समय राम को अपने सामने देखकर कहने लगा—हे राम! आप युद्ध में रत रहते समय मेरा वध करके कौन सी कीर्ति का उपार्जन करेंगे। आपने बिना किसी अपराध के मेरा प्राण संहार क्यों किया? आपने जिस उद्देश्य से सुग्रीव के साथ मित्रता स्थापित किया है यदि आप मुझसे कहते तो मैं ही उसे पूरा कर देता और रावण को बन्दी बनाकर आपके सामने लाकर उपस्थित कर देता। राम ने बालि से कहा—हे बालि! तुमने अपने कनिष्ठ भ्राता सुग्रीव की पत्नी रूमा को भार्या रूप से रखकर जघन्य पाप कर्म किया है, इसी कारण मैंने तुम्हारा बध किया है। इतना सुनकर बालि ने विषय को और आगे नहीं बढ़ाया और अन्त में उसका शरीर सदा के लिये शान्त हो गया। सुग्रीव ने बालि के कुकृत्यों तथा अनाचरण का बृत्तान्त राम को सुनाया था परन्तु ज्येष्ठ भ्राता बालि की पत्नी तारा को स्वयं भार्या रूप से रख लिया था यह बात राम से अन्त तक गोपनीय रखा और नहीं बताया। इस प्रकार जितना दोषी बालि था उससे कम दोषी सुग्रीव नहीं था। जिस प्रकार बालि ने छोटे भाई सुग्रीव की कन्या समान पत्नी रूमा को पत्नी बनाकर रखने का अपराध

किया था उसी प्रकार सुग्रीव ने अपने ज्येष्ठ भ्राता बालि के पत्नी माता तुल्य तारा को भार्या बनाकर रखने का अपराध किया था। परन्तु सुग्रीव ने ये सब बातें बालि के राम द्वारा मारे जाने की प्रतिज्ञा के पूर्व नहीं बताया था। बालि ने भी कुल मर्यादा की दृष्टि से और लज्जा तथा संकोचवश सुग्रीव के दुराचरण की बात राम को नहीं बताया। बलि की युद्ध में सुग्रीव का वध करने की भी इच्छा नहीं थी। वह केवल सुग्रीव को परास्त करके भगा देना चाहता था। इससे बालि के मनोभाव की महानता का ही प्रकाश मिलता है। द्वितीयतः बालि ने राम के हाथों मारे जाने की भी इच्छा प्रकट की थी। अनेक गुण होते हुए बालि ने एक ही महान कलंककारी कार्य सुग्रीव की पत्नी रूमा को रखकर किया था जिसका उसे दुर्दान्त फल भोगना पड़ा और राम द्वारा मारा गया। यदि कहा जाय कि बालि ने यह अनैतिक कार्य कामान्धता वश किया तो ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता। ऐसा उसने केवल प्रति हिंसा और प्रतिकार की भावना से ही किया था। यदि बालि यह जघन्य कार्य न करता तो वह चिरकाल आदर्श महापुरुष की भांति प्रतिष्ठित होता।

रावण की सभा में उपस्थित हनुमान सोचते हैं—

> अहो रूप महो धैर्यं महोसत्वद्युतिः।
> अहो राक्षस राजस्य सर्वं लक्षण युक्तता।।
> यद्यधर्मो न बलवान् स्याक्त दयं राक्षसेश्वरः।
> स्यादयं सुर लोकस्य सशक्रुरः यापि रक्षिता।।

अपूर्व रूप, असाधरण धैर्य, अद्भुत शक्ति से राक्षस राज रावण सर्वगुण सम्पन्न था। यदि रावण की अधार्मिक प्रवृत्ति न होती तो वह इन्द्र सहित सुरलोक का कर्ताधर्ता होता।

> बसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धे नाशी विषेणव।
> न तु मित्र प्रवादेन सवसेच्छत्रु से विना।।
> यथा मधुकरस्तषद्रिसं विदन्न विद्यते।
> तथा त्वमपि तत्रेव तथा नार्येषु सौहृदम्।।

सत्वं भ्रातासि मेराजन ब्रूहि यद्यदिच्छसि।
ज्येष्ठोमान्यः पितृ समो न च धर्मपथे स्थितः॥
इदं तु पुरुष वाक्यं न क्षमाम्यनृतं तव।
सुनीतं हित कामेन वाक्य मुक्तं दशानन॥

क्रुद्ध रावण ने कहा —

शत्रु अथवा जहरीले साँप के साथ रहा जा सकता है, किन्तु शत्रु के पक्षपाती मित्र के साथ रहना घातक है। जैसे भौंरे फूलों का रस पीकर ज्यादा देर वहाँ नहीं रहते वैसे तुम्हारे जैसे दुर्जन काम निकल जाने पर मैत्रो स्मरण भी नहीं करते। विभीषण ने कहा—हे राजन्! तुम मेरे भाई हो, इसलिए तुम जो चाहो कहो। बड़े भाई होने के नाते तुम मेरे पिता तुल्य पूज्य हो किन्तु तुम धर्म पथ से च्युत हो गये हो। अब तुम्हारे इन कठोर तथा अप्रिय वचनों को नहीं सह सकता। हे दशानन मैंने तुम्हारी भलाई के लिए ऐसा कहा था।

रावण हनुमान--

क्रूर दृष्टि से इन्हें देखकर, बोला वह रे बन्दी बानर।
यह दुःसाहस! विपिन उजाड़ा,शठ! तूने किसका बल पाकर?
मारुति बोले लंकाधीश्वर! बल का मूल एक ही स्थल है।
उसे अचिन्त्य शक्ति कह लो या कह लो वह केवल ईश्वर है।

योऽयं विमर्देषु न मग्न पूर्वः सुरैः समेतः सह बास वेन।
भवन्तमासाद्यरणे विभिगो वेला मिवा साद्य यथा समुद्रः॥
अनेन दत्तानि सुपूजितानि भुक्ताश्चभोगा निभृताञ्चभृत्या।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराग्य मित्रेषु च यापितानि॥
एषोहिताग्निश्च महातपाश्चवेदान्तगः कर्मसु चाश्यवीर्यं।

जो वीर इन्द्रादि देवताओं से भी युद्ध में कभी नहीं हारा था। वह आज आपसे संग्राम करता हुआ उसी तरह मारा गया जिस तरह समुद्र का जल किनारे की ठोकरें खाकर फिर समुद्र में चला जाता है।

रावण ने विधि पूर्वक हवन किये हैं, ………शत्रुओं से बैर

करके मारा गया है। इसने तपस्या की थी, वह बड़ा तेजस्वी था, सम्पूर्ण उपनिषदों को पढ़ा था इत्यादि।

देखि रावण क्यों इस काल अनेकों खर दूषण के वृन्द।
कुचलते चलते बन मासंग, मनुजता के कोमल अरबिन्द।
अनेकों देख रहे ऋषि बृन्द, न कोई चलता किन्तु उपाय।
महाभीषण यह अत्याचार मनुज मनुजों को ही खाजाय।।

यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्।
तस्मात्त्वं रावणोनाम नाम्नाराजन् भविष्यसि।।

यथा— हे दशग्रीव! तुमने जो बड़ा भारी नाद किया था, उससे हम बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारे नाद से तीनों लोक व्याकुल होकर रोने लगे हैं। अतः अब से तुम्हारा नाम 'रावण' पड़ गया।

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगती तले।
एवं त्वाम मिधास्यन्ति रावणं लोक रावणम्।।

वा. रा. उ. १६·४०

मयसूदन! कपिराज! दूसरा रावण था,
पैर से दबना नहीं, धन्य तेरा भी प्रण था।
कभी न तेरी पीठ लगी थी किसी समर में,
कठपुतली-सी रही जय श्री तेरे कर में।
तू था दूजा सूर्य, तेज तेरा अनुपम था,
बैरी दल के लिए नहीं तू यम से कम था।
जिस प्रकार था बीर उसी बिध सरल रहा था,
तू ने ही! इस हेतु छलो कर दुःख सहा था।

—:●:—

अंगद

अंगद ! तुममें तनिक लोभ का नाम नहीं था,
हरना रावण गर्व और का काम नहीं था।
उसने विविध प्रकार तुम्हें यद्यपि फुसलाया,
किन्तु तुम्हारे साथ लगे क्यों उसकी माया।

अवसर पाये बिना नहीं तुम कुछ कहते थे,
पर पा करके उसे नहीं तुम चुप रहते थे।
वर माँगो यह कहा राम ने तुमसे ज्योंहीं,
माँगा तुमने धन्य बाप का बदला त्योंहीं।

कृष्ण नाम से गोप बनूँगा ब्रज में जब मैं,
व्याध बनाकर तुम्हें संग रक्खूँगा तब मैं।
ज्यों यादव मर मिटें, मारना मुझको आकर,
अंगद होना सुखी बाप का बैर चुका कर।।

कपि ! अब तुम हो नहीं न यदुपति राम हैं,
तुम लोगों के किन्तु जगत में अमर नाम हैं।
इसीलिए तो हुए अनेकों कर्मवीर हैं,
ज्ञानवीर हैं, दानवीर हैं, धर्मवीर हैं।

अपमानित हो रहे, कहो क्या यही शान्ति है ?
नहीं, नहीं, तुम चूक रहे हो हुई भ्रान्ति है।
ईश्वर से भी नहीं दबे, की धर्म लड़ाई,
अंगद ! तुम में भरी हुई थी बुद्धि बड़ाई।

अंगद रावण को फटकारता है—

तू रजनीचर नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जव हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न गाल बजावत सोहौं ।।
बीस भुजा दससीस हरौं, न डरौं प्रभु आयसु भजते गेहौं।
खेल में के हरि ज्यों गजराज दलौं, दल बालि को बालक तैहौं ।।

तीय सिरोमनि सीयतजी, जेहिं पावक को कलुषाई रही है।
धर्म धुरन्धर बंधुतज्यो, पुरलोगन की विधि बोलि कही है।
कीस निसाचर को करनी न सुनी, न त्रिलोकी न चित्त रही है।
राम सदासरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है।

अंगद रावण संवाद—

रावण-कौन हो पठये सो कौने, ह्वाँ तुम्हें कह काम है?
अंगद जाति बानर, लंकनायक-दूत, अंगद नाम है?
कौन है वह बाँधि कै हम देह पूछि सबै दहीं?
लंक-जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही॥

कौन के सुत? 'बालि के' वह कौन? बालि न जानिए।
'काँख चापि तुम्हें जो सागर सात-हात बखानिए।
है कहाँ वह बीर? अंगद देव लोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ-बान त्रिमान बैठि सिधाइयो।

लंक नायक को? विभीषण, देव-दूषण को दहै?
मोहि जीवन होहि क्यों? जग ताहि जीवत को कहै?
मोहिं को जग मारिहै? दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।
कौन बात पठाइयो कह वोर बेगि बखानिए॥

अंगद-श्री रघुनाथ कौ बानर, केसव आयौ हो एक न काहू ह्यो जू।
सागर को महझारि, चिकारि त्रिकूट के देह बिहार छयौ जू॥
सीय निहारि सँहारि के राच्छस सोक असोक बनोहि दयौ जू।
अच्छ कुमारहि मारि कै लंकहि जारि कै, निकेहि जात भयौ जू॥



विभीषण की शरणागति

दीन दयालु कहावत केशव हौं अति दीन दशा गहे गाढ़ो ।
रावन के अघ-ओघ समुद्र मैं बूड़त हौं करही गहि काढ़ो ।।
ज्यौं गज को प्रहलाद की कीरति त्यौंही बिभीषण को यस बाढ़ो ।
आरत बंधु पुकार सुनौ किन, आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो ।।

केसव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सकौ न दुखारे ।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्यौं ही तहाँ तिहि भाँति पधारे ।
मेरिय बार अबेर कहा, कहुं नाहिं तू काहु के दोष विचारे ।
बूड़त हैं महा मोह समुद्र मैं, राखत काहे न रावन हारे ।।

आई सचिव बिभीषन के कही ।
कृपा सिंधु दसकंध बंधु लघु चरन सरन आयो सही ।।
विषम विषाद वारि निधि बूड़त थाह कपीस-कथा लही ।
गये दुख दोष देखि पद पंकज अब न साध एकौ रही ।।
सिथिल सनेह सराहत नख सिख नीकि निकाई निरवही ।
तुलसी मुदित दूत भयो, मानहुं अमिअ लाहु माँगत मही ।।

सब भाँति विभीषन की बनी ।
कियो कृपालु अभय कालहु ते, गई संसृति-सांसति घनी ।।
सखा लखन हनुमान संभु गुरु, धनी राम कोसल धनी ।
हिय ही और, और कीन्हीं विधि, राम कृपा औरइ ठनी ।।
कलुष कलंक-कलेस-कोस भयो जो पद पाइ रावन रनो ।
सोइ पद पाइ विभीषन भी भव-भूषन हलि दूषन अनी ।।
बाँह पगार, उदार सिरोमनि, नत पालक, पावन पनी ।
सुमनि बरषि रघुबर गुन बरनत, हरषि देव दुंदुभी हनी ।।
रंक निवाज रंक राजा किये, गए बरब गरि-गरि मनी ।
राम प्रनाम महा महिमा खनि सकल सुमंगल मनि जनि ।
होय भलो ऐसे ही अजहूं गये राम सरन परिहरि मनो ।
भुजा उठाइ, साखि संकर करि, कसम खाइ तुलसी मनो ।।

अब मोहिंभा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तब सायक ॥
यद्यपि तदपि नीति असि गाई। विनय करिअ सागर सन जाई ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा ॥

बोले तब इस भाँति विभीषण, चिन्ता नहीं मुझे जो मारा।
अग्रज हो, पर तुमसे बढ़कर मुझे कुटुम्ब देश हित प्यारा।
उसकी रक्षा हेतु मुझे अब न्याय पक्ष अपनाना होगा।
जिन्हें न लाना चाह रहा था, शरण उन्हीं की जाना होगा।

शोकाकुल सुग्रीव विभीषण, हनुमान अंगद चुप चाप,
देख रहे थे व्यथा व्यथित श्रीराम चन्द्र का करुण विलाप।
कहा विभीषण ने तब 'प्रभुवर' जबतक स्वासा तबतक आस,
विपत क्रिया ही से कटती है, रोने से तो बढ़ती त्रास ॥

उवाच कैकसी भूयः पुर्णेन्दुखि रोहिणीम्।
पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च भविष्यति।
एव मुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित्।

विश्रवा मुनि ने कैकसी से कहा—

हे सुन्दर मुख वाली भामिनी! तुम्हारा छोटा पुत्र हमारे वंश के अनुसार धर्मात्मा होगा।

विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिम सुतः।
तस्मिञ्जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह ॥

यथा—सबसे पीछे धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ। उनका जन्म होते ही देवताओं ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और 'धन्य-धन्य' कहते फूलों की वर्षा की।

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यम् धर्मे व्यवस्थितः।
स्वाध्याय नियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥

विभीषण जितेन्द्रिय और धर्मात्मा थे। वे सदा धर्म कर्म करते हुए वेद पाठ करते और सात्विक भोजन करते थे।

प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वं मन्त्रिणः।
अवश्यं च मया वाच्यं यदृष्टमपि वा श्रुतम् ॥

यथा—मंत्रियों ने जानते हुए भी ये समाचार आप तक नहीं पहुंचाया। किन्तु जो कुछ देखा और सुना है—सो सब आपसे कह दिया।

राक्षसेन्द्रमहावीर्यं लङ्कास्थः स्वं धरिष्यसि।
यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी।
यावच्चमत्कथा लोके तावद्राज्यं तवास्त्विह।
शासितस्त्वं सखित्वेन कार्यं ते मम साशनम्॥

राम ने विभीषण से कहा—हे महाबलशाली राक्षसेन्द्र! जब तक पृथ्वी पर प्रजा है, तब तक तुम लंका का राज्य करो। हे राक्षस राज! जब तक सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और यह मेरी कथा विद्यमान रहे, तब तक तुम राज्य करो।

यथा—जो वीर इन्द्रादि देवताओं से भी कभी युद्ध में नहीं हारा था, वह आज आपसे संग्राम करता हुआ उसी तरह मारा गया, जिस तरह समुद्र का जल किनारों का ठोकर खाकर फिर समुद्र में चला जाता है। रावण ने विधि पूर्वक हवन किया हैं, विविध भोगों को भोगा है, याचकों को दान दिया है, सेवकों का पालन किया है, मित्रों को धन से प्रसन्न किया है और वह शत्रुओं से वैर करके मारा गया है।

विभीषण रावण का कनिष्ठ सहोदर भ्राता था। वे केकसी के चतुर्थ सन्तान थे। विश्रवा मुनि ने केकसी से कहा था शुभानने! तुम्हारा जो कनिष्ठ पुत्र होगा वह वंशानुरूप धर्मात्मा होगा। विभीषण के उत्पन्न होते ही देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई।

विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः।
तस्मिञ्जाते महा सत्त्वे पुष्प वर्षं पपात ह॥

सबसे पीछे धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ देवताओं ने प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा की।

पश्चिमोयस्तव सुतो भविष्यति शुभानेन।
मम बंशानुरूपः स धर्मात्मा च भविष्यति॥

विभीषण बाल्यावस्था से ही धार्मिक थे। उनकी कठोर तपस्या

से प्रसन्न होकर जब ब्रह्मा ने उन्हें वर माँगने को कहा तो विभीषण ने कहा—

प्रीतेन यदि दातव्यों वरों में शृणु सुव्रत।
परमापद्‌गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत ॥

हे सुव्रत पितामह! आप यदि प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो हम प्रार्थना करते हैं—हे भगवन! अतिशय बिपद काल में भी मेरी बुद्धि धर्म में लगी रहे। बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाय। विभीषण चिरकाल तक धार्मिक रहे।

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च।
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तु धर्मं च पालये ॥

जिस समय और जिस आश्रम में भी मैं रहूं सदा मेरी बुद्धि धर्म में ही लगे। वा. रा. ७।२०।२०।३२

वीभीषण साधु प्रकृतिके महात्मा पुरुष थे। गंधर्वराज महात्मा शेलूष की कन्या सरमा से उनका विवाह हुआ था जिसने तरणी-सेन पुत्र हुआ। विभीषण ने बार-बार रावण को समझाया कि वंदेही को वापस कर दो पर रावण ने विभीषण के बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। अन्त में विभीषण को बाध्य होकर लंका त्याग कर रामकी शरण में जाना पड़ा। रावण के दुर्व्यबहार का सम्पूर्ण विवरण वानर गण को कह सुनाया। विभीषण ने वानरगण से कहा—हे वानरगण! महात्मा राम को मेरे आने का समाचार शीघ्र जाकर कह दें। राम के सम्मुख जाकर विभीषण उनके चरणों पर गिर पड़ा और नत मस्तक होकर कहने लगा—हे प्रभु! मैंने अपने अग्रज भ्राता रावणको अनेक प्रकार से समझाया कि वह जानकी को बापस कर दे, परन्तु मेरे सत्परामर्श का तिरष्कार कर दिया और मुझे क्रुद्ध होकर नाना प्रकार से फट-कारने लगा। निरुपाय होकर मुझे आपकी शरण में आना पड़ा। राम ने प्रतिज्ञा की और कहा—हे विभीषण! मैं रावण का बधकर तुम्हें लंका के सिंहासन पर अभिषिक्त करूँगा। विभीषण ने भी पूर्ण रूप से राम की सहायता करने का संकल्प किया। तत्क्षण लक्ष्मण ने राम का आदेश पाकर विभीषण को राक्षस

राज्य के सिंहासन पर औपचारिक रूप से अभिषिक्त कर दिया। हर प्रकार विभीषण राम की सहायता करने में तत्पर रहा करते थे। इन्द्रजीत मेघनाद के नाग वाण से आहत होकर राम और लक्ष्मण तिलमिला उठे। वानरगण शोक विह्वल हो गए। सुग्रीव ने कपिदल को सान्त्वना देते हुए कहा—

न कालः कपि राजेन्द्र वैक्लव्यम वलम्बितुम्।
अतिस्नेहोऽप्य कालेऽस्मिन मरणायोप कल्पते ।।
वा. रा. ६।४६।३७-३८

हे वानर श्रेष्ठ! यह समय कायरता दिखलाने का नहीं। अतः विपदकाल में अधिक प्रेम भी घातक होता है। तुम सब कायरता को छोड़ दो। इन्द्रजीत द्वारा मायामयी सीता के बदले वास्तविक सीता का वध समझकर राम शोकाकुल होकर मूर्छित हो गए। उस समय विभीषण ने सीता के वध का रहस्योद्घाटन राम से किया। हे राघव! इन्द्रजीत निकुम्भिला मंदिर में जाकर होम कर रहा है। यदि उसका होम सकुशल सम्पन्न हो जायगा तो उस पर विजय पाना असम्भव है। अतः उसका होम सम्पन्न होने के पूर्व ही उस पर आक्रमण कर देना चाहिए। यदि यह भेद रहस्य विभीषण नहीं बताता तो राम का जय करना दुस्तर हो जाता। इन्द्रजीत जान गया कि यह सब चाल विभीषण की ही बताया हुई है जो लक्ष्मण यज्ञ के समय ही आक्रमण कर रहे हैं। विभीषण ने लक्ष्मण को इन्द्रजीत का वध करने हेतु नाना प्रकार से उत्तेजित किया। लक्ष्मण और इन्द्रजीत रावण पुत्र मेघनाद में घमासान युद्ध होने लगा। लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजीत निहत हो गया। मेघनाद के वध की सूचना पाकर राम ने कहा! लक्ष्मण तुमने आज बहुत बड़ा काम किया है। मेघनाद के मारे जाने से अब तुम अपनी विजय निश्चित समझो। राम ने कहा! लक्ष्मण आज तुमने बड़ा दुष्कर कार्य किया है और अब मैं रावण को भी मरा हो समझता हूं। रावण तत्पश्चात राम द्वारा मारा गया। रावण के मरने पर विभीषण विलाप करने लगा। किन्तु राम ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा। हे विभीषण! अब विलाप करना निरर्थक है। चलो, रावण का संस्कार करो। विभीषण ने कहा! राजन्!

त्यक्त धर्मव्रतं क्रूरं नृशसमनृतं तथा।
नाहमर्होऽमिसस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम्।
भ्रातृ रूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहितेरतः।

जो धर्म और व्रत को त्यागकर झूठ बोलता और क्रूरकर्म करता था और पराई स्त्रियों को सताता था उसका संस्कार मैं नहीं करूंगा। यह मेरा भाई नहीं शत्रु था। राम के समझाने पर विभीषण ने अपने अग्रज रावण की अंतिम संस्कारक्रिया सम्पन्न किया। इसके उपरान्त राम ने विधिवत विभीषण का अभिषेक करके लंका के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात सीता लक्ष्मण विभीषण और वानरों सहित राम अयोध्या लौट आए। राम के अश्वमेध यज्ञ में भी विभीषण अयोध्या आये थे। यज्ञ समाप्ति के वाद विभीषण लंका वापस चले गए। विभीषण पुनः राम के महाप्रयाण के समय अयोध्या आए थे। राम ने विभीषण को सम्बोधित करते हुए कहा।

यावत प्रजाधरिष्यण्ति तावत्त्वं वै विभीषण।
राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थः स्वं धरिष्मति।।

हे राक्षसराज! जब तक पृथ्वी पर प्रजा है, तब तक तुम लंका का राज्य करो। लंका के राज सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते समय लक्ष्मण और विभीषण में जो वार्तालाप हुई है उससे जाना जाता है कि लंका राज्य का विभीषण को लोभ था जैसा साधारणतः समालोचक कहते हैं। परन्तु विभीषण ने राज्य लोभ के लिए रावण का वध नहीं कराया। वह जानता था कि रावण का वध अवश्यम्भावी है और राम द्वारा समूल राक्षस वंश का संहार हो जायगा और राक्षस कुल समाप्त हो जायगा। इस कारण उसने राम की शरण ली जिससे कम से कम राक्षस कुल का निरबंश न हो जाय। यही उसका राम की शरण में जाने का मूल उद्देश्य था।

राम रावण के महायुद्ध के प्रथम दिन ही इन्द्रजीत ने नागपाश के द्वारा राम और लक्ष्मण को बन्दी बना लिया तो सभी वानरी सेना हताश होकर विलाप करने लगी। उस समय विभीषण ने सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए कहता है—

अन्न बीत्काल संप्राप्तम संभ्रम मिदं वचः।
न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमव लम्बितुम् ॥
अति स्नेहोऽप्य कालेऽस्मिन् मरणायोपकल्पते।
तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यं विनाशनम् ॥
वा. रा. ६।४६।०७-०८,

हे कपिराज ! यह विह्वल होने का अवसर नहीं है। इस प्रकार विपत्ति काल में अतिशय स्नेह मृत्यु का कारण हो जाता है। इस समय हमारी सेना का शोक करना उचित नहीं वरन हमें धैर्य से काम लेना चाहिए। राम और लक्ष्मण की मुख कान्ति को देखने से मृत्यु का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता था, विभीषण ने संकेत किया था। जब इन्द्रजीत द्वारा सीता की हत्या का संवाद सुनकर राम मूर्छित हो गिर पड़े उस समय विभीषण ने वस्तु स्थिति का वास्तविक भेद बताते हुए राम से कहा था—हे नाथ! आपका चिन्ता करना बिलकुल निर्मूल है। सीता का वध कोई कर हो नहीं सकता। वह मायामई सीता थी। इन्द्रजीत जब निकुम्भिला यज्ञ कर रहा था तो विभीषण ने राम को सावधान करते हुए कहा! हे प्रभु—यदि यह यज्ञ पूर्ण हो जायगा तो मेघनाद का वध असम्भव है। अतः विभीषण ने ही यज्ञ विध्वंस करने का परामर्श दिया था। विभीषण को लंकाधिपति बनाने के बाद विभीषण व वानरी सेना सहित राम अयोध्या आए। राम के महाप्रस्थान के समय भी विभीषण अयोध्या आए थे। उस समय राम ने विभीषण को सम्बोधित करते हुए कहा था—

विभीषणम यथोवाच राक्षसेन्द्रं महायशाः।
यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत्वं वै विभीषण ॥
राक्षसेन्द्र महावीर्यं लङ्कास्यः स्वं धरिष्यसि।
यावच्चेन्द्रश्च सूर्यञ्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥
वा. रा. ७।१०८।२७।२८

यज्ञजावच्चमत्कथा लोके तावद्राज्यतवास्त्विह।
शासितस्त्वं सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ॥

प्रजा सरक्ष धर्मेण नोत्तरं वस्तु मर्हसि।
किचान्य द्वक्तु मिच्छामि राक्षसेन्द्र महामेत ।।
वा. रा. ७।१०८।२९-३०

हे राक्षस राज विभीषण ! जब तक प्राणि मात्र जीवित रहेंगे तब तक तुम लंका पर राज्य करो ।

कुछ समालोचकों ने विभीषण को देश या जाति द्रोही भी कहा है। जैसे—

१—राम के शिविर में जाने के कारण राम ने उसे लंका का अधिपति बनाने का जब आश्वासन दिया तो लोभ में पड़कर लंका का राज्य ग्रहण करने का विरोध नहीं किया अथवा उसे लंका राज्य का लोभ था ।

२—उसने रावण के सारे भेद राम को बता दिया ।

३—उसने मेघनाद का यज्ञ विध्वंस करवाया ।

४—उसने रावण के मारे जाने का रहस्य बतलाया। जो भी हो उसने राक्षस वंश का निर्मूल होने से तो बचाया। यह उसकी सूझ-बूझ का विवेक पूर्ण निर्णय था। यदि वह ऐसा न करता तो सम्पूर्ण राक्षस कुल का विनाश हो जाता और राक्षस वंश में कोई राज्य शासन करने का उत्तराधिकारी न रह जाता। श्री बी० एस० शास्त्री का विवरण है—

To say that Bibhisan was a Very ambitious, grasping man to take Lanka greedly is wrong: If he took Lanka, it was in the highest senseof duty and service, it was because a Tricken land wanted a wise, honest and straight forward Suler.

बोले तब इस भाँति विभीषण, चिन्ता नहीं मुझे जो मारा,
अग्रज हो ! पर तुमसे बढ़कर मुझे कुटुम्ब देश हित प्यारा ।
उसकी रक्षा हेतु मुझे अब न्याय पक्ष अपनाना होगा,
जिन्हें न लाना चाह रहा था, शरण उन्हीं की जाना होगा ।

विभीषण-चारित्रिक दोषावली—

जैसा कि पूर्व परिच्छेद में दर्शाया गया है कि विभीषण बिल-कुल दोषमुक्त नहीं है फिर भी मैंने उसे निर्दोष ही सिद्ध करने का प्रयास किया है। कुछ आलोचक उसे कुल द्रोही, देश और राष्ट्र द्रोही कहकर कलंकित करते हैं। दूसरी ओर उसे राम भक्त धर्मात्मा के रूप में आदर करते हैं। इस सम्बन्ध में बाल्मीकि और तुलसी एक मत है। समीक्षकों में भी आपस में बहुत मतभेद है। कुछ उसे कुल और राष्ट्र द्रोही कुछ नीतिज्ञ और कुछ सच्चा धर्मात्मा राम भक्त मानते हैं। कुछ स्वार्थी राज्य लोभी।

जैसा कि पूर्व परिच्छेद में चित्रित किया गया है कि यदि वह राम की शरण नहीं लेता तो रावण ही नहीं बल्कि विभीषण सहित राक्षस वंश और राक्षस जाति का समूल निरवंश हो जाता और राक्षस कुल में कोई नहीं रह जाता। अतः उसके बचे रहने से राक्षस वंश निरवंश नहीं हुआ। यही विभीषण का राम के पक्ष में जाना, योग करना और शरणागत होना विभीषण की महान राजनीतिक उपलब्धि है। अर्थात—'रहा न कुल कोउ रोवन हारा' चरितार्थ न हो पाया।

विभीषण रावण से कहता है—

अवसर जानि विभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहो नावा।।

दोहा—तात चरन गहि मागउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुं, अहित न होइ तुम्हार।।

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।
असि कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।

दोहा—रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि।।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।।
नाथ दसासन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता।।

विभीमण ने रावण द्वारा निष्ठुर व्यवहार और अति अपमानित होने पर ही लंका का परित्याग किया था—कवितावली में गो० तुलसीदास जी ने कहा है—

वेद विरुद्ध मही मुनि साधु ससोक किये, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूं करुना कर कोप न धारो।
सेवक छोह ते छांड़ी क्षमा तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौ लौं न दाव दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीसन लात न मारो।।

जब हनुमान ने सीता की खोज में लंका में प्रवेश किया तो उन्होंने क्या देखा ?

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।

दोहा—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरष कपिराइ।।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुं तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय विभीषनु जागा।।
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।
विप्र रूप धरि वचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तहँ आए।।

हनुमान ने पूछा ? हे राम भक्त ! आपका यहाँ निशाचरों के बीच कैसे रहना होता है ?

विभीषण ने कहा—

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी।

विभीषण साधु प्रकृति का धर्मात्मा पुरुष था। उसकी रावण के दुष्कर्म के कारण ही नहीं बनती थी। विभीषण ने रावण से सीता को लौटाने को बार-बार आग्रह किया पर रावण ने काल बस उसकी एक भी न सुनी और उसे लात से मारकर घोर अपराध किया था।

सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार।

रावण द्वारा इस प्रकार अपमानित और तिरस्कृत होने पर रावण को, चेतावनी देते हुए वह राम की शरण में गया था। विभीषण जब राम की शरण में गया तो राम ने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा—

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुलभूषन।।

विभीषण का राम की शरण में जाना समयोचित परिस्थितियों को देखते हुए अनिवार्य हो गया था। यदि वह ऐसा न करता तो राक्षस वंश का समूल संहार हो जाता। अतः विभीषण का यह बुद्धिमत्ता और विवेकमय कार्य था। विभीषण धर्म के पक्ष में था और रावण अधर्म के पक्ष में था। राम ने भी अधर्म का नाश करने के लिए ही अवतार लिया था और अवतारी पुरुष ऐसे पुण्य कार्य के लिए पृथ्वी पर मानवी रूप धारण करके प्रकट होते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसंस्थापनायाय सम्भवामि युगे युगे ।।

गीता० ४-७।८

वरंहुतवहज्वालापञ्चरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरि चिन्ता विमुख जन संवास वैशसम् ।।

अर्थात अग्नि के ज्वालापञ्जर में व्यवस्थित रहना बेहतर है किन्तु भगवच्चिन्ता विमुख जनों के साथ रहना श्रेयस्कर नहीं है। इसी कारण विभीषण रावण का सदन छोड़कर श्रीराम की शरण में गया। विभीषण राज्य की आकांक्षा से राम को शरण में गये यह कहना धर्माचरण की दृष्टि से असंगत है। क्योंकि वह समस्त सुख भोग परिवार का मोह त्याग कर विरक्त होकर राम की शरण में गया।

इस प्रकार कुल द्रोही होकर उसने कुल का उपकार ही किया और राक्षस वंश को समूल नष्ट होने से बचाया। प्रति पक्ष का परित्याग करके धर्म, कुल और राज्य की रक्षा ही किया, संहार नहीं। सीता को कई माह रावण के अधीन लंका में रहने पर राम को उनके सतीत्व पर सन्देह होने लगा। सीता अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए अग्नि में प्रवेश कर यह सिद्ध करने के लिए उद्यत हो गई ताकि राम को उनके सतीत्व का विश्वास हो जाय। इसी समय विभीषण ने सीता को अग्नि में प्रवेश करने से रोक

दिया। इस पर राम ने विभीषण से कहा। विभीषण—यह पति पत्नी का व्यक्तिगत विवाद है इससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है और तुम क्यों आपत्ति करते हो? विभीषण ने कहा। भगवन! यह पति पत्नी का विवाद अवश्य है, पर इस विवाद का निर्णय हमारा न्यायालय करेगा। आपको यदि सीता के सतीत्व के विषय में सन्देह हो तो आप हमारे न्यायालय में अपना अभियोगपत्र दाखिल करके निर्णय करा लें कि सीता निर्मल, शुद्ध और निर्दोष हैं या उनका सतीत्व भंग हो गया है। आपको स्वयं ऐसे विवाद का निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है। हम अपना राज्य और शासन रहते आपको ऐसा कदापि नहीं करने देंगे। इस समय हमारे लिए आप दोनों ही प्रजा के रूप में हैं और हम यहाँ के राजा हैं। राम बड़े ही असमंजस में पड़ गए और कहने लगे—हे विभीषण! क्या तुम हमसे युद्ध करोगे। विभीषण ने नम्र भाव में कहा—हे राम! जिन माता जानकी के उद्धार और रक्षा के लिए मैंने अपने सुहृदय ज्येष्ठ भ्राता रावण से आपके पक्ष से युद्ध किया यदि आवश्यकता हुई तो उसी माता जानकी की रक्षा के लिए आपसे भी युद्ध करूंगा।

राम ने कहा—यह कैसा? भक्त और स्वामी का युद्ध कहाँ तक उचित और शोभनीय है। राम ने कहा! अच्छा, ठीक है। हम सीता की अग्नि परीक्षा अयोध्या ले जाकर करेंगे। विभीषण युक्ति युक्त वचन कहने लगा। हे राम! लंका से सीता को अयोध्या ले जाने के लिए आज्ञा और अनुमति कौन देगा? और हमारे शासन से ले जाने के लिए अनुज्ञापत्र (परमिट) और पारपत्र कौन देगा? हम सीता को लंका से जाने ही नहीं देंगे। राम विकट परिस्थिति में फँस गए। भक्त और भगवान का युद्ध कैसा? अन्त में राम और विभीषण में सन्धि हुई कि इस विवाद का निर्णय करने के लिए विवेक पंच नियुक्त किया जाये। उनका निर्णय हम दोनों को मान्य होगा। पाँच विवेक यथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्निदेव और इन्द्र आए और उन्होंने निर्णय किया कि हे विभीषण! सीता की अग्नि परीक्षा होने दो। विवेचकों की उपस्थिति में सीता अग्नि में प्रवेश

कर गई और बिलकुल शुद्ध निर्मल निकलीं। भक्त विभीषण और भगवान राम के विवाद का समाधान हो गया।

शत्रु का जिस बुद्धि बल से था सहायक तू बना,
क्यों न भाई का बना ? किसने किया तुझको मना ?
राम लंका राज्य को ले बैठते यदि आप ही,
मूढ़ ! तेरा फिर ठिकाना कुछ वहाँ लगता नहीं।

भारतीयों पर विभीषण का असर होवे नहीं,
भीरु ही जयचन्द से हम आत्मबल खोवें नहीं।
ईश ! बस, इतनी कृपा कर हम सदा सोवें नहीं,
हो अनादृत शत्रुओं के सामने रोवें नहीं।



रामायण में राक्षस सभ्यता-रक्ष संस्कृति

रावण का परिचय

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। शिव बिरंचि पूजेहुं बहु भाँति ।।

पुलस्त्य ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक थे। छः शक्तिशाली महर्षियों में इनका भी नाम है। पुलस्त्य मुनि के पुत्र राक्षस, वानर, किन्नर यक्ष हैं। ये अर्जुन के जन्म महोत्सव में भी पधारे थे। ये इन्द्र की सभा में बैठते हैं। ये ब्रह्मा जी की सभा में रहकर उनकी उपासना करते हैं। इनकी पत्नी का नाम गो था। उनके गर्भ से इनके द्वारा बैश्रवण (कुबेर) का जन्म हुआ था। इन्होंने अपने आधे शरीर से विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न किया था। इक्कीस प्रजापतियों में भी इनका नाम है। प्रयाण के समय भीष्म जी के पास ये भी आये थे। महाभारत में ये कई नामों से सम्बोधित किए गए हैं।

रावण एक राक्षस राज, जो अत्यन्त दुरात्मा था और सीता को हर ले गया था बिश्रवा मुनि का पुत्र था। इसके माता का नाम पुष्पोत्कटा था। इसके छोटे भाई कुम्भकर्ण, विथीषण थे और एक भगिनी सूर्पणषा थी। यह अनेक नामों से सम्बोधित होता था जैसे—दसग्रीव, दसकंधर, दशानन, पौलस्त्य, राक्षसराज, राक्षसेन्द्र एवं राक्षसेश्वर इत्यादि नामों से प्रसिद्ध था। धर्मात्मा विभीषण ने सिर और भुजा ऊपर उठाकर वेद पाठ करते हुए पाँच हजार वर्ष तक सूर्य की आराधना की थी। रावण भी निराहार रहकर दस हजार वर्ष तक तपस्या करता रहा।

पञ्च वर्ष सहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तते।
तस्थौ चोर्ध्वंशिरो बाहुः स्वाध्यायधृत मानसः ।।
एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थेव नन्दने।
दश वर्ष सहस्राणि गतानिनियतात्मनः ।।

दश वर्ष सहस्राणि निराहारो दशाननः।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः॥
एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः।
शिरांसिनव चापस्य प्रबिष्टानि हुताशनम्॥
अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः।
छेतुकामे दशग्रीवेप्राप्तस्तत्र पितामहः॥
वा. रा. उ. सर्ग १० श्लोक ८-१२

धर्मात्मा बिभीषण ने सिर और भुजा ऊपर उठाकर वेद पाठ करते हुए पाँच हजार वर्ष तक सूर्य की आराधना की थी। दसग्रीव रावण भी निराहार रहकर दस हजार वर्ष तक तपस्या करता रहा। जब एक हजार वर्ष पूरा होता था तब अपना एक सिर काटकर अग्नि में हवन कर देता था। दसवाँ हजार पूरा करने हेतु वह अपना दसवाँ सिर काटना चाहा उसी समय वहाँ ब्रह्मा आ गये। ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर दसग्रीव ने ब्रह्मा से वर माँगते हुए कहा—हे देव मैं अमर होना चाहता हूं। ब्रह्मा ने कहा—यह वर मैं नहीं दे सकता हूं। कोई दूसरा वर माँगो। दूसरा वर माँगते हुए उसने ब्रह्मा से कहा—हे लोक पितामह मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओं द्वारा न मारा जाऊँ। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा—हे राक्षस श्रेष्ठ! ऐसा ही होगा। उसने मनुष्य से न मारे जाने का वर अहंकार ग्रस्त होने के कारण नहीं माँगा। मनुष्य द्वारा ही वह मारा गया।

रावण मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥

रावण राक्षस था। राक्षस कौन थे, राक्षस शब्द रामायण, महाभारत, गीता, हरिवंश, पुराणादि ग्रन्थों में नाना स्थानों एवं नाना अर्थों में व्यवहृत हुआ है। महाभारत में राक्षस शब्द कई स्थानों पर व्यवहृत हुआ है। भीष्म ने दुर्योधन से कहा था 'मैं तुम्हें राक्षस समझता हूं। कारण तुम मोह प्रयुक्त प्रकृति तत्व को समझ नहीं पा रहे हो। तुम्हारा मन तमसावृत्त हो गया है। रावण का विचार भी दुष्कृत चरित्र और भावना से ग्रसीभूत हो गया था जो

उसके मरण का कारण बन गया। ब्रह्मा के छः मानस पुत्र उत्पन्न हुये थे जिनके नाम थे मरीचि, अत्रि, अंगिराः पुलस्त्य, पुलह व क्रतु जिनको प्रजापति भी कहते हैं। पुलस्त्य चौथे प्रजापति कहे जाते हैं। पुलस्त्य के पुत्र महातेजस्वी विश्रवा है।

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः॥

बा. रा. ५।२३।७

विश्रवा पुलस्त्य के तेजस्वी मानस पुत्र थे। कहीं कहीं उल्लेख मिलता है कि विश्रवा ब्रह्मर्षि पुलस्त्य और राजर्षि त्रिण बिन्दु को कन्या वेदश्रुति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। विश्रवा के गुणों से प्रभावित होकर महामुनि भरद्वाज अपनी कन्या देववर्णिनी को उन्हें संप्रदान कर दिया था। देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण (कुबेर) हुये। पिता की आज्ञा से वैश्रवण लंका के अधिपति हुए।

ब्रह्मा ने कुछ प्राणियों की सृष्टि की। उनको जल की रक्षा, करने को कहा। इनमें से कुछ ने उत्तर दिया 'रक्षामः', रक्षा करेंगे। दूसरों ने कहा 'यक्षामः'। अतः ब्रह्मा ने पहले वर्ग को राक्षस तथा दूसरे वर्ग को यक्ष का नाम दिया। इन राक्षसों के दो प्रमुख थे, हेति और प्रहेति। हेति के पुत्र विद्युतकेश से सुकेश उत्पन्न हुआ। सुकेश के तीन पुत्र उत्पन्न हुए-माल्यवान, सुमाली और माली। विश्वकर्मा ने इनके लिए त्रिकूट यानी तीन शिखरों वाला पर्वत पर लंका का निर्माण किया। ये तीनों लंका का शासन करने लगे। तीनों महातपस्वी थे और तीनों ने गन्धर्व कन्या से विवाह किया था। सुमाली के ग्यारह पुत्र तथा चार कन्यायें थीं। ये तपस्या के बल पर नाना प्रकार के वर प्राप्त कर देवताओं पर अत्याचार करने लगे। राक्षस और देवताओं में युद्ध छिड़ गया। देवताओं से पराजित होकर राक्षस गण रसातल में चले गये। एक बार सुमाली वैश्रवण को देखकर मुग्ध हो गए और सोचने लगे कि यदि ऐसा ही तेजस्वी एक दौहित्र मुझे प्राप्त हो जाय तो हमारा वंश धन्य हो जाय। उन्होने सर्वगुण सम्पन्न अपनी तृतीय कन्या कैकसी से कहा—

सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापति कुलोद्भवम्।
भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरयस्वयम्॥
वा. रा. ७।९।११

हे बेटी ! अब तुम प्रजापति के पुत्र पुलस्त्य से उत्पन्न विश्रवा के पास जाकर उनकी भार्या बन जाओ इत्यादि। कैकसी वैश्रवा के पास चली गई। कैकसी ने विश्रवा मुनि का चरण पकड़ कर उनसे पुत्र प्राप्ति की कामना की। मुनि ने कहा—भद्रे ! तुम्हारी अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। किन्तु तुमने अशुभ मुहूर्त में कामना की है अतः तुम्हारे तीन पुत्रों में तृतीय पुत्र ही धर्म निष्ठ होगा। मुनि ने कहा—

जनयामास वीभत्सं रक्षोरूपं क्षुदारुणम्।
दसग्रीवं महादंष्ट्रं नीलञ्जन चयो पमम्॥
वा. रा. ७।९.२८

इस प्रकार वरदान पाकर कैकसी के गर्भ से एक दारुण कुरूप राक्षस पुत्र उत्पन्न हुआ ! उसके दस सिर, बड़े-बड़े दाँत, नील पर्वत जैसा काला शरीर बड़ा मुख, 'ताम्रोष्ठं विंशति भुजं' बीस भुजाओं वाला था। उसके उत्पन्न होते ही सूर्य मंडल धूमिल हो गया, समुद्र में भीषण जल प्लावन हुआ तथा भयंकर आंधी-तूफान आया। सभी असगुन दिखाई पड़े।

अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः।
अथ नामाकरोत्तस्य पितामह समः पिता॥
वा. रा. ७।९।३२

यह पुत्र दसग्रीव युक्त उत्पन्न हुआ है। इसीलिये इसका नाम दशग्रीव होगा। इसके बाद महाकाय महाबली कुम्भकर्ण हुआ। घड़े के सदृश कान होने से इसका नाम कुम्भकर्ण पड़ा। तदुपरान्त कुरूपा सूर्पणषा सूप की तरह नख वाली कन्या उत्पन्न हुई। अन्त में धर्मात्मा बिभीषण का जन्म हुआ। दशग्रीव रावण के प्रमातामह का नाम विद्युतकेश था। विद्युतकेश की पत्नी का नाम स्यालकंटका था। लंकापुरी में दशाग्रीव के मातामह कुल के पूर्व पुरुष निवास करते थे। देवताओं का विरोध करने के कारण भगवान विष्णु ने

रावण के नाना माली माल्यवान और सुमाली को लंकापुरी से बिताड़ित कर दिया था। और वे लंका से भागकर पातालपुरी में रहने लगे। इस पराजय से राक्षस लोग बहुत दुखी रहते थे। एक दिन कैकसी ने दशग्रीव रावण से कहा—हे वत्स! तुम अपने भ्राता वैश्रवण को देखो वह कितना तेजस्वी है। एक ही पिता के पुत्र होते हुए तुम्हारी दशा ऐसी क्यों है? माता के प्रोत्साहित करने पर रावण ने प्रतिज्ञा किया—

सत्यं ते प्रति जानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा।
भविष्याम्योजसा चैव संतापंत्यज हृद्गतम्।।
वा. रा. ७।९।४५

रावण ने कहा—माता! मैं आपके सामने सत्य की शपथ खाकर कहता हूं कि मैं कुबेर वैश्रवण से भी अधिक तेजस्वी बनकर रहूंगा। तदर्थ रावण घोर तपस्या करने लगा। ब्रह्मा ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसको अजेय होने का वरदान दिया और कहा कि तुम्हारा वध सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव और राक्षस नहीं कर सकेंगे। अन्य प्राणी से उसको कोई भय नहीं था। मनुष्यादि को वह तृण समान समझने लगा—ब्रह्मा ने उसे वर देते समय कहा था—

पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस।
पितरामीह ते सौम्य वरं चान्य दुरासदम्।।
छन्दतस्तवरूपं च मनसा यद्यथेप्सितम्।
भविष्यति न संदेहो मद्वरान्तव राक्षस।।
वा. रा. ७।१०।२४-२५

हे सौम्य! इसके अतिरिक्त तुम्हें एक और भी दुर्लभ वर देता हूं। जिस समय तुम जैसा रूप धारण करना चाहोगे उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जायेगा। वर से गर्वोन्नत्त होकर रावण त्रिलोकी के समस्त प्राणियों को पीड़ित करने लगा। मातामह सुमाली और मातुल प्रहस्त ने रावण को लंका का अधिकार में कर लेने के लिये उत्तेजित किया। उस समय लंका यक्ष कुबेर के अधिकार में था। रावण ने बलपूर्वक लंका को अपने अधिकार में

कर लिया। कुबेर हिमालय पर्वत पर जाकर बस गये। तदुपरान्त रावण ने अपनी बहिन सूर्पणषा का कालकासुर के पुत्र विद्युतजिह्वा के साथ ब्याह कर दिया। रावण ने मय दानव की पत्नी हेमा की कन्या सुन्दरी मन्दोदरी से ब्याह किया। दशानन रावण की अनेक भार्यायें थी। मारीच कहता है—

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत्।
प्रमदानां सहस्राणि तव राजन् परिग्रहः॥

वा. रा. ३-३८-३०

हे राजन! परस्त्री संग से बढ़कर कोई भी बड़ा पाप नहीं है। तुम्हारे रनिवास में अन्य हजारों विवाहिता रानियाँ हैं। हनुमान ने भी सीता के अन्वेषण करने के समय रावण के शयनागार में अनेक स्त्रियों को देखा था—

राक्षसीभिश्चपत्नीभो रावणस्य निवेशनम्।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्या भिरावृतम्॥

वा. रा. ५।११६

विवेकः शक्य आधातुंभूषणांगाम्बरस्रजाम्।
रावणे सुख संविष्टे ता स्त्रियो विविध प्रभा॥
ज्वलन्तः काञ्चनादीपाः प्रेक्षन्तानिभिषा इव।
राजर्षि पितृ दैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः॥
राक्षसानां च याः कन्यास्तस्य कामवंश गताः।
युद्ध कामेन ताः सर्वा राबणेन हृताः स्त्रियः॥

वा. रा. ५।१।६७।६९

समदा मद नैनेव कोहिताः काञ्चिदागताः॥

वे सब स्त्रियाँ रावण पर आसक्त होकर चली आई थीं। इसके अतिरिक्त कुछ स्त्रियों को बल पूर्वक हरण करके भी लाया था। और उन्होंने रावण को श्राप दिया था। यथा—

इदं त्वसदृशं कर्मं परदाराभिमर्शनम्।
यस्मादेष परपयासु रमते राक्षसाधनः॥
तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव प्रप्स्यते दुर्मतिर्वधम्॥

यह दुराचारी रावण स्त्री के कारण ही मारा जायगा।

न चान्य कामापि न चान्य पूर्वाविना वरार्हां जनकात्मजां ताम्।
वा. रा. ५।६।७०

सीता के सिवा किसी अन्य स्त्री को रावण वल पूर्वक नहीं लाया था। इस युक्ति से रावण के शुद्धाचरण पर विश्वास नहीं किया जा सकता। क्योंकि सीता को वलपूर्वक छल कपट से हरण करके लाया था। हनुमान को स्वयं शंका हुई थी कि आपाप्तत: रावण सीता के साथ कैसा व्यवहार करता होगा। हनुमान ने यहाँ पर रावण को महात्मा कहकर सम्बोधन करके कहा है।

पुनश्च सोऽचिन्तयदार्तरूपो ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता।
अथायमस्यां कृमवान् महात्मा लङ्केश्वरः कष्टमनार्यं कर्म॥
वा. रा. ५।६।७३

रावण ने सीता के अतिरिक्त किसी और नारी का अपहरण किया था कि नहीं यह विषय विचारणीय है। कारण रावण के मृत्यु उपरान्त मन्दोदरी को छोड़कर किसी और पत्नी को विलाप करते नहीं पाया जाता। अत: यह सन्देह का विषय वन जाता है। रावण ने अपने पराक्रम ओर अतुल वल से समस्त त्रिलोकी को जीत लिया था। अभियान के समय उसने महादेव के किंकर नन्दी पर भी आक्रमण किया था। उसने नन्दी का बानर की तरह मुख देखकर उपहास किया था जिससे नन्दी ने क्रुद्ध होकर रावण को श्राप दियां था, हे रावण! तुमने मेरा उपहास किया है। इस कारण बानर ही तुम्हारे मृत्यु के कारण होंगे। यद्यपि मैं तुम्हारा बध करने में समर्थ हूं फिर भी मैं तुम्हारा बध नहीं करूंगा। नन्दी ने श्राप देते हुए कहा था—हे रावण!

उत्पत्स्यवधार्थं हि कुलस्य तव वानराः।
नखद्रंष्ट्रा युधाः क्रूरा मनः संपात तरं हसः॥
वा. रा. ७।१६।१८

रावण की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर आशुतोष महादेव ने उसको अत्यन्त दीप्तिमान अस्त्र 'चन्द्रहास' नाम खड्ग प्रदान किया था। महादेव ने कहा। हे रावण! तुम महान पराक्रमी वीर पुरुष

हो। पर्वत से दब जाने पर तुमने जो दारुण चीत्कार किया था उससे सारा त्रिलोकी काँप गया था। इस कारण आज से तुम्हारा नाम रावण प्रसिद्ध होगा। क्योंकि तुम सम्पूर्ण संसार को रूला दिये थे। कुशध्वज (बृहस्पति पुत्र) की कन्या वेदवती ने अपने शीलहरण के कारण रावण को श्राप दिया था कि दूसरे जन्म में मैं नारी रूप में जन्म लेकर तुम्हारे बध का कारण बनूंगी।

अर्थात् हे रावण ! तुमको देवता, मनुष्य, यक्ष आदि सभी जीव रावण कहेंगे। बा. रा. उ. १६।३८-३९

महाभारत के अनुरूप (बनपर्व) रावण शब्द का तात्पर्य रूलाने वाला वर्णन है यथा—

रावयामास कोकान्यत् तस्माद् रावणं उच्यते।
दशग्रीवः काल बलो देवानां भयमादधत्॥

म. भा. वनपर्व २७४।४०

महाबली रावण ने देवताओं को भी भयभीत कर रखा था उसने समस्त लोकों को आर्त कर रखा था। इसी कारण उसका नाम रावण पड़ा।

वेदवती अग्नि में प्रवेश कर गई। दूसरे जन्म में वे ही एक सुन्दर कन्या के रूप में राजर्षि जनक की यज्ञ भूमि से प्रकट हुईं। यज्ञ भूमि से उत्पन्न होने से उनका नाम सीता पड़ा। अनेक राजाओं को पराजित करके रावण ने अयोध्याधिपति अनरण्य को युद्ध के लिए आह्वान किया। अनरण्य पराजित हो गये और उन्होंने रावण को श्राप देते हुए कहा था—

उपत्स्यते कुलेह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान् हरिष्यति॥

बा. रा. ७-१९।३१

हे रावण ! मेरे ही इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न दशरथ के पुत्र राम तुम्हारा नाश करेंगे। अपने पराक्रम से रावण ने सभी देव-दानव को पराजित करके अपने बश में कर लिया था। यहाँ तक कि अपनी भगिनी सूर्पणखा के पति का भी बध कर डाला था। रावण दिग्विजय करते करते कैलाश पर्वत पर चला गया। वहाँ पर वह

अप्सरा रम्भा के साथ बलात्कार करने पर उद्यत हो गया। रम्भा ने रावण के कुत्सित आचरण का सब वृतान्त नलकूवर को सुनाया। नल कूबर ने रावण को शाप देते हुए कहा था :—

हे रावण ! तुमने बलपूर्वक रम्भा के साथ भोग किया है, अतः अब तुम किसी पराई स्त्री के साथ यदि बलपूर्वक भोग करोगे तो तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

यदाह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यदि योषितम्।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकली भविता तदा॥
वा. रा. ७।२६।५६

रावण विश्व विजयोन्मत्त होकर एक बार महिष्मतीपुर के हैहय राज सहस्त्रार्जुन पर भी आक्रमण कर दिया। सहस्रार्जुन ने रावण को पराप्त कर कई माह तक उसे अपने अधिकार में बन्दो बना रखा था। अंत में पुलस्त्य ने उसे मुक्त कराया। इसके अतिरिक्त रावण बलि, बालि, बाणासुर, पुलस्य, कपिल, मान्धाता, बिधाधर (वानर वंशी राज), हनुमान एवं अंतकाल में दाशरथी राम से पराजित हुआ था। सीता हरण के लिए अकम्पन और सूर्पणषा ने रावण को उत्तेजित किया था। रावण छल और कपट से सीता को हर ले गया। मार्ग में जाते समय दशरथ सखा जटायु ने रावण का घोर विरोध किया और रावण से सीता को मुक्त करने के प्रयास में जटायु मारा गया। सीता को लेकर रावण लंका पुरी में प्रवेश किया। रावण सीता को अपने रथ में बैठाकर आकाश मार्ग से जब लंकापुरी जा रहा था तो सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर वैठे हुए वानरों को देखकर अपने अनेक आभूषण बानरों के समीप गिरा दिया ताकि उनके अपहरण की सूचना राम को मिल सके। रावण सीता को ले जाकर लंका की अशोक वाटिका में बैठा दिया। सीता को अपने वश में करने हेतु अनेक राक्षसियों को आदेश दिया कि जिस प्रकार हो सीता को साम, दाम भय भेद और दण्ड के द्वारा सोता को उसके वश में लाने की चेष्टा करें। रावण की सहगामिनी पत्नी धन्यमालिनी ने रावण को सीता के प्रति कठोर दुराचरण व्यवहार करने से रोकने का बहुत

प्रयत्न किया परन्तु वह उसके परामर्श पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। रावण के इस निर्मम व्यवहार से देव गन्धर्व कन्यायें भी सहमत एवं प्रसन्न नहीं थीं। रावण सीता का वध करने पर उद्यत हो गया था। मन्दोदरी आदि रानियाँ किसी प्रकार समझा बुझाकर उसे महल में ले गईं। इसके पश्चात हनुमान ने लंकापुरी में प्रवेश करके रावण के अनेक आत्मीय जन का वध करके लंकापुरी को जिस प्रकार दग्ध कर डाला उस प्रकार हनुमान के असाधारण विक्रम व कृतित्व को देखकर रावण आश्चर्य चकित रह गया। रावण सोचने लगा—

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम्।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शवणेन महात्मना ॥
अब्रवीद्राक्षसान् सर्वान ह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः।
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्कादुष्प्रसहा पुरी ॥
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी।
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवला राक्षसा हताः ॥

एक साधारण बानर ने इस अजेय लङ्का में आकर इसकी कैसी दुर्दशा की। उसने जनकनन्दिनी सीता को देखा, महाबली राक्षसों को मार डाला। प्रहस्त, दुर्मुख, निकुम्भ इत्यादि प्रमुख मंत्रीगण रावण को राम से युद्ध करने के लिये उत्तेजित करने लगे। परन्तु विभीषण ने विपरीत परामर्श दिया। विभीषण ने कहा कि राम के साथ युद्ध करने से समस्त राक्षस बंश समूल नष्ट हो जायेगा, अतः राम से युद्ध करना उचित नहीं है। विभीषण ने रावण को सीता के वापस कर देने का सत्परामर्श दिया किन्तु रावण ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अन्त में विभोषण अपने चार अनुगत राक्षसों को साथ लेकर लङ्का को त्याग कर राम की शरण में भाग आया। इसके पश्चात रावण ने राम की सेना का भेद लेने के लिये दो गुप्तचर शुक और सारन को राम के शिविर में भेजा। विभीषण इन गुप्तचरों को पहचान गये। वे दोनों गुप्तचरों को पकड़ कर राम के पास लाये। गुप्तचरों ने रावण के सम्पूर्ण भेद को बता दिया। गुप्तचरों ने भी रावण को राम से संधि कर लेने का परामर्श दिया, फिर भी रावण ने उनके

परामर्श को अग्राह्य कर दिया। गुप्तचरों ने राम के प्रभुत्व एवं सेना की शक्ति का जब परिचय दिया तो रावण उनसे भी क्रुद्ध होकर विमुख हो गया।

रावण सीता को अपने वश में करने हेतु नाना प्रकार के छल कपट का प्रयोग करने लगा। उसने सीता से कहा—हे भद्रे ! जिस भर्त्ता की आशा में तुम जीवित हो, वह खर हन्ता राम युद्ध में मारे गये। राम का नकली माया कल्पित मृत शरीर सीता को दिखाकर उनको हताश करने लगा। उसी समय विभीषण की पत्नी सरमा आकर सीता को माया कल्पित राम के मृत्यु का सब भेद प्रकट कर दिया। राम और रावण की सेना का घोर युद्ध चल रहा था। युद्ध में राम और लक्ष्मण इन्द्रजीत मेघनाद के नाग बाण से घायल होकर मूर्छित हो गये। तदुपरान्त रावण ने राक्षसियों से सीता को समर भूमि में ले जाकर राम और लक्ष्मण को मूर्छित अवस्था में पड़े रहने का दृश्य दिखाने को कहा। सीता राम और लक्ष्मण को मृत समझ कर विलाप करने लगी। रावण को ऐसा विश्वास हो गया कि अब सीता उसके वश में हो जायेगी। परन्तु कुछ क्षण बाद ही रावण को सूचना मिली कि राम और लक्ष्मण जीवित हैं। एक के बाद एक महाबली राक्षसों का बध होता गया परन्तु रावण का क्रोध और अहंकार नहीं गया। रावण स्वयं युद्ध रत हो गया। उसने ब्रह्म बाण से लक्ष्मण को मूर्छित कर भूमि पर गिरा दिया। रावण ने लक्ष्मण को मूर्छित अवस्था में अपने रथ पर उठाकर ले जाना चाहा परन्तु वह लक्ष्मण को उठा नहीं सका। पुनः रावण राम से युद्ध करने लगा। राम ने रावण के मुकुट को काट कर गिरा दिया। रावण युद्ध करते करते थक गया तब राम ने उसे विश्राम करने को कहा।

स एवमुक्तो हतदर्प हर्षो निकृत्तचापः सहताश्वसूतः।
शरार्दितः कृत्तमहा किरीटो विवेश लङ्कासहसा च राजा ॥

इस प्रकार श्रीराम के द्वारा तिरस्कृत रावण तुरन्त लंका में चला गया इत्यादि। राम के बाण से रावण का गर्व चूर हो गया। रावण राक्षसगण से कहने लगा—हमारी कठोर तपस्या निरर्थक हुई। ब्रह्मा ने वर देते समय कहा था कि हमारी पराजय

और मृत्यु मनुष्य के हाथ से ही होगी सो सत्य सिद्ध होता दिखाई पड़ रहा है। अवधपति अनरण्य ने भी मुझे ऐसा ही अभिशाप दिया था। हमारे द्वारा बलात्कार किये जाने पर वेदवती ही सीता के रूप में उत्पन्न हुई है। हमें उमा, नन्दीश्वर, पुञ्जिकस्थला, ब्रह्मा और नलकूबेर का भी अभिशाप स्मरण होता है। ऋषियों की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। कुम्भकर्ण, प्रहस्त जैसे बीर राक्षस एक के वाद एक निहत होते गये। तव रावण को आभास हुआ कि राम विपुल शक्तिशाली हैं एवं उनका अस्त्र बल भी भयङ्कर है। उसको अनुभव हुआ कि राम नारायण हैं। राम और रावण में घनघोर युद्ध हो रहा था। रावण के वाण से लक्ष्मण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। राम ने अपने बाण के प्रहार से रावण को मूर्छित करके जमीन पर गिरा दिया। गिरने के बाद राम ने रावण पर प्रहार नहीं किया। पुनः सचेत होकर रावण युद्ध में रत हो गया। राम और रावण में विकराल युद्ध होने लगा। सारी पृथ्वी काँप उठी। राम रावण का सिर जब छेदन कर देते थे तो तुरन्त रावण का दूसरा सिर उत्पन्न हो जाता था। इस प्रकार सहस्रों सिर रावण का उद्‌गत हुआ और गिरता गया। तत्पश्चात सारथि मतालि के परामर्श पर राम ने ब्रह्मास्त्र से रावण के वक्षस्थल में मारा और रावण निहत होकर भूमि पर गिर पड़ा। बुद्धिमान्, तपस्वी, तेजस्वी, शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान, पराक्रमी, त्रिभुवन विजयी, ब्राह्मण कुलोत्पन्न ऋषि-पुत्र अनेक गुण होते हुए भी रावण अति अभिमानी और दर्पित था। 'अति दर्पे हतो लङ्का'—यह वचन सर्व विदित है। यदि रावण दुराचारी नहीं होता तो विश्व में वह चिरकाल पूजित होता।

रावण वध के सम्बन्ध में किसी का कहना है कि रावण वध अप्रत्यक्ष रूप से सीता, चामुण्डा व काली ने युद्ध के समय रणांगन में जाकर किया था। (रामकथा प्राक इतिहास)।

रावण के पराजय की तालिका :—

१—सहस्राजुंन से पराजित हुआ था।
२—बाण से पराजित हुआ था।

३—वालि से पराजित हुआ था।
४—राम से पराजित हुआ था।
५—मान्धाता से पराजित हुआ था।
६—पुलत्स्य मुनि से पराजित हुआ था।
७—कपिल मुनि से पराजित हुआ था।
८—विद्याधर (हनुमान के पिता) से पराजित हुआ था।
९—हनुमान से पराजित हुआ था।

(विष्णु व भविष्य पुराण)

१०—वावन से पराजित हुआ था।

११—विष्णु से पराजित हुआ था। उसके पराजय का मुख्य कारण उसका अहं था।

रावण का वस्तुतः गर्व दर्प सीता स्वयंवर के धनुष यज्ञ के ही समय खर्व हो चुका था जब कि वह हरधनु को टस से मस न कर सका जैसा कि गो० तुलसीदास जी ने वर्णन किया है। यथा—

दोहा—बोले बंदी बचन वर, सुनहु सकल महिपाल।
पन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विसाल॥

नृप भुजबल सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महा भट भारे। देखि सरासन गवहि सिधारे॥
सोइ पुरारि को दण्ड कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहि बिचार बरइ हठि तेही॥
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन्ह सिर नाई॥
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
जिन्हके कछु विचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

दोहा—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लगाहिं।
मनहुं पाइ भट बाहु बल, अधिकु अधिकु गरूआइ॥

नृप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
सब नृप भये जोगु उपहासी। जैसे बिनु बिराग सन्यासी॥
कीरति विजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥
श्री हत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥

नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले: वचन रोष जनु सांने।।
दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना।।
देव, दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा।।
कहहूं काहि यहि लाभु न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा।।
रहउँ चढ़ा अब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छोड़ाई।।
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर विहीन मही मैं जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि वैदेहि विवाहू।।
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।।

रावण अपने मुक्ति के लिए जानकर राम से शत्रुता की थी।

सुर रंजन भंजन महि भारा। औ भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाय वयरि हठि करहूं। प्रभु सन प्रान तजे सब तरिहूं।।
होइ भजन नहिं तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा।।
तासन जाइ वैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तेज भव तजऊँ।।

सीता हरण—

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के वेषा।।

दोहा—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ।।

रावण जटायु युद्ध—

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा।।
नाथ दसानन यह गति कीन्हीं। तेहि खल जनक सुता हरि लीन्हीं।।

मनु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्रसस्यानामिव पक्तये।।
वा. रा. अर. ४९।२७

जटायु राम से कहता है—

दुष्ट मनुष्यों को उनकी दुष्टता का फल तत्काल नहीं मिलता इसके लिए कुछ समय की अपेक्षा होती है। जैसे खेत में बोया हुआ बीज समय पाकर हो पकता है।

दोहा—भुज बल वस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।।

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि वेद प्रतिकूला।।
ठाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा।।
मानहिं मातु पिता नहिं देबा। साधुन संग करवावहिं सेवा।।
अतिसय देखि धर्म कैं ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता।।
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू ते कछु काज न होई।।
बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कह पाइअ प्रभु करिअ बिचारा।।

अंगद रावण से कहता है —

हे रावण! हम तुम्हारे स्वर्ण की लंका की क्षति का तो मरम्मत कर सकते हैं, लेकिन हमको यह बताओ कि मैं तुम्हारे भगिनी सूर्पणखा के कटे नाक को कैसे जोड़ सकता हूं।

मन्दोदरी सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पायोधि बँधायो।।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी।।
नाथ बयरु कीजे ताहीं सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।।
मन्दोदरी मन महुँ अस भयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ।।

अंगद का रावण के दरबार में जाना—

बहि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई।।
कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर।।

अंगद ने कहा—

जो खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।।

रावण अंगद से कहता है—

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी।।

अंगद रावण को फटकारता है —

जौ मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहि रामु सीता मैं हारी।।
गहन चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा।।

लंका में युद्ध आरम्भ-लक्ष्मण मूर्छा—

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा।।
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना।।

बीर घातिनी छाड़िसि सागी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे॥

रावण चरित्र—

ब्रह्म सृष्टि जहँ भगि तनु धारी। दसमुख बसवती नर नारी॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
अतिसय देखि धर्म क ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

राक्षसेन्द्र सुता साधो पारुष्यं त्यज गौरवात्।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम्॥ ६।८७।१९

गुणोऽयं प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम्।
न रमे दारुणे नाहं न चा धर्मेण वै रमे॥ ६।८७।२०

भ्राता विषम शोलेन कथं भ्रातानिरस्यते।
धर्मात् प्रच्युत शीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्॥ ६।८७।२१

त्याज्यंमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं यथा।
परस्वाना च हरणं परदाराभिमर्शनम्॥ ६।८७।२३

अब रावन सोच करत मन माहीं।
सन मोरि मंदर कौं उलट्यो, गयो त्रिजटा के पाहीं॥
दस सिर बदन सिधारियौ, वह राछसि सुबिचारि।
कछु छल-बल करि देखिहौं जौ मानै सीता नारि॥
सिया बचन त्रिजटो सुनै, अस नहिं भाष बहोरि।
'सूर' सिंध ही सिर दियो जंबुक-कोटि करोरि॥

त्रिजटा सीता पै चलि आईं।
मन मैं सोच न करि तू माता, यहि कै समुझाई॥
नलकूबर कौ साप रावनहि, तो पर बल न बसाई।
'सूरदास' मनु जरो सजोवनि, श्री रघुनाथ पठाई॥

सुनु सुत भयउ काल बस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषण। भयउ तात निशिचर कुल भूषन॥

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर।।
गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो।
रे कुभाग्य सठ मन्द कुबुद्धे। तैं सुरनर मुनि नाग विरुद्धे।।
सादर सिव कह सीस चढ़ाये। एक एक के कोटिन्ह पाये।।
तेहि कारन खल अब लगि बाच्यो। अब तव काल सीस परनाच्यो।।
राम विमुख सठ चहसि सम्पदा। असि कहि हनेसि माँझ उरगदा।।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन कहसि न माना।।
मन्दोदरी वचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबनि सुख माना।।
एक बहोरी सहस भुज देखा। धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेषा।।
कौतुक लागि भवन ले आवा। सो पुलस्त्य मुनि जाइ छोड़ावा।।

दोहा—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ, छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली विभीषण सन्मुख, मनहु काल कर दंड।।

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारित भंजनपन मोरा।।
तुरत विभीषन पाछे मेला। सन्मुख राम सह्यो सोई सेला।।

सूर राम चरितावली—

रावन अपनौ कृत पायौ।
महाराज रघुपति सौ रुठौ, कीयो जौ मन भायौ।।
ब त लै जाइ जगत की जननी, हठ करि काल बुलायौ।
राजनीति दसरथ-सुत कीनी, अंगद दूत पठायौ।।
करी अनीति, हात सो लाग्यौ, विधना जोग बनायौ।
भगत-प्रतग्या राखीं यातें चाहत जुग जगु गायौ।।
क्रोधे राम तबहिं आरिस करि, कर सारंग चढ़ायौ।
कुल समेत अब 'सूरदास' प्रभु रिपु कौ नास करायौ।।

रावण-मेघनाद द्वारा रचित षडयंत्र का भेद विभीषण ने राम को बताया।

इहाँ विभीषन मंत्र विचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा।।
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ वेगि पुनि जीति न जाइहिं।।
इहाँ विभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई।।
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरइ अभागा।।

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहि बिधंस आव दसकंधर ॥

रावण सीता को हर ले जाकर अशोक बन लंका में रखा था। अंगद ने रावण को समझाया—

सादर जनक सुता करि आगे। एही बिधि चलहू भय त्यागे ॥

दोहा--प्रनतपाल रघुवंश मनि, त्राहि-त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करै गो तोहि ॥

इसके अतिरिक्त लक्ष्मण जो ने लिखित पत्र तक भेजा था।

रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती ॥

दोहा—कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देसु उदार।
सीता देइ मिलिहु नत, आवा काल तुम्हार ॥

श्रीराम ने भी विश्वास दिलाया था—

भो लंकेश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते।

रावण त्रिजटा संवाद—

अरे सुनि सीता कत लायौ।
मोकौं यह समुझि आई है, तेरौ मन अघ छायौ ॥
वार बार त्रिजटी कहै, सुनि रावन मतिमंद।
जनक-सुता-तन गारिहै तोरन कौं दसकंध ॥
गुपत मतौ रावन कहै, तूँ त्रिजटो सुनि आइ।
जौं पै सीता सत टरै, 'सूर' तीन भूवन जरि जाइ ॥
'सूर सिंध हो सिर दियो जंबुक-कोटि करोरि।

सुनु सुत भयउ काल बस रावन। सोकि मान अब परम सिख़ावन॥
सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी ॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥
भ्राता पिता पुत्र उर गारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होई विकलमनसकइ न रोकी। जिमि रबिमनि द्रवरविहि विलोकी॥
सुनु सखग्य चराचर नायक प्रनत पाल सुर मुनि सुख दायक ॥
नाभि कुण्ड' पियूस बस याके। नाथ जियत रावन बल ताकें ॥
सुनत विभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला ॥
तुम्ह पित सरिस भलेहि मोहि मारा।राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥

शबरी को राम के प्रति अटल भक्ति भाव—

सम-सौंह चली रिसकी न कछू, मुनि आपुहिं आपु थके करि जंपा।
जिमि जंत्रिक-तार-संजोग मिलं,न ढहै बरु होत ब्रिखै गिरि संपा।।
सबरी दुर बाद, सही जितनो, तितनोहि लही हरि की अनुकंपा।
घट कौं मुँह लौं मदसा भरि सो, उपरी तृन-छूति गै धोवन पंपा।।

जिसे निज देश का कुछ भी नहीं अभिमान है।
और अपने धर्म का जिसको नहीं कुछ ध्यान है।
या स्वकुल का मान रखना भी जिसे आता नहीं।
सुन विभीषण ! नरक में भो ठौर वह पाता नहीं।।

मिल गई लंका तुझे तो क्या हुआ उससे बता ?
कौन की थी वह अरे इसका न क्या तुझको पता ?
राम ने क्या ग्राम अपना एक भी तुमको दिया ?
मूढ़ ! तुझको फोड़ करके काम अपना कर लिया।।

जिसे हरण करके महा अन्याय रावण ने किया।
साथ उसका इसलिए मैंने नहीं रण में दिया।
मन्द ! ऐसा बोल मत निज को बचाने के लिए।
सैकड़ों दुष्कर्म पहले क्या न थे उसने किए।।

देखकर दशमुख मरण यद्यपि हुआ मन में दुखी।
किन्तु रोकर तू प्रकण में बन गया भारी दुखी।
स्वार्थ साधन के लिए जिसका कपट आधार है।
हे विभीषण ! उस अधम को सौ दफे धिक्कार है।।

तुम थे छल के मूल, कपट के रूप रहो तुम,
अपकृत के अवतार खलों के भूप रहो तुम।
ज्ञानी होकर असुर ! ज्ञान का बध करते थे,
बात बात में सदा सभी से लड़ा करते थे।।

सीमा से भी अधिक दर्द बढ़ गया तुम्हारा,
चढ़ी तुम्हारे चित्त सती रघुबर की दारा।
उसको राक्षस राज ! उठा लाए तुम छल से,
चौपट हो हो गये सकुल तुम उसके फल से।।

तनिक नहीं बिश्वास तुम्हारा जग करता था,
देख तुम्हारे क्रूर कर्म को सब डरता था।
तो भी राक्षस राज ! नहीं तुम रहे लजाते,
सच्चेपन की टोल व्यर्थ तुम रहे बजाते।।

पर नारी चोरी करने का कर डाला कार्य शीघ्रता से।
परिणाम उसी का यह पाया चल दिया आज मैं दुनिया से।

तुम समझे हो हम जीते हैं, पर नहीं, जीत मेरी ही है।
अपने जीते जाने न दिया लंका में राम तुम्हारे को।
जा रहा तुम्हारे आगे ही, देखो मैं धाम तुम्हारे को।।
नारद से सोहत सपूत चतुरानन के कोउ इनको
तिन तूल गनिहैं नहीं।

त्योहीं सम्भु सुनु दोउहैं ही ब्याह जोग बाके,
अजुगुत बात ऐसी जग मनिहै नहीं।
होइहैं सुरसुर समूह हम लोगनि सो याते,
समताई तिन संग ठनिहै नहीं।
गौरव सुकेश को बनाए राखिबे के काज,
सौति सिंधुजा की कंकसी बनिहैं नहीं।।

रावण कहता है—यदि मैं राम के हाथों मारा जाऊँगा तो स्वर्ग में जाऊँगा।

यद्यपि रामेर हाते हयत मरन।
एकान्ते वैकुण्ठे याव नाहि हय खन्तन।
मरिब रामेर हाते भाग्य यदि आछे।
यमेर ना हबे साध्य धनाइते काछे।
विष्नू दूत लये जाबे तूलिया विमाने।
समान प्रतापे जात्र जीवने मरने।

सिय कौन ? कन्या जनक की तुम वाण गे जाके मखै।
कस बाण ? सोइ बलि सुवन जेइ तोहिं बाँधि नचायऊ।
को कहत यहि बिधि पद्मिनी जेइ जलधि माँझ चलायउ।।

नोट—हरि=बंदर, सोदर=सहोदर, गोपद=गोखुर से बना गड्ढा, वाण=बाणासुर, मखै=यज्ञ, पद्मिनी=हाथी।

जटायु रावण संवाद—

हौं वरुणासन राम को सेवक रे छलिकै कोउ लेत तिया को।
कै तजिदेह कि छाँड़ु सनेह कि तू रन माँडु कि छाँड़ु सिया को ।।

रावण हनुमान जी से पूछता है—

कपि कौन तू? सुत अक्षय घातक, कौन बल? रघुनाथ के।
रघुनाथ को? खर दूषणान्तक, अनुज लक्ष्मण साथ के।
लखन को? तव भगिनि जानत परसुधर मद जेहि हरयो।
परसुधर को? सहसभुजरिपु दीप जेइ तव सिर हन्यो।
पठवा जो कोई? सुग्रीव को, हरि बालि सोदर जानिए।
कपि बालि को? तुम रह्यो जाकी काँख में सुधि आनिए।
किमि सिंधु नाँघो? गोपद ज्यों, केहि होत? सिय चोरैलकें।

सीता हरणः के पूर्व रावण को इतना बुरा नहीं समझा जाता। साधारणतः रावण के विरुद्ध नाना प्रकार के दोपारोपण किए जाते हैं। जैसे वह अनाथ कहकर सम्बोधित किया जाता है। दुर्बुद्ध, दम्भी, दुरागामी और कामी कह कर उसे सम्बोधित किया जाता है। उसके दस शिर और बीस भुजाओं का कहा जाता हैं। इसी कारण उसके दसकंधर, दसशीस दस भुजा वाला के नाम से भी कहा जाता है। ये सब बातें और तर्क केवल मात्र उसके कुशाग्र बुद्धि और अप्रतिम बल के द्योतक मात्र हैं। वास्तव में न उसके दसशीश थे और न बीस भुजाएँ। ये सब केवल उसके गुणों बाहुबल के गुणगान में सम्बोधित अतिशयोक्ति भाव से किए जाते थे। साधारण मनुष्य की भाँति उसके सब अवयव थे।

हनुमान जी ने लंका प्रवेश के समय पहली बार देखा तो वे उसके रूप, रंग, यौवन और शरीर शौष्ठव देखकर अचम्भित हो गए थे। उनके मुख से अनायास निकल पड़ा—अहा, राक्षसेन्द्र का रूप, शक्ति, धैर्य और कान्ति अद्भुत विलक्षण थी। 'अहो रूपम, अहो धैर्यम, अहो शक्ति, अहो घृति' यथा। इन गुणों से वह परिपूर्ण जान पड़ता था। स्वयं विभीषण ने भी उसके गुणों का वर्णन करते हुए कहा था कि वह परम अग्निहोत्री, महातपस्वी, वेदान्त ज्ञाता और पराक्रमी शूरवीर था। रामायण में उसे अतिवेदज्ञ,

निष्णात तथा आचार संहिता का बड़ा अनुभवी कहा गया है। वह विश्व के अनेक देशों व भूभाग पर अपना निर्मूल अधिपत्य स्थापित कर रखा था। जैसे अंगद्वीप (सुमात्रा) यवद्वीप (जावा) कुशद्वीप (अफ्रीका), आन्ध्रालय (आस्ट्रेलिया), मलयद्वो (मलाया) तथा भारत के दक्षिण भूभाग पर उसका प्रभुत्व स्थापित था। वह बलपूर्वक किसी नारी के साथ दुर्व्यवहार आचरण नहीं किया। वह प्रकाण्ड विद्वान था रावण नास्तिक नहीं था। जैसा कवि सुधिजन का विचार है। वह परम शिव भक्त था। वह धर्मनिष्ठ नीतिज्ञ था। उसने वेदों का अध्ययन कर उस पर व्याख्या भी किया था जो 'कृष्ण यजुर्वेद' के नाम से विख्यात है। इसके महान पराक्रम के अतिरिक्त उसके पराभव में कम नहीं थे। जैसे वैजयन्तीपुर में देवराज शंबर से वह पराजित हुआ था। कार्तवीर्य अर्जुन से पराजय। वालि से भी पराजित हुआ था इत्यादि।

रावण के प्रति मंदोदरी का उपदेश—

राम की बाम जो आनी चोराइ, सो लंक मैं मीचु को बेलि वई जू।
क्यों रन जीतहुगे तिन सौं, जिन, की धनु रेख न नाँघि गई जू।।
बीस बिसे बलवंत हुते जो, हुती दृग केसव रूप रई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय, सीय स्वयंबर क्यौं न लई जू।।
वालि बलो न वच्यो पर खोरहि, क्यौं बचिहौ तुम आपनि खोरहि।
जा लगि छीर समुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाधिहैं वारिधि थोरहिं।।
तो श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न, देखि बिना रथ हाथिन घोरहिं।
तोर्यो सरासन संकर को जेहि, सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि।।

मंदोदरी का रावण के प्रति—

आज रघुबीर कौ दूत आयौ।
जारि लंका सकल, मारि राच्छस बहुत,
सीय-सुधि लै कुसल फिर सिधायौ।।
कहत मंदोदरी, सुनहु दसकंध पिव!
बड़ौ अपमान करि गयौ तेरौ।
अजहुं मन समझि कै, मूढ़!
मिलि राम सौं, 'सूर' मतिमंद कह्यौ मान मेरौ।।

मंत्रिनि नीकौ मंत्र विचार्‍यो ।
राजन कहौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मार्‍यो ।।
इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधू पाइ परौं ।
यह अनरीति सुनी नहिं स्त्रवननि, अब नइ कहा करौ ।।
हरी बिधाता बुद्धि सबनि की, अति आतुर ह्वै धाए ।
सन अरु सूत, चीर-पाटंबर, लै लंगूर बँधाए ।।
तेल तूल पावक-पुट धरि कै, देखन चहैं जरौ ।
कपि मन कह्यौ भली मति दीनी, रघुपति-काज करौं ।।
बंधन तोरि, मोरि मुख असुरनि, ज्वाला प्रगट करी ।
रघुपति-चरन-प्रताप 'सूर' तब लंका सकल जरी ।।

रावण चरित्र—

दस सिर ताहि बीस भुजदंडा । रावन नाम बीर बरि बंडा ।।
मय तनुजा मंदोदरि नामा । परम सुन्दरी नारि ललामा ।।
सोइ मय दीन्ह रावनहि आनी । होइहि जातुधानपति आनी ।।

सीता हरण-रावण को आशंका—

सुर नर असुर नाग खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ।।
खर-दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता ।।
सुर रंजन भंजन महि मारा । जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा ।।
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।।
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।।
जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ।।
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ।।

रावण-मारीच—

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।।

दोहा— करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयहु तात ।।

दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ।।
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौ नृप नारी ।।
तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नर रूप चराचर ईसा ।।

तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारे मरिअ जिआएँ जीजै।।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा।।

मारीच कपट मृग भयऊ—

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ।।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए राम सरासन साजी।।
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा।।
सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के बेषा।।

दोहा—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ।।

एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयउ।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। यातु धानु सेना सब मारी।।
जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नयसानी।।
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी।।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिर पावन मोही।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।
सुनि कपि बचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।।
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए।।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिज दूता।।
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर।।
उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका।।
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई।।
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर के लेखे माहीं।।

विभीषण कहता है—

दोहा—तात चरन गहि मागउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुं, अहित न होइ तुम्हार।।

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।

दोहा—रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि।।

सुत बूध सुना दसानन जबहीं। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं।।

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा।।
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। असि कहि सन्मुख फौज रेंगाई।।
रावनु रथी विरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।

दोहा—निज दल बिचलत, देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप।।

कोटिन्ह आयधु रावन टारे।
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा।।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना।।
आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भजि नहिं जाहीं।।
आज करउँ खलु काल हवाले। परेउ कठिन रावन के पाले।।
सुनि दुर्बचन काल बस जाना। बिहँसि बचन कह कृपा निधाना।।

दोहा—राम बचन सुनि बिहँसा, मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान।।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छांड़ सर।।
निफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे।।

दोहा—तानेव चाप श्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले, लहलहात जनु ब्याल।।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना।।

दोहा—जिमिजिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमितिमि होहिं अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार।।

गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी।।

दोहा—पुनि दस कंठ क्रुद्ध होइ, छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषण सन्मुख, मनहुं काल कर दंड।।

दोहा—उमा बिभीषनु रावनहि, सन्मुख चितव किकाउ।
सो अब भिरत काल ज्यों, श्री रघुबीर प्रभाउ।।

पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरनि मारि घायल कपि कीन्हे।।
हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर।।
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकर भट नाना।।

रावण मुक्ति—

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।।
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा ।।
नाभि कुण्ड पियूष बस याके। नाथ जिअत रावनु बल ताके ।।
सायक एक नाभि सर सोषा। ऊपर लगे भुज सिर करि रोषा ।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा ।।
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी ।।
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ।।
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई ।।
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आज परेहु अनाथ की नाईं ।।
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोअन हारा ।।
काल बिवस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना ।।

दोहा—भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ।।



विभीषण शरणागति

हनुमान बिभीषण भेंट—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥

दोहा—रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नवतुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ ॥

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुं तरक करैं कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा ॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा सुनाई ॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महं कोई मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह राम दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़ भागी ॥

दोहा—तब हनुमंत कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलकि मन, मगन सुमिरि गुनगाम ॥

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी॥
तामसु तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तह रही ॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता ॥
जुगुति बिभीषण सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत बिदा कराई ॥
अवसर आनि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥
जौं कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥

दोहा—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥

दोहा—तात चरन गहि मागउँ, राखहुं मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार॥

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
ममपुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।सठ मिलुजाइ तिन्हहिं कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥
तुम्ह पितुसरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजे हित नाथ तुम्हारा

दोहा—रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयू हीन भए सब तबहीं॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
एहि विधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कह सुग्रीव सनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

दोहा—सरनागत कहुं जे तजहिं,निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥

भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुं न कछु भय हानि कपीसा॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर वंस जनम सुरत्राता॥

विभीषण कहता है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा
जौ नर होई चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
अस सज्जन मन उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥
रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुं रिपु ताके॥

दोहा—सुनि प्रभु बचन बिभीषन, हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपा सुख पुंज॥

दोहा— उमा विभीषनु रावनहि, सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भीख काउ ज्यों, श्री रघुबीर प्रभाउ ॥

दोहा— काटे सिर भुज बार, बहु मख न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध, मुनि ब्याकुल देखी कलेस ॥

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तव देखा ॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक ॥
नाभि कुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावन बल ताकें ॥
सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे सिर करि करि रोषा ॥
गर्जेउ मरत घोर रवभारी। कहां रामु रन हतौं पचारी ॥
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
बरषहिं सुमन देवं मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥
भुज बल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥
राम बिमुख असहाय तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनि हारा ॥

पायो विभीषण राज—

आइ बिभीषन पुनि सिर नायो। कृपा सिंधु तब अनुज बोलायो ॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्हो जाइ तिलक की रचना ॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ॥
जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए ॥

मन्दोदरी अपने पति से कहती है—

मो मति अजहुं जानकी दीजै।
लंकापति-तिय कहति पिया सौं, यामैं कछू न छीजै।
पाहन तारे, सागर बाँध्यो, तापर चरन न भीजै ॥
बनचर एक लंक तिहिं जारी, ताकी सरि क्यौं कीजै ?
चरन टेकि, दोउ हाथ जोरि कैं, बिनती क्यौं नहिं कीजै ?
वे त्रिभुवन-पति, करहिं कृपा अति, कुटुंब-सहित सुख कीजै ॥
आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पसीजै।
'सूरदास' प्रभु लंक जारि कै, राज विभीषण दीजै ॥

रे पिय! लंका बनचर आयौ।
करि परपंच हरी तैं सीता, कंचन-कोट ढहायौ।

तब तैं मूढ़ मरम नहिं जान्यौ, जब मैं कहि समुझायौ।
बेगि न मिलौ जानकी लै कै, रामचन्द्र चढ़ि आयौ॥
ऊँची धुजा देखि रथ ऊपर, लछिमन धनुष चढ़ायौ।
गहि पद 'सूरदास' कह भामिनि, राज बिभीषन पायौ॥

काहे कौं परतिय हरि आनी।
यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनन्दन रानी॥
रावन मुग्ध, करम के हीने, जनक-सुता तै तिय करि मानी।
जिनके क्रोध पुहुमि-नभ पलटैं, सूखै सकल सिंधु कर पानी॥
मूरख सुख-निद्रा नहिं आवै, लैहै लंक बीस भुज मानी।
'सूर' न मिटै भाल की रेखा, अल्प-मृत्यु तब आइ तुलानी॥



मंदोदरी

मन्दोदरी सरल हृदया थी, भावुक तत्व दर्शिनो दात।
उसने समझाया सीता दे, झगड़ा तोड़ो प्रियतम कात ।।
पर रावण था धुन का पक्का, सुखद सीख पर दिये न कान।
चिंता अपनी दूर हटाने, दिया सुरा पर, स्वर पर ध्यान ।।

रामायण का प्रतिनायक रावण था। रावण के कारण राम कथा की अवतारणा हुई। त्रिभुवन विजयी रावण की मन्दोदरी प्रधान महिषो थी। मंदोदरी के पितृ वंश के विषय में बाल्मीकि मुनि ने रामायण में विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं किया है। नारी के प्राय: सभी सद्‌गुण मंदोदरी में थे। कम सुन्दर भी नहीं थी फिर भी रावण को अपने वश में न रख सकी। साध्वी मंदोदरी नें स्वामी के अन्याय युक्त कार्य का कभो समर्थन नहीं किया। विपथगामी पति को सन्मार्ग पर ले चलने की बहुत चेष्टा की थी। किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। मन्दोदरी दूरदर्शी नारी थी। अपने स्वामी द्वारा सीता हरण के कारण उसे राक्षसवंश के समूल नाश का आभास भो मिल गया था। अपने पति रावण को उसनें बहुत समझाया पर रावण ने एक भी न सुनी। वह परम पति भक्त थी। मन्दोदरी के चरित्र का कुछ परिचय रावण के मरणोपरान्त मिलता है। उत्तर काण्ड में मन्दोदरो के जन्म का थोड़ा वृत्तान्त मिलता है। वह दानवराज मय की कन्या थो। हेमा अप्सरा उनकी माता थी। मायावी और दुन्दुभी उसके दो भाई थे। यही मन्दोदरी इन्द्रजीत की माता थी। अपने स्वामी रावण के निहत होने पर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गई। जिस रावण ने त्रिभुवन के देव दानव सबको परास्त कर अपने अधिकार में कर लिया था। वह एक सामान्य मनुष्य से कैसे मारे जा सकते हैं। जान पड़ता है राम सामान्य पुरुष नहीं है। वह निश्चय देवता हैं—

व्यक्तमेषमहायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान ।।

तमसः परमो धाता शङ्ख चक्र गदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्य श्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।।
वा. रा. ६।११४।१४-१५

राम महायोगी, परमात्मा, सनातन, अनादि, ईश्वर, महा-वीर्यवान, सर्वशक्तिमान प्रभु हैं। जन्म मरण से रहित शंख, चक्र पद्म, गदाधारी हैं। इनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स शोभायमान हैं। ये अजेय हैं। इसी कारण मन्दोदरी ने बारम्बार रावण को राम से संधि करने का परामर्श देती रहीं। परन्तु रावण मन्दोदरी के सत्यपरामर्श पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। मन्दोदरो राम के प्रभुत्व से भलीभाँति अवगत थीं। वह यह निश्चय पूर्वक जानती थीं कि रावण युद्ध में पराभूत होगा। यथार्थतः मन्दोदरी दूरदर्शिता होते हुए भी रावण को अपने वश में न कर सकीं। क्योंकि जब रावण सीता को प्रलोभन और भय दिखाकर अपने वश में करने के हेतु सीता के पास अशोक बाटिका में जा रहा था उस समय मन्दोदरी ने रावण का विरोध नहीं किया। अंत में रावण के निहत होने पर मन्दोदरो को शेष जीवन भर पति वियोग का संताप भोगना पड़ा।

कृशोदरी ! तूँ वर सुन्दरी रही, नातुल्य तेरे सुन्दरो रहीं।
सम्मान तेरे किसको कहा मिली, पतिव्रता अन्य त्रिलोक में कहीं।
तुझे मिला था पति भी महाबली, सुरेश की भी जिससे नहीं चली।
न यज्ञ हो भी वह दर्प शैल था, न भीरुता थी लगती उसे भली।
मिला तुझे पूत बड़ा सपूत था, पराक्रमी था भय से अछूत था।
सुरेश भी था जिससे दबा हुआ, घमंड कैसा उसमें अकूत था।
सती सची से कम थी न तू कभी, बिलास समान तुझे मिले सभी।
कलावती, बुद्धिमती अनन्य थी, गया न तेरा यश विश्व से अभी।
उदार तेरी अति गूढ़ नीति थी, नहीं किसी से तुझको प्रीति थी।
कोई कभी न तुझसे दुखी हुआ, स्वधर्म में प्रौढ़ तुझे प्रतीति थी।
महा अधर्मी दशशीस था सही, तथा दासी उसकी बनी रही।
स्वभाव तेरा अति मंजु शुद्ध था, पति ब्रता क्या पति से डिगी कहीं।
न जग में शत्रु तेरा सुना गया, भरी हुई थी तुझमें बड़ी दया।
नहीं किसी ने तुझको बुरा कहा, सदा तुझको सौख्य मिला नया-नया।

तुझे न भाया रघुनाथ युद्ध था, कृतान्त ही रावण से विरुद्ध था।
सुनी न तेरी उसने इसीलिए, सुने भला क्यों वह तीव्र क्रुद्ध था।
समक्ष तेरे पति पुत्र जो मरें, विमूढ़ निन्दा उसकी किया करें।
हुआ करे वंश वियोग युद्ध में, नृपांगना क्यों इससे कभी डरे।
सभी जपेंगे नित नाम आपके, सभी हुए हैं शुभ काम आपके।
युगान्त होने पर भी, त्रिलोक में, बने रहेंगे यश धाम आपके।

निसाचर राज रण में मर गया जब,
विभीषण से मिली मन्दोदरी तब।
सतीपन फिर तुझे कैसे मिला था,
कमल विष बल्लरी में क्यों खिला था ?

सती से सीख थी क्या प्राप्त तुझको,
मिला उपदेश कैसे आप्त तुझको।
सती क्यों राक्षसी होकर हुई तू,
त्रिपथगा कर्मनाशा से हुई तू।

राम शिविर में गई, लिए पति का शिर तूने,
शीश हँसा कर दिया सती परिचय फिर तूने।
विस्मित रघुपति हुए देख कर तेरा पतिव्रत,
चढ़ी चिता पति संग मिला तुझको फल अभिमत।

सतियों में तव नाम सुनयने ! होगा तब तक,
प्रभा सूर्य से अलग नहीं होवेगी जब तक।
वह लंका है धन्य ! जहाँ पर तू रहती थी,
मनोम्लेच्छ के ग्राम दिव्य गंगा बहती थी।

नारद से सोहत सपूत चतुरानन के,
कोउ इनको तौ तिन तुम गनिहैं नहीं।
त्योहीं सम्भु सुभ्रु दोऊ हैं व्याह योग,
वाके अजगुत बात ऐसी जगमनिहैं नहीं।
होइहैं सुरासुर समूह हम लोगन सों,
याते समताई तिन संग ठनिहैं नहीं।
गौरव सुकेश को वनाए राखिवे के काज,
सौति सिन्धुजा की कैकसी बनिहैं नहीं।

नलधी विसाल विकराल ज्वाल जाल मानौं,
लंग लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम बीथिका भरे हैं भूर धूमकेतु,
बीर रस बीर तखार सी उघारी है।

तुलसी सुरेस चाप मैंने दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सारि भारी है।
देखे जातु धान जातु धान अकुलानी कहैं,
कानन उजार्‍यो अब नगर प्रजारी है।

देखि ज्वाल जाल हाहाकार दसकन्ध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए वीर बलवान हैं।
लिए रत्न सैल पास परिधि प्रचण्ड दंड,
भाजन सनीर धीर धरे धनुवान हैं।

तुलसी समिध सौंज लंक जज्ञ कुण्ड लाखि,
जातुधान पुंगीफल, जब तिल धान है।
स्रुवा सोल शूल बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हनै हनुमान है।



कुम्भकर्ण

न था कपटी न मायावी न लम्पट,
तुझे भाता नहीं था व्यर्थ झंझट।
प्रयोजन था तुझे भोजन शयन से,
न बाहर तू निकलता था अयन से।

तुझे सुख नींद से सोना लिखा था,
नहीं निज दुःख का रोना लिखा था।
असुर हो भी रहा तू सत्यवादी,
सुधी भी हो रहा पर तू प्रमादी।

किसी को भी नहीं तूने सताया,
मिला जो बस उसे ही खूब खाया।
नहीं था राज से कुछ काज तुमको,
निजालस की नहीं थी लाज तुमको।

मतलबी तू विभीषण-सा नहीं था,
जहाँ रावण लड़ा तू भी वहीं था।
वदन रण से कभी तूने न मोड़ा,
न निज दल का कभी भी साथ छोड़ा।

—:●:—

मेघनाद (इन्द्रजीत)

रावण व मन्दोदरी के द्वितीय पुत्र का नाम मेघनाद था। उत्पन्न होते ही उसने मेघ की तरह गर्जन आरम्भ कर दिया इस कारण उसका नाम मेघनाद पड़ा। शास्त्र और शस्त्र विद्या में वह निपुण था। उसकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उसे कई एक वरदान दिये थे। माया विद्या में भी वह दक्ष था। माया विद्या के प्रभाव और बल पर ही उसने देवराज इन्द्र को बन्दी बना लिया था। प्रजापति के अनुरोध पर इन्द्र को मुक्त किया। इन्द्रजीत की भी कई पत्नियाँ थी। उसने नाग बाणों से राम और लक्ष्मण को भी युद्ध में मूर्छित कर दिया था। जब जब रावण हताश हो जाता था तो इन्द्रजीत अपने पिता रावण को सान्त्वना देता था। इन्द्रजीत के पराक्रम को देखकर राम को भी चिन्ता हो गई थी। इन्द्रजीत ने मायामयी सीता की मूर्ति बनाकर अपने रथ में बैठाकर यह प्रचार करने लगा कि सीता मार डाली गई। वह मूर्ति हा राम! हा राम! कह कर चिल्लाई जिसकी चित्कार सुनकर राम को भी विश्वास हो गया कि सीता की हत्या कर दी गई और नितान्त हताश हो गए। राम और लक्ष्मण के वध करने हेतु जब इन्द्रजीत निकुम्भिला यज्ञ भूमि में यज्ञ करने जा रहा था तो विभीषण ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! इन्द्रजीत को अभी चलकर ललकारो जिससे वह निकुम्भिला में जाकर यज्ञ सम्पन्न न कर सके। मार्ग में हो लक्ष्मण, हनुमान और विभीषण इन्द्रजीत से युद्ध करने लगे और लक्ष्मण ने अपने इन्द्रास्त्र से वहीं उसका वध कर डाला। तीन दिन और तीन रात्रि घनघोर युद्ध करने के बाद लक्ष्मण हनुमान और विभीषण उसका वध कर सके।

लंका में युद्ध में रत मेघनाद दहाड़ता है—

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता॥
कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा। अंगद हनुमन्त बल सीवा॥
कहाँ विभीषन भ्राता द्रोही। आजु सबहि हठि मारउ ओही॥

मेघनाद-बध—

रामचन्द्र बिदा कर्‍यो तब बेगि लक्ष्मण वीर को।
त्यों विभीषण जामवंतहि संग अंगद धीर को॥
नील लै नल केसरी हनुमंत अंतक ज्यौं चले।
बेगि जाइ निकुंभिला थल यज्ञ के सिगरे दले॥

जामवंतहि मारिद्वै सर तीनि अंगद छेदियो।
चारि मारि विभीषनै हनुमंत पंच सुवेधियो॥
एक एक अनेक बानर जाइ लक्ष्मण सो भिर्‍यो।
अंध अंधक युद्ध ज्यों भव सो जुध्यो भव ही हर्‍यो॥

सीता की अग्नि परीक्षा—

जय जाय कहौ हनुमंत हमारौ। सुख देवहु हीरघ दुःख विदारौ॥
सब भूषन भूपति के शुभ गीता। हमको तुम बेगि दिखावहु सीता॥
हनुमंत गये तबहीं जहँ सीता। तब जाय कही जय को सब गीता॥
पग लागि कहो जननी पगु धारौ। मग चाहत है रघुनाथ तिहारौ॥
सिगरे तन भूषन भूपति कीने। धरि कै कुसुमावलि अंग नवीने॥
द्विज देवनि बंदि पढ़ी सुभगीता।तब पावक अंक चली चढ़ि सीता॥

'रामचन्द्रिका'

मेघनाद—

लंकेश्वर भी कभी कभी रोने लगता था,
हतोत्साह भी कभी कभी होने लगता था।
तब तुम आशा-सुधा पिता-उर में भरते थे,
उसके दुख का मूल, मूल से तुम हरते थे।
दसमुख के मर गये अनुज या बेटे नाती,
किंतु किसी के लिए न उसने पीटा छाती।

पर उसने घननाद! तुम्हारा मरण सुना जब,
रो रोकर निज हाथ देर तक शीश धुना तब।
घनख! तुमने बड़ा बिश्व में नाम कमाया,
देव लोक को जीत इन्द्रजित नाम चलाया।
लक्ष्मण को भी प्रथम समर की नीति सिखा दी,
तुमने अपनी महाशक्ति की शक्ति दिखा दी।

—:●:—

सुलोचना

मेघनाद की पत्नी सुलोचना के जीवन वृत्त का रामायण में विशद वर्णन नहीं मिलता। सुलोचना का एक और नाम प्रमिला था। वह नागराज आदि शेष की कन्या थी। सुलोचना परम पति भक्त पतिव्रता नारी थी। अपने पति इन्द्रजीत की मृत्यु का समाचार सुनते ही मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। पति के मृत्यु से संतप्त होकर विलाप करने लगी। वह विलाप करते समय कहती है—मेरे पिता आदि शेष ने मुझे एक मणि दिया था और कहा था कि तुम युद्ध में जाते समय अपने पति की यदि इस मणि से आरती उतारोगी तो तुम्हारा पति अजेय रहेगा। किन्तु इन्द्रजीत लक्ष्मण से युद्ध करने को जाते समय सुलोचना से नहीं मिला और न सुलोचना उसकी आरती ही उतार सकी। पति के मरने पर वह अपने स्वसुर रावण से आज्ञा लेकर राम के पास अपने पति के शव को देखने चली गई। राम की शरणागत होकर वह अपने पति के जीवन दान की याचना करने लगी। राम सुलोचना के प्रार्थना को सुनकर उसके पति इन्द्रजीत को जीवन दान देने की सोच ही रहे थे कि इतने में हनुमान ने राम से ब्रह्मा की मर्यादा की रक्षा का ध्यान दिलाया। राम ने सुलोचना को सान्त्वना देते हुए कहा—हे पतिव्रता! तुम अगले जन्म में अपने पति के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करोगी। तदनन्तर वह अपने सतीत्व के बल पर उसे जीवित कर दिया इन्द्रजीत जीवित होकर अपनी पत्नी को सान्त्वना देकर सदा के लिये शान्त हो गया। सुलोचना अपने पति के शव को लेकर लंका में आई और वही पति के साथ चिता पर जलकर सती हो गईं।

नरक में धर्म देवी यदि विचरती,
गढ़े में राज हंसी यदि विचरती।
तदपि अजगुत न था, पर दैत्य कन्या,
सती हो क्यों हुई त्रैलोक्य धन्या॥

असुर कुल को सुनयना यों मिली थी,
मनो दावाग्नि में कोई कली थी।
मनो मरुभूमि में गंगा बही थी,
गर विधि से सुधा सरिता बही थी।।

अधम पति भाग्य में तेरे लिखा था,
मनो विधि ने अनय करना सिखा था।
करीरों में मनो कोयल बसी थी,
मनो करि-कन्यका कीचड़ फंसी थी।।

किया तूने तथा सेवन स्वपति का,
धतूरे पर यथा हो कल्प लतिका।
तुझे पा धन्य थे लंका निवासी,
जहाँ तू थी वहीं थी गुप्त काशी।।

जगत में और कुछ तूने न जाना,
स्वपति को विश्वपति के तुल्यमाना।
तुझे प्रिय था वही कोई न दूजा,
उसे तज, की न तूने अन्य पूजा।।

सदा अनुकूल पति के तू रही थी,
तुझे श्लाघा किसी की भी नहीं थी।
बिना पतिके न गति मिलती सती की,
बिना संकल्प फल क्यों हो व्रती की।।

किसी विधि का रहे भर्त्ता कहीं हो,
सती का मन उसी में हो वही हो।
रहा इस भाँति का ही चित्त तेरा,
अपर नर पर न तूने नैन फेरा।।

कभी कुछ भी कहा तूने न उससे,
नहीं पल भर रही तू हीन उससे।
मरा जब वह, हुई अनुगामिनी तू,
मनो राकेश था वह यामिनी तू।।

निशाचर राज रण में मर गया जब,
विभीषण से मिली मन्दोदरी तब।
सतीपन फिर तुझे कैसे मिला था,
कमल विष बल्लरी में क्यों खिला था ?

सिया से सीख थी क्या प्राप्त तुझको,
मिला उपदेश कैसे आप्त तुझको।
सती क्यों राक्षसी होकर हुई तू ?
त्रिपथगा कर्मनाशा से हुई तू ॥

राम शिविर में आई, लिया पति का शिर तूने,
शीश हंसा कर दिया सती परिचय फिर तूने।
विस्मित रघुपति हुए देखकर तेरा पतिव्रत,
चढ़ी चिता पति संग मिला तुझको फल अभिमत ॥

सतियों में तव नाम सुनयने ! होगा तब तक,
प्रभा सूर्य से अलग नहीं होवेगी जब तक।
वह लंका है धन्य ! जहाँ पर तू रहती थी,
मनो म्लेच्छ के ग्राम दिव्य गंगा बहती थी ॥

सती सुलोचना—

वह सती सुलोचना प्रमीला जो मेघनाद की नारी है।
त्रिभुवन विख्यात साध्वी है बासुकी की राजकुमारी है।
इस जग में उत्तम श्रेणी की वह पतिव्रता कहलाती है।
उसके व्रत ही की शक्ति सदा स्वामी को विजय दिलाती है ॥

ऐसे सतवन्ती के पति का सिर अगर भूमि पर आएगा।
कपिदल तो किस गिनती में हैं संसार भस्म हो जाएगा।
पर मेघनाद वध के पहले होता है कुछ संकोच मुझे।
पृथ्वी से नर उठ रहा एक रह रह होता यह सोच मुझे।

नारी यदि पतिव्रता है तो वह भी नारी व्रत वाला है।
ब्रह्मा ने यह निर्मल जोड़ा उज्ज्वल हाँथों से ढाला है।
सचमुच रावण का पाप आज उसकी भी नाव डुबाता है।
घर का स्वामी पापी हो तो घर भर का नाश कराता है।

सारा रामादल काँप उठा, उस सति की आभा के आगे।
भगवान राम भी सकुचाए, तेजोमय प्रतिभा के आगे।
मैं आज बिपति की मारी हूं, मैं दुख की आज सताई हूं।
अपना सिर नीचा किए हुए, पति का सिर लेने आई हूं।

भ्रात से उसके प्राण दान ? ले सकती नहीं प्रमीला है।
दी हुई भीख क्या लेगा ? यदि दे सकती नहीं प्रमीला है।
मेघनाद लक्ष्मण का महायुद्ध बस एक ऊपरी पर्दा था।
वास्तव में दो सतियों सत संग्राम भूमि में लड़ता था।

जो अवधपुरी में बैठी है उस तपसिन से था रण मेरा।
निज पति को रक्षित रक्खूँगी यह महा कठिन था प्रण मेरा।
पर पति तो उसके साथी थे पर पत्नी जो हर लाया है।
बस इसी एक दुर्बलता ने मुझको यह दिन दिखलाया है।

मैं तो इस ओर अकेली हूं उस ओर साथ में सीता है।
इसलिए प्रमीला से यह रण उर्मिला सती ने जीता है।
सत का प्रभाव पड़ता ही है कब किसके रोके रुकती है।
तुम इतने ऊँची पथ पर हो, राघव का मस्तक झुकता है।

नारी के पतिव्रत का बल अनहोनी भी कर सकता है।
पतिव्रत यदि हो उठे प्रबल तो ईश्वर भी डर सकता है।



राम लवकुश युद्ध

बाल्मीकि सीता के दोनों बालकों को लेकर राम के यज्ञ में अयोध्या पहुँचे। सीता के दोनों बालक ऐसे मधुर स्वर में राम का गुण गान करने लगे कि राम भी उन पर मोहित हो गये। बाल्मीकि क्या देखते हैं कि सिंहासन पर जहाँ राम विराजमान थे उन्हीं के ठीक बगल में सीता की स्वर्ण मूर्ति भी विराजमान थी। महर्षि बाल्मीकि सीता की स्वर्ण मूर्ति देखकर परम आनन्दित हुये। यज्ञ आरम्भ हुआ। इधर लवकुश छन्द बद्ध रामायण का गान और राम की कीर्ति का गान करने लगे। राम अपना गुणगान सुनकर पत्थर की तरह मूक अचेत हो गये। महारानी कौशल्या ने सभासदों का ध्यान राम की तरफ आकृष्ट किया। गान बन्द करा दिया गया। राम ने दोनों बालकों को बुलाकर पूछा—तुम लोगों का नाम क्या है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है? लवकुश ने अपना नाम बताया और कहा कि पिता कौन है और उनका क्या नाम है, नहीं मालूम। हाँ! हम दोनों भाई हैं और मेरी माता का नाम सीता है। यह सुनते ही राम ने दोनों बालकों को अपने हृदय से लगा लिया। बाल्मीकि मुनि ने राम से कहा—हे राम! सीता निर्मल-निर्दोष है। इसे ग्रहण करो। राम प्रजा का मुख देखने लगे। प्रजा ने चिल्ला-चिल्ला कर कहा—भगवन! माता सीता को अभी ग्रहण करें। लक्ष्मण सीता को महर्षि बाल्मीकि के आश्रम से अयोध्या के राज प्रासाद में लाए। राम ने पुनः प्रजा से पूछा—आप लोगों की यदि अनुमति हो तभी हम सीता को ग्रहण कर सकते हैं अन्यथा नहीं। प्रजा ने एक स्वर से कहा—माँ जानकी हम लोगों की रानी हैं। यद्यपि सीता को राम ने ग्रहण कर लिया था, परन्तु उनको जो इतना कष्ट और अपमान हुआ था, सीता उसे सहन न कर सकीं और तत्क्षण धरती में समा गईं। सीता के दोनों पुत्र रोने लगे।

सीता भूमिष्ठ हो गई। अत्यधिक कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया।

पग जात भरे दृग देवर के, उर में अवसाद घनेरो भयो।
कर जातहिं राम के अन्तर में, अविराम विषाद को डेरो भयो ।।
धनु भंजनहारी भुजा फरकीं, सुधि में वरमाल को फेरो भयो।
उर जातहिं सूखे सपूतन के मुंह, आनन जात अँधेरो भयो ।।
—सोम ठाकुर

कुछ दिन बाद लक्ष्मण ने भी शरीर विसर्जन कर दिया। सीता और लक्ष्मण के प्राण अवसान होने के बाद एक-एक कर राम अन्य भ्राताओं और जननी सहित सरयू नदी में प्रवेश कर सदा के लिए विलीन हो गए।



अद्‌भुत रामायण कथा

सीता का दुर्गा रूप धारण कर राम के वदन में प्रवेश कर रावण बध करना, श्रीराम के विरुद्ध सहस्रमुखी रावण के पुत्रों का युद्ध:—

रावणस्यौरसाः पुत्रास्सह राक्षसपुङ्गवैः।
नाना प्रहारणोपेता दुद्रवू राघवं रणे॥

रावण के औरस पुत्रों ने राक्षसों के साथ अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त रणस्थल में राघव पर आक्रमण कर दिया।

फिर कहा—इन क्षुद्र नर और वानरों को मारने से मुझे क्या मिलेगा।

यस्माद्‌देशातसमायागस्त देशं प्रपयाम्यहम।
शुक्लकेंपु शराघातं न प्रशसन्ति पण्डिताः॥

ये जिस देश से आये हैं उसी देश को मैं इन्हें भेज देता हूं। क्षुद्रों पर शराघात करने की पण्डितजन प्रशंसा नहीं करते।

इति सञ्चिन्त्य धनुपावायव्यास्त्रं युयोजह।
तेनास्त्रेण नरा ऋक्षा बानरा राक्षसाहिते॥
यस्माद्यस्मात्समायातास्तं तं देशं प्रयापिताः।
गलहस्तिकया विप्र चोरात्राजभटा इव॥

ऐसा विचार करके उसने धनुष पर वायव्यास्त्र का संयोजन किया। उस अस्त्र से वानर राक्षस ऋक्ष आदि सब जिस-जिस देश से आये थे उस देश को उसी प्रकार चले गये जैसे चोरों को राज सेवक बलात् गलहस्त देकर निकाल देते हैं।

ते सर्वे स्वगृहं प्राप्ता अस्त्र वेगेन विस्मिताः।
क्व स्थिताः क्व समायातामन्यन्त स्वप्न एव तेः॥

वे सब अस्त्र के बेग से अपने-अपने घर जाकर, हम कहाँ थे और

कहाँ आ गये, इस प्रकार का आश्चर्य करते हुये इसे स्वप्न समझने लगे।

प्रलयानिलबेगेन अस्त्रेण वञ्चता भृशम।
भरतो लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नो हनुमास्तथा।।

प्रलय पवन के वेग से भरत और लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा हनुमान, अत्यन्त आहत हुये।

सुग्रीवनल नीलाद्या हरयोऽनिल रंहस।
विभीषण पुरोगाश्च राक्षसाः क्रूरवि क्रमाः।।

सुग्रीव नलनीलादि बानर, विभीषण आदि क्रूर पराक्रमी राक्षस भी पवन वेग से आहत हुये।

वानराश्च नरा ऋक्षा राक्षसा अक्षता गृहम्।
प्राप्यातिविस्मिताः सर्वे शोचन्तो राममेवहि।।

वानर, नर, रीक्ष, राक्षस सब अक्षत अपने घर आकर अत्यन्त विस्मित हो श्रीराम के निमित्त चिन्ता करने लगे।

पुष्करे पुष्पकेतिष्ठन्ससीतो राघवः परम्।
आस्ते स्म नास्त्रवेगोऽयं रामं चालयितुं क्षमः।।

केवल सीता सहित श्रीराम ही पुष्पक विमान पर स्थित रहे। वह अस्त्र श्रीराम को चलायमान करने में असमर्थ रहा।

महर्षयोऽपि तत्रासन्किमेतदिवि विस्मिताः।
सापि सीता महाभागा तथास्तेस्म शुचिस्मिता।।

जो महर्षिगण थे वे भी विस्मित हुए कि 'यह क्या हुआ' वह महाभागा सीता वहाँ मनोहर हास्ययुक्त हो वहीं स्थित रहीं।

गन्धर्व नगरा कारं दृष्ट्वा राम बलं महत्।
स्वस्तीतिवादिनः सौम्य शान्सि जेपुर्म हर्षयः।।

गन्धर्व नगर के समान राम की सेना को न देखकर स्वस्ति स्वस्ति कहकर ऋषिगण शान्ति जप करने लगे।

गरुडस्थो यदा विष्णु रावणं हन्तुमागत।
लीलया लवणाम्भोधौ क्षिप्तो विष्णुः सनातनः।।
साट्टहासं विनद्योच्चै रक्षसा वामपाणिना।

जिस समय गरुड़ पर स्थित हो विष्णु रावण को मारने आये थे तो उसने लीला से ही उन्हें लवण सागर की ओर क्षिप्त कर दिया था। उस राक्षस ने अट्टहास करते हुये बायें हाथ से ही यह कार्य किया था।

अस्माकं भागधेयेन रामो जयतु रावणम्।
परस्परे सुराः सर्वे वदन्तोऽन्तर्हिता स्थिताः।

अन्तरिक्ष में स्थित सब देवता परस्पर कहने लगे कि हमारे भाग्य से रामचन्द्र रावण को जीतें।

तदन्तर रावण क्रोधित होकर राम पर प्रहार करने में समर्थ न हो सका।

विनर्द्धतं रिपुं दृष्ट्वा रामः शत्रुनिवर्हणः।
जज्वाल च स कोपेन राक्षसां सह जो रिपुः।।
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठ प्रलयानसंनिभम्।
वेगेन वाणाश्चिक्षेप रक्षसां मर्मसु प्रभुः।।

शत्रुनाशी श्रीराम शत्रु को गर्जना करते देख कोप से जल उठे। प्रलय की अग्नि के समान उस धनुष श्रेष्ठ को खीचकर राक्षसों के मर्मस्थान में प्रभु बाण प्रहार करने लगे।

जघान राक्षसान्नामो रुद्रः पशुगणानिव।

राम ने राक्षसों का इस प्रकार बध किया जैसे रुद्र पशुओं का संहार करते हैं। इस प्रकार रावण और राम में युद्ध होने लगा।

वक्षो निर्भिद्य स सरो रामस्य सुमहात्मनः।
भित्त्वा महीं च सहसा पाताल तलकाविशत्।
ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि।।
निःसज्ञा निश्चलश्चासीद्धाहा भूतानि चक्रिरे।
प्राकम्पत मही सर्वा सपर्वत वनाब्धिका।
ऋषयः कान्दिशी कास्ते हा राम इति वादिनः।

वह बाण महात्मा राम के वक्ष का भेदन करता हुआ पृथ्वी का भेदन कर पाताल में प्रवेश कर गया? तब महाबाहु राम मूर्छित होकर पुष्पक में गिरकर निश्चल और अचेत हो गये। तब

सभी प्राणी हाहाकर करने लगे। सब पर्वत और बनों सहित धरती काँपने लगी और सभी ऋषिगण 'हा राम' इस प्रकार का शब्द करने लगे।

तदा तु मुनिभिर्दृष्टा सीता प्रहसितानना।
वशिष्ठप्रमुखाः सर्वे सीतां प्रोचुर्महर्षयः॥

उस समय सीता के हास्य युक्त मुख को देखकर वशिष्ठ आदि ऋषियों ने सीता से कहा।

हे सीते! तुमने क्यों इस रावण की कथा को सुनाया। हे जनक नन्दिनी! उसी का यह घोर फल उत्पन्न हुआ है। सब भ्राता और वानर न जाने कहाँ गये? राम को क्या हो गया है।

स्वरूपं प्रजहौ देवी महाविकट रूपिणी।
क्षुत्क्षामा कोटराक्षी च भ्रमित लोचना॥

सीता ने अपने को, पूर्व रूप का त्याग कर, महाविकट रूप धारण कर चक्र के समान भ्रमित लोचना कर लिया।

तदन्तर एक के बाद एक-एक करके सब राक्षसों को मार डाला। इसके पश्चात इन्द्रादिक देवता सीता की जय जय कार करते हुए ऐसा मानने लगे कि अब संसार भंग होगा।

राम-रावण में घोर युद्ध होने लगा। राम ने राक्षसों का इस प्रकार वध किया जैसे रुद्र पशुओं का संहार करते हैं।

राम और रावण में बलि और वासव जैसा युद्ध होने लगा।

दशशतवदनो जितारिरुग्रोरण शिरसि प्रननर्त सानुयात्रः।
गगनलगता निपेतुरुल्काः प्रलय मिवापि च मेनिरे जनौघाऽ॥

शत्रुओं को जीतने वाला सहस्रमुख रावण रण में नृत्य करने लगा, आकाशमें उलका पात होने लगा और सब प्राणियों ने समझा कि अब प्रलय हो जायगा।

नर्दन्तं राक्षसंचापि महाबल पराक्रमम्।
साट्ट हासं बिनद्योच्चैः सीता जनक नन्दिनी।
स्वरूपं प्रजहौ देवो महाविकट रूपिणी।
क्षुत्क्षापा कोट राक्षी च भ्रामित लोचना॥

महाबल पराक्रम से युक्त राक्षस को शब्द करता देखकर जनक नन्दिनी सीता ने ऊँचे स्वर से अट्टहास किया और अपने पूर्व रूप का त्याग कर महाविकट रूप धारणकर भूख से व्याकुल काटराक्षी, चक्र के समान भ्रमित लोचना रूप धारण कर लिया।

कांश्चित्प्र चूर्ण्य वदनं पशुमार ममारयत्।
तात्सर्वान्निमिषेणैव निहत्य जनकात्मजा ॥

किन्हीं के सर को चूर कर पशुओं के समान मार डाला। इस एक निमेषमात्र में जनकात्मजा ने उन सबको मार डाला।

सीता देवी ने देवों से कहा—

पतिर्मे पुण्डरीकाक्षः पुष्पकोपरि राघवः।
विद्धः सुरप्रेण हृदि शेते मृतकवत्प्रभुः ॥
तस्मिन्नेव स्थिते देवाः किमिच्छामि जगद्धितम्।
ग्रासमेकं करिष्यामि जगदेवच्चराचरम् ॥

मेरे पति कमल लोचन राघव हृदय में तीक्ष्ण बाण से बिद्ध होकर पुष्पक पर मृतक के समान सो रहे हैं। हे देवो! उनकी ऐसी स्थिति होने से मैं किस प्रकार जगत के हित की इच्छा कर सकती हूं। इस चराचर जगत का एक ही ग्रास करूँगी।

देवी के क्रोधपूर्ण बचन को सुनकर देवता हाहाकर करने लगे और पृथ्वी चलायमान हो गई।

ततो ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं पुष्पकं रथमास्थितम्।
श्रीरामं ग्राहयामास स्मृतिं स्पृष्टास्वपाणिनां ॥

सब देवताओं सहित ब्रह्मा जी ने पुष्पक रथ में स्थित श्रीराम को अपने हाथों से स्पर्श कर स्मृति दिलाई।

नापश्यज्जानकी तत्र प्राणेभ्योपि गरीयसीम्।
नृत्यतीं चापरां कालीम पश्यच्च रणांगणे ॥
चतुर्भुजां चलज्जिह्वां खड्गखंपरधारिणीम्।
शवरूप महादेव हृत्संस्थां च दिगम्बराम् ॥

परन्तु प्राणों से भी अधिक प्रिय जानकी को राम ने वहाँ नहीं देखा। बदले में युद्धस्थल में नृत्य करती हुई महाकाली को देखा जो

चतुर्भुज, जीभ लपलपाती, खड्ग, खप्पर धारण किये और दिगम्बर रूपमें शवरूपी महादेव के हृदय पर स्थित थीं।

राक्षसां निधनं कृत्वा नृत्यन्तीयं व्यवस्थिता।
अनया सहितो राम सृजस्यवसि हंसि च ॥
नानया रहितो राम किंचित्कर्तुमपि क्षमः।
इति बोधयितुं सीता चकार तदनिंदिता ॥

अब वे राक्षसों का बध करने के बाद व्यवस्थित हो नृत्य कर रही हैं। हे राम! इनके सहित आप जगत उत्पन्न कर नष्ट कर देते हैं। हे राम! इनके बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते। यही दिखाने के लिये सीता ने यह कार्य किया है।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा रामः कमल लोचनः।
प्रोन्मील्य शनकै रक्षि वेपमानो महाभुजः ॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चापि विह्वलः।
भीतः कृताञ्जलि पुटः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥

ब्रह्मा के वचन को सुनकर महाबाहु, कमललोचन राम ने शनैः शनैः नेत्र खोलकर काँपते हुये, भूमि में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उनके (जानकी के) तेज से विह्वल हो डरे हुए के समान हाथ जोड़कर परमेश्वरी से बोले।

का त्वं देवि विशालाक्षि शशांकां वय वांकिते।
न जाने त्वाँ महादेवि यथावद् ब्रूहि पृच्छते ॥

'हे चन्द्रखण्ड से चिह्नित विशालाक्षी! तुम कौन हो? हे महा-देवि! हम तुमको नहीं जानते इसलिये पूछते हैं कि अपना वर्णन करो।

रामस्य वचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी।
व्याजहार रघुव्याघ्रं योगिनाम भयप्रदा ॥

तब राम के वचन सुनकर योगियों को अभय देने वाली वह परमेश्वरी रघुसिंह (राम) से वोली।

मां विद्धि परमां शक्ति महेश्वरसमाश्रयाम्।
अनन्यामव्ययाममेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥

मुझे महेश्वर के आश्रित परमाशक्ति जानो। मैं अनन्य, अविनाशी हूं। ऐसा मुमुक्षजन मुझको देखते है।

श्रीराम विजय वर्णन—

एवं नाम सहस्रेण स्तुत्वऽसौ रघुनन्दनः।
भूयः प्रणम्य प्रीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः॥
यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरी।
भीतोऽस्मि सांप्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय॥

इस प्रकार सहस्र नाम से स्तुति करके रघुनन्दन ने प्रणाम कर हाथ जोड़ जानकी से कहा। हे परमेश्वरी! तुम्हारा यह जो घोर परमेश्वर सम्बन्धी रूप है उससे मैं भयभीत हो रहा हूं। अतः मुझे शान्त और सौम्य रुप दिखाओ।

एव मुक्ताथ सा देवी तेन रामेण मैथिली।
संहृत्य दर्शयामास स्वं रूपं परमं पुनः॥

जब राम ने मैथिली से इस प्रकार कहा तव उस देवी ने अपना रूप शान्त कर सौम्य रूप दिखाया।

तदीदृशं समालोक्य रूपं रघुकुलोत्तमः।
भीतिं संव्यज्य हृष्टात्मा बभाषेपरमेश्वरीम॥

रघुकुल श्रेष्ठ ने उनके इस प्रकार के रूप को देखकर भय को त्याग दिया और प्रसन्न हृदय से परमेश्वरो से बोले।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
यन्मे साक्षात्त्वमब्यक्ता प्रसन्ना दृष्टि गोचरा॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा तप सफल हो गया तुम अव्यक्ता मेरे सम्मुख साक्षात प्रसन्न रूप से दृष्टि गोचर हुई हो।

पुदश्च राम ने कहा—

भ्रातरो मम कल्याणि वानरोः सविभीषणाः॥
सेनात्यो मम वैदेहि अयोध्यायोधमुख्यकाः।
सुपुनस्ते सङ्गताः सन्तु मया रावणतर्जिताः॥

हे कल्याणी! मेरे भ्राता, वानर और विभीषण आदि सुहृद,

अयोध्य-मुख्य हमारी सेना के लोग जो रावण द्वारा तर्जित हो गये हैं वे मुझ से पुनः मिल जाँय।

प्रहस्य सीता पुनराह रामं तथेति रामोऽपि विरिंचिमुख्यान्।
स तान्विसृज्य प्रतिगृह्य सीतां गन्तुं स्वकं देशमसावियेष ॥

तब हँस कर सीता ने राम से कहा कि ऐसा ही होगा। तब रामचन्द्र ने ब्रह्मा आदि देवताओं को बिदा कर सीता को लेकर अपने देश जाने की इच्छा की।

वानरान्राक्षसान्सर्वा नानीय स्वपुरं हि सः।
सर्वंतत्कथयामास रामः कमल लोचनः ॥

सब वानर राक्षसों को अपने पुर में लाकर कमललोचन राम ने रावण वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया।

ऋषयाश्चाभि नेद्यै नं रघुनन्दनम्।
अशीर्भिर्वर्धयामा सूर्ययश्चापियथागतम् ॥

सीता सहित रघुनन्दन का अभिनन्दन करके और आशीर्वादों से उनका वर्द्धन करके ऋषिजन अपने-अपने स्थान को चले गये।

इतिः।



काव्य कौमुदी

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे पुनि न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर करते न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज वसह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।।

× × ×

अनृत, साहस, छद्म प्रगलभता अदयता अविवेक अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहें, फिर उसे कवि निन्दित क्यों कहें?
न अबला जनको कुछ शर्म है, न उनका कुछ बाधक धर्म है।
निज प्रयोजन ही प्रिय है उन्हें, पर प्रयोजन अप्रिय है उन्हें।।

अरिहुं दन्त तृन धरै, ताहि न मार सकत कोई।
हम सन्तत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन ह्वै।।
अमृत पयनित स्रवहि, बच्छमहि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरुकहिं न पियावहिं।।
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन।।

अदभुत एक अनुपम बाग।
युगल कमल पर गज कीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर,सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप-पुहुप पर पल्लव तापर सुकपिक मृग मदकाग।।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर एक मनिधर नाग।

(दोनों चरण, मंद चाल, कटि, नाभि, कुथ, मुख, कंठ, चिबुक, गोदना बिन्दु, होंठ, नासिका, वानी, कस्तूरी बिंदु, कागपक्ष, नंत्र, भौहें, ललाट, सीसफूल, सहित गुथी हुई वेणी।

अति सुन्दर केलि के मंदिर में परयंक पैसालहु सोय रही।
नव यौवन रंग तरंगित हो छवि आँगन मोहि समोय रही॥
हिय के अभिलाषन चाखन को न समर्थ, अहो जिय गोय रही।
कुछ मीलित से दृग कोर प्रिया प्रिय के मुख ओर सुमोय रही॥
आंखि मूँदिबो केमिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहूं कहूं मुसकाई चितै अंगराई अनूपम अंग दिखावै॥
नाह छुई छल सो छतियाँ हँसि भौंह चढ़ाइ आनन्द बढ़ावै।
जोवन के मद मत्त तिया, हित सों पति के नित चित्त चुरावै॥

अपना अपना धर्म समझें जो दम्पति तो शादी है।
अथवा हृदय हीन सौदे में दोनों की बरबादी है।
नहीं परस्पर प्रेम तथा सद्भाव पूर्ण यदि हो व्यवहार।
तो निकाह क्या है अबलाओं के ठगने का है व्यापार।
एक म्यान में दो तलवारें कभी नहीं रह सकती है।
किसी और पर प्रेम नारियाँ पति का क्या सह सकती है॥

अब अपने दर पै हमको रहने दे या उठा दे।
हम इसी तरह भी खुश हैं रख या हवा बना दे॥
आशिक हैं, पर कलन्दर जहाँ बिठा दे,
या आश पै चढ़ा या खाक में मिला दे,
राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा है।

अलम पर अलम, और सितम पर सितम हम उठाए हुए हैं।
जमाने के गरदिस के पीसे हुए हैं मुकद्दर के हाँथों मिटाए हुए हैं।
न हमदर्द कोई न हमराज कोई न हमदम है कोई न हमशान कोई।
फकत साथ है एक मुसीबत हमारे कलेजे से उसको लगाए हुए हैं।

निगाहें भी हैं उलटी हर एक बात उलटी,
नजर आ रही है दोस्ती दुश्मनी में।
किस्मत जो उलटी समझ भी है उलटी,
जमाने भर को दुश्मन बनाए हुए हैं॥

एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनि के निकटी।
घट के सुत सो हित नारि जटी मनु धूरजटी नहीं काम छटी।

दुपटी फटि जाति जहाँ तम की प्रगटी घट में गुरु ज्ञान गटी।
कहिये कहुं मुक्ति हटी वरटी जह पर्नकुटी रघुनाथ ठटी॥

एक डोली में बैठी है सुहाग लेकर, एक जाती हे जेरे जमीन देखो।
कम ख़ाब के पहने लिबास एक ने, और एक है ख़ाक नशीन देखो।
एक टहनीके दोनों फूल हैं,लेकिन एक है मुरझाया एक हसीन देखो॥

इन खेतों में हल चलता है घर में चक्की चलती है।
हलवाहिन अरमान पीसती और कलेजा मलती है।
गाती है जतसार पीठ पर व्याकुल बच्चे रोते हैं।
पता नहीं करुणा निधान भगवान कहाँ पर सोते हैं॥

ईश गिरिजा के बश बिकल विसेष भयो,
सीता बस रावन गयो है परलोक में।
कृष्ण राधिका के बश नाच भाँति भाँति नाच्यो,
ब्रह्मा निज पुत्री ते भयो है रस कोक में।
द्रुपद सुता के काज कीचक नरक गयो,
भयो रहनेम राजमतो बस जोख में।
'सोहन' कहत नामो नामो बदनाम भये,
ऐसो कामदेव है अखण्ड तीन लोक में॥

इतना कह कर मौन हुए और तनिक गंभीर हुए।
पर सौमित्र न शान्त रह सके उन्मुख वे वर बीर हुए।
और इसे तुम भी न भूलना, तुम नारी होकर इतना।
अहम्भाव जब रखती हो, तब रख सकते हैं नर कितना।
झंकृत हुई विषम नारी की तंत्री सी स्वतंत्र नारी।
तो क्या अबलाएँ सदैव ही अबलाएँ हैं बेचारी।
नहीं जानते तुम कि देखकर निष्फल अपना प्रेमाचार।
होती हैं अबलाएँ कितनी प्रबलाएँ अपमान बिचार।

बलदेव प्रसाद मिश्र—राम काव्य

रावण को वरदान प्राप्ति—

उस युग के साम्राज्यवाद का मानव-विद्रावण अवतार।
रावण लंका-अधिपति बनकर विचल किये था सब संसार।

परम चतुर था और साहसी, उसके वेद भाष्य विख्यात।
उस विज्ञानी के बस में थे प्रकृति-देव, सेवक दिन रात।

कहते न समझे न समझाये समझे,
सुकवि लोग कहें ताहि मानत असार सों।
काक को कपूर जैसे मरकट को भूषण ज्यों,
ब्राह्मण को मक्का जैसे मीर को बनारसी।।

बहिरे के आगे तान गाये को सवाद जैसे,
हिजड़े के आगे नारि लागत अँगार सी।
कहै कवि 'गंग' मन माँहि तो विचार देखो,
मूढ़ आगे विद्या जैसे अंधे आगे आरसी।।

कौन कहता है अरे ईश्वर मिलेगा साधना से।
मैं स्वयं वह वह स्वयं मैं भावमय आराधना से।
वह नहीं मुझसे पृथक है नहीं मैं भी पृथक उस से।
एक स्वर है एक लय है त्वं अहम् का भेद किससे।।

काहू के बैर कहा सरै।
ताकी सरबरि करै सो झूठौ जाहि गुपाल बड़ौ करै।
ससि सन्मुख जो धूरि उड़ावै उलटि ताहि कैं मुख परं।
चिरिया कहा समुद्र उलीचै पवन कहा परबत टारै?
जाकी कृपा पतित ह्वै पावन पग परसत पाहन तरै।
सूर केस नहिं टारि सके कोउ, दांत पीसि जौ जग मरै।

कब से टरकाते जाते हो माया की यह प्याली।
भर न सके तुम जन्म जन्म से यह अंजलि है खाली।
देख चुकी मैं विश्व तुम्हारा रे निर्धन यदुवंशी।
बेचो अपना मोर मुकुट अब बेचो अपनी बंशी।

ऊपर अम्बर रोता हैं नीचे धरती अकुलानी।
यह मुकुट वेच दो राजा यह महल वेच दो रानी।
विस्तृत साम्राज्य तुम्हारा मर भूखों की बस्ती हैं।
परवानों की हस्ती क्या, मर मिटने की मस्ती है।।

काहे न ओ करुणा ना सागर तने कोने जई पाषाण भरो।

ते पत्थर पसंद केम कर्यो।
मंदिर के मस्जिद नो अन्दर सत्व तत्व माँ तू ज निरंतर।
तोए निराकार धरीने तूँ ते पत्थर पसंद ने पाषाण ड्यो।
तूँ ने चौदह् बरस ना बनना वासे बन उपवन विसे उभर्यो।
प्यारे चरण नीचे फूल ढग जे में कर्यो ते आज में मारे सिरे धर्यो।
साम्भण ओ मन गमता मानव मैं पत्थर पसंद केम कर्यो।
सीता नूँ जाने हरण करी ने रावण लंका ने पार खर्यो।
प्यारे मण्यू ना मन कोई मारूं साली आ पत्थर नीपत्थर उगर्यो
एकज मारा राम नाम पर आ पत्थरे सागर पार कर्यो।
साम्भण ओ मन गमता मानव मैं पत्थर पसंद केम कर्यो।

केते भये यादव सगर सुत केते भये जात,
हू न जानै ज्यों तरैया परभात की।
बलि बेनु अम्बरीष मानधाता प्रह्लाद,
कहाँ लौ गनाऔं कथा रावन ययात की।
तेउ न वचन पाये काल कौतुकी के हाथ,
भाँति-भाँति सेना रची घने दुख धात की।
चार-चार दिन को चबाउ चाहैं करै कोउ,
अन्त लुटि जैहें जैसे पूतरी बरात की॥

किंतु बालि से रची संधि वह, उभय सुरक्षा का प्रण हो।
अनजाने ही उस पर सहसा भारत का आक्रमण न हो।
वालि न था उसका पथ कंटक काँटे तो मुनि आश्रम थे।
जिनमें सदा पल्लवित रहते आर्य सुसंस्कृति के क्रम थे।

करम गति टारे नाहिं टरी।
गुरु वशिष्ट से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को बन में विपति परी।
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारिधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लै गो रावन सुबरन लंक जरी।
नीच हाँथ हरिचन्द बिकाने बलि पताल धरी।
कोटि गाय नित पुण्य करै नृप गिरगिट जोनि परी।
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी।

कोई कहे नन्द यशोदा के बालक मोंहि,
कोई कहे देवकी-वसुदेव को बारो है।
कोई कहे दशरथ-कौशल्या के पूत राम,
कोई कहे याही ने हिरनाकुश को मारो है।
कोई कहे याही ने वराह औ बामन ह्वै,
बलि को छलो ओ हिरणाक्ष को विदारो है।
हो तो यदि एक बाप को तो लेतो न शस्त्र,
हाँथ मेरे तो अनेक बाप तासो चक्र धारो है।

क्रूर दृष्टि से इन्हें देखकर, बोला वह रे वन्दी वानर।
यह दुःस्साहस ! विपिन उजाड़ा, शठ ! तूने किसका बल पाकर ?
मारुति बोले 'लंकाधीश्वर ! बल का मूल एक ही स्थल है।
उसे अचिन्त्य शक्ति कह लो या कह लो वह ईश्वर केवल है।

कवि कहते हैं वह ब्रह्मा का और रुद्र का बरदानी।
किंतु विष्णु से बात बात में उसने भी स्पर्धा ठानी।
यदि रहे न कल्याण-समर्थक वैज्ञानिक सर्जन संहार,
तो वे रावणता ही देंगे, जग को हाहाकार।

गर्ज से अर्जुन क्लीव भये, अरु गर्ज से अर्जुन धेनु चरावै।
गर्ज से द्रौपदि दासि भई, अरु गर्ज से भीम रसोई पकावै॥
गर्ज वरी त्रयलोकन में, अरु गर्ज बिना कोई आवै न जावै।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, गर्ज से बबी गुलाम रिझावै॥
गंग तरंग प्रवाह चलै अरु, कूप को नीर पियो न पियो।
आनि हृदय रघुनाथ बसै तब, और को नाम लिये न लियो॥
कर्म संयोग सुपात्र मिलै तौ कुपात्र को दान दियो न दियो।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर मूरख मित्र कियो न कियो॥

चले थे बड़े दुश्मने जान बनकर,
अब आके रहे दिल में मेहमान बनकर।
उसी का तसब्बर उसी का परस्तिस,
बसा है मेरे दिल में इमान बनकर।
बने दर्द पहलू में और दिल में अरमाँ,
मेरी जान लोगे मेरो जान बनकर।

ये आहों के आतिश में आँखों के आँसू,
उठे हैं वह पहलू से तूफान बनकर।
क्यों ऐ नातवाँ हो परेशान इतने,
परीशान होगा परीशान बनकर॥

चोर चुप्प ह्वै रहै रैन अँधियारी पाए,
संत चुप्प ह्वै रहै मढ़ी में ध्यान लगाए।
बधिक चुप्प ह्वै रहै फांस पंछी ले आवै,
छैल चुप्प ह्वै रहे सेज पर तिरिया पावै॥
वर पीपर पात हसी श्रबन कोई कोई कवि कुछ कुछ कहैं।
बैताल कहैं विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहैं॥

× × ×

चाह रहा था वह कि भरत भू उसका उपनिवेश बन जाय।
इसीलिए तो रच रक्खे थे उसने छलबल सभी उपाय।
सोय-स्वयंबर में भी पहुंचा था वह दुर्द्धर अभिमानी।
बाण-उपस्थिति से न धनुष था छुआ, परिस्थिति पहिचानी॥

× × ×

चंचल नारी की प्रीति न कीजिये प्रीति किये दुख होत है भारी।
काल परे कबु आन बने कछु नारी की प्रीति है प्रेम कटारी।
लोहे को घाव दवा सों मिटै, अरु चित्त को घाव न जाय बिसारी।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर नारी की प्रीति अंगार से भारी॥

साहित्य प्रभाकर—

चरण कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे अन्धे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रङ्क चलै सिरछत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बंदौ तेहि पाई॥

जतक निरासा, दुष्ट नृपन को आसा,
दुरजन की उदासी, सोक रनिवास मनु के।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब,
भ्रम मोह आदि मुनि कौसिक के तनु के॥

'हरिचंद' भय देव मन के पुहुमि भार,
विकल बिचार सबै पुरनारी जनु के।
संका मिथिलेस की सिया के उरसूल सबै,
तोरि डारे रामचन्द्र साथै हर धनु के॥
जनक दुलारी सुकुमारी सुधिपाई पिय,
चहत चलन बन इच्छा नरनाह की।
उठि अकुलाय घबराय सङ्ग जान हेतु,
सकुचत विनय सुनाई चित चाह की।
पतिपद प्रेम लखि-नायक, कहत सत्य,
तिया हुती पतिव्रता मानो नाहीं वाह की॥

× × ×

जो श्रम कण से सिंचित है, उन मैदानों में आओ।
जो खिरमन से खाली है, उन खलिहानों में आओ।
स्वागत है आज तुम्हारा उजड़ी इन झोपड़ियों में।
यह धरती धंस जायेगी, है दो दिन की मेहमानी।
इतिहासो के पन्नो पर उड़ते हैं राजा रानी॥

दर सिकन्दर ने कह दिया था कि मैं खुदा नहीं।
वक्त आने पर खुदा से वह लगा होने जुदा।
वक्त मुरदन यु सिकन्दर ने हकीमों से कहा।
मौत से मुझको बचा लो करके कुछ मेरी दवा।

सर हिला कर यूं लगे कहने अये शाहे जहाँ।
मौतसे किसको पनाह है क्या है दरमाने कजा।(दरमाने=दवा)
वर्ग जीदा नौकरों से हुआ यूं हम कलाम।
है कोई इस वक्त मुश्किल में मेरा मुश्किल कुशा।(दूर करनें का)
यक जवान होकर सबने कहा के हम माजूर हैं। (मजबूर)
कुन्द हैं तदवीर के नाखुन अकल है ना रसा।
बेगमों और लड़कियों से फिर मुखातिब यूं हुआ।
नाजनीनों इस घड़ी तुमसे है उम्मीदें वफा।

सरद आहें भर के और वाचश्मतर कहने लगी।
बेबस और माजूर हैं हम किस तरह से लें बचा ॥

× × ×

जो मजनू मेरे घर में मेहमान होगा,
यह दिल उसके कदमों पर कुरबान होगा।
लिखा तो मुकद्दर में मेरे यही था,
कि दिल मेरा यों ही परेशान होगा।

फँसी हूं मुहब्बत की दुशवारियों में,
समझी थी यह काम आसान होगा।
यह दिल भी परेशान है जिन्दगी से,
इसे जो भी लेगा परेशान होगा।

परेशानियाँ मेरी उनसे न कहना,
मुसीबत जुदा है होना न होगा।
मुझे ख्वाब में ही तूं सूरत दिखा जा,
यही कैस लैला पर एहसान होगा॥

× × ×

जार को बिचार कहा गणिका को लाज कहा,
गदहा को पान कहा आंधरे को आरसी।
निगुनी को गुन कहा दान कहा दारिदी को,
सेवा कहा सूम की अरंडन की डारसी।

मदयी को सुचि कहा सांच कहा लम्पट को,
नीच को वचन कहा स्यार की पुकारसी।
'टोडर' सुकबि, ऐसे हठी तें न टार्यो टरै,
भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी॥

× × ×

चिन्तातुर लखकर रावण को, मेघनाद ने जोड़े हाथ,
पिता! युद्ध मेरा कल देखो, चिन्ता क्या जबतक मैं साथ।
और दूसरे दिन सचमुच ही उसने किया घोर संग्राम,
विचलित हुआ रामदल सारा, हा-हा क्या होगा परिणाम॥

जा दिन तें जदुनाथ चले, ब्रज गोकुल से मथुरा गिरधारी।
ता दिन से ब्रजनायिका सुन्दर, रम्पति झम्पति कम्पति प्यारी।।
वाहि के नैनन की सरिता भई, शंकर सीस चलै जल भारी।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, ता दिन तें जमुना भई कारी।।

जा दिन कंत विदेश चले, गलहू न लगी न परी चरना।
ता दिन तें तन ताप रह्यो, मनझूर रही पिय को मिलना।।
भूल गई सुख फूल रह्यो, दुख नैन लगे गिरि को झरना।
कवि गंग की नार विचार करै पियको विछुरे ते भलो मरना।

जबते चित्रकूट ते आए।
नन्दि गाँव खनि अवनि डालि कुश पर्ण कुटी करि छाए।।
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तन त्यौं त्यौं प्रीति अधिकाई।
भए न हैं न होहिंगे कबहूं, भुवन भरत से भाई।।

साहित्य प्रभाकरो—

जल को गये लक्खन हैं लरिका परखो पिया छांह धरोक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पांव पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।।
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े।।

जो सुख होत गुपालहिं गाऐं।
सो सुख होत न जप तप कीन्हैं कोटिक तीरथ न्हाऐं।।
दिलैं लेत नहिं चारि पदारथ चरन कमल चित लाऐं।
तीन लोक तृन सम करि खेलत नन्द नन्दन उर आऐं।।
वंसी बट वृन्दाबन जमुना तजि बैकुंठ न जावं।
'सूरदास' हरि को सुमिरन कर बहुरि न भव जल आवैं।।

ठेस न लगती यदि कलंक की, खिलता कहाँ प्रेम अभिराम।
प्रेम पात्र कब प्रभु को मिलता, सरस भक्ति बनता कब काम।
कैकेयी के जिस कटु वर ने महत् चरित यह किया प्रदान।
शाप रहा हो कुछ को, पर वह, जग के हेतु हुआ वरदान।

तीर का मैं नीर हूंगा विश्व की प्राचीर हूंगा।
मुक्ति की जंजीर हूंगा सत्य की मैं पीर हूंगा।।

दूर हूंगा यंत्रणा से मंत्रणा से वाधना से।
कौन कहता है अरे ईश्वर मिलेगा साधना से॥

तन को तन को तन बारि छुए पर जान अजान जनावति है।
करि पापी सुरापिनि हूं पै कृपा, तू सबै सुरलोक पठावति है॥
विधि शंकर दूतन सो कहैं दूत, हमारे ही जान लड़ावति है।
नंगा के सीस पै बैठि के गंगा, तू बहुतेक दंगा मचावति है॥

तुम सा पुरुष न मुझ सी नारी, बनी विश्व में कोई और।
मैं राजी हूं तुम हाँ कह दो, बाँधो झटपट सिर पर मौर।
अरे बृथा क्यों दुबली-पतली नारी यह तुमने हेरी।
छोड़ो उसको देखो मुझको हूँ मैं और छटा मेरी॥

तुम मेरी राखो लाज हरी।
तुम जानत सब अंतरयामी करनी कुछ न करी।
औगुन मौसे विसरत नाहीं पल छिन घरी-घरी।
सब प्रपंच की पोट बाँधि कै अपनी शीश धरी।
दारा सुत धन मोह लिये हैं सुध-बुध सब बिसरी।
सूर पतित को बेग उधारो अब मेरी नाव भरी॥

दंत पैं नाम दमोदर को मेरे कंठ में लिख दे कृष्ण मुरारी।
दाहिनी ओर लिखो सजनी कहै चारि भुजा कर बाँके मुरारी।
हाँथ पैं नाम लिखो हरि को दोनों जोबन बीच लिखो बनवारो।
हृदय बीच नाम लिखो मनमोहन सुनिए लिलहारो की गोदनहारो

दुरजोधन को गरब मिटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा बिधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी हाँथ हरी॥

द्रष्टुं तत्र विचित्रता सुमन सां मैं था गया बाग में।
कचित्तत्र कुरंगशावनयना गुल तोड़ती थीं खड़ी॥
उन्नद्भू धनुषां कटाक्ष विशिखैवर्घालय किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह जलधौ हैदर गुजारे शुकर॥

देखन तड़ाग बाग आए हैं अनोखे आज,
सुन्दर किशोर दोऊ शोभा सुख ऐन हैं।

कटि में तूणीर कर कौतुक कमान धारे,
नैंन अरुणारे चारु चैनन के चैंन हैं।
श्याम गौर सुघर सुलक्षण अनूप रूप,
गुन के निधान शील सुषमा के ऐन हैं।
देखते बनैं पैं न कहत बनैं री आली,
नैंन को न बैंन और बैंन को नैंन है॥

× × ×

दीनानाथ भक्त हित करते हो अनेको कृत्य,
वारिध के बीच दौड़ गज को बचाते हो।
सभा के बीच सुन क्रन्दन द्रुपद पुत्री का,
करुणा के निधान धाय पट को बढ़ाते हो।
विविध भाँति व्यंजन दुर्योधनके त्याग नाथ,
प्रेम बस जाय साग बिदुर घर खाते हो।
पर हे मुरारी गिरधारी हिय विचार लो,
अपनी एक बाप की प्रतिज्ञा भूल जाते हो।

दूर उर्मिला का सागर था।
देह महल में रुद्ध हुई थी, पर न विरुद्ध विरह निर्झर था।
भरीं दृगों में जल-धाराएँ शब्द-शब्द करुणा कातर था।
किन्तु माण्डवी को तो आहों का भरना भी बर्जित तर था।

सन्मुख है राकेश चकोरी पर न उधर निज नयन उठाये।
बिकसी प्रभा प्रभाकर की है, पर न कमलिनी मोद मनाये।
था बसन्त आँखों के आगे, पर कीलितं ही पिक का स्वर था।
अहह ! मांडवी को तो आहों का भरना भी बर्जित तर था।

जो है दूर उसी की आशा रख कर मन समझाया जाये।
समझ सराहूं मैं उस मन की, पास रहे पर पास न आये।
सलिल-विरह की बात न जिसमें, स्वतः प्यास उठना दुर्भर था।
अहह ! मांडवी को तो आहों का भरना भी बर्जित तर था॥

ध्रुव अनादि अनन्त चिन्मय भाव को जब देख लूँगा।
दीप की अविरल किरण से दीप को जब देख लूँगा॥

तिमिर के घन अंचलों ने ज्योति उसकी ढाँक ली है।
जाति के आदर्श से प्रतिबिम्ब की रेखा मिली है।।

धन के घमंड घोर मन से तुम दूर करो,
दौलत खजाना माल सबै धर जाना है।
थोड़ी सी तो जिन्दगी में सिया राम ध्यान,
धरो आया तूँ जहाँते फिर वाही घर जाना है।
धरनी में ध्यान तप तीरथ अनेक करी,
कठिन सुभारग पर तोके अड़ जाना है।
लाखन में एक बात जगत बताए देत,
काहू को सताओ मत अंत मर जाना है।

नारी का बदला नारी से लो, नर का तुम संहार करो।
खर-दूषन को मिलो चुनौती भैया! तुम स्वीकार करो।
नाक-कान अपमान हुआ जो वह तब ही भूल पायेगा।
जब दोनों का रक्त धरा पर धारा सा बह जायेगा।

× × ×

नई अबला रस भेद न जानत, सेज गई जिय माँहि डरी।
रस बात करी जब चौंकि चली तब धाय के कंत ने बाँह धरी।
इन दोउन के झकझोरन में, गठ नाभि पितम्बर छूट परी।
तब दीपक कामिनि हाथ धर्‍यो इह कारन सुन्दरि हाथ जरी।

× × ×

पूछा न जीते जी कभी फुरकत का माजरा,
मरने के बाद कब्र पर आया वो दिल रुबा।

फूलों को जब चढ़ाने लगा पढ़ करके फातिहाँ,
मैने बहाने कब्र के चिल्ला के यूँ कहा,
मेरी लैली कहाँ मेरी लैंली कहाँ।

प्रकृति नटी का नव नृत्य क्षण क्षण में,
यंत्रारूढ़ प्राणियों को माया से नचा रहा।

मोह के कपाट में रात्रिन्दिव इंधन से,
काल उग्र भूतों को शस्य सम पचा रहा।

× × ×

प्रभु का वह अनन्य सेवक है, प्रभु की व्यापकता पहिचाने।
और विश्व की सेवा उनकी ही सेवा है, निश्चय जाने।
उसी विश्व सेवा हित समुचित तुम्हें कि तुम ही लंका जाओ।
मेरा कार्य निमित्त मात्र हो तुम भूमण्डल सुख पहुंचाओ।

प्रभु सन्मुख हैं कहाँ लखन हैं ? कहाँ सुकंठ विभीषण अंगद,
कहाँ सुषेण सदृश सज्जन हैं ? प्रभु... ... ...।

संजीवन वह पड़ी हुई है यह कैसी?अप्रिय क्यों अब ये साधन हैं?प्रभु...
नाथ ! परिस्थिति है यह कैसी, अंगों में क्यों बिषम जलन है? प्रभु...
सुन, संजीवन रख ही तन पर, परिचय दिया, दुखित अति मन है।
जिसकी वस्तु उसे देकर भी, भरत हो गये जीवन धन है॥

मारुति के वे जीवन धन हैं।
मारे वही, जिलाये वह ही, विधि-गति के अनुपम बंधन हैं।
मृत्यु सदृश तीखे जो पल में, वे अब जीवन के जीवन हैं।
भरत हो गये... ... ...॥

× × ×

पाय अनुसासन दुसासन को कोप धायो,
द्रुपद सुता की चीर गहे भोर भारी है।
भीषम करण द्रोण बैठे ब्रतधारी जहाँ,
कामिनी की ओर काहू नेक न निहारी है।
सुन के पुकार धायो द्वारकाते यदुराई,
बाढ़त दुकुल खैंचत भुज बलहारी है।
नारी बीच सारी है कि सारी बीच नारी है,
कि नारि ही की सारी है कि सारी ही की नारी है।

× × ×

परम प्रवीण वीर युद्ध में धुरीण,
पारथ की भारत में कीर्ति को बढ़ाऊँगो।

अरि दल दलन कर हरणि करि भूमि भार,
सुर नर मुनिन के दुख द्वन्द सब मिटऊँगो।

कुन्ती सुतन की लज्जा बचावन हित,
पारथ को रथ कोटि भाँति सो चलाऊँगो।
होगो यदि एक बाप को तो कोटिन्ह उपायन,
सो भारत के युद्ध में शस्त्र न उठाऊँगो।

पड़ी हार निष्प्राण, भूमि में मेघनाद के तन की क्षार,
और इधर श्री लक्ष्मण जो के उर पर पड़े विजय के हार।
सुना राम ने गद्गद् होकर उमगे आनन्दाश्रु महान,
रावण के घर घोर शोक ने विरचा विस्तृत अपना स्थान।

पग घुंघुरु बाँध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहिं हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीरा हो गई बावरी न्यात कहै कुल नासी रे।
बिष का प्याला राणा जो भेज्यो पीवत मीरा हाँसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अबिनासी रे।

फूट गये हीरा को बिकानी कनी हाट हाट,
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो।
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है,
रावन समेत वंश आसमान को गयो।
कहै कवि 'गंग' दुरजोधन से क्षत्रधारी,
तनक में फूटें ते गुमान वाको नैं गयो।
फूटे तें नरद उठि जात बाजी चौसर की,
आपस के फूटे कहो कौन को भलो भयो॥

बालि को सपूत कपि कुल पुरहूत रघुवीर,
जू को दूत धरि रूप बिकराल को।
जुद्ध मर्द गाढ़ो पाउं रोपि भयो ठाढ़ो,
सेनापति बल बाढ़ो रामचन्द भुवपाल को॥

कच्छप कहलि रह्यो कुण्डली टहलि रह्यो,
दिग्गज दहलि त्रास परो चक्र चाल को।

पाद् के धरत अतिभार के परत भयो,
एकई परत मिलि सपत पताल को ॥
बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को बासो।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सो हासो ॥
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी घर भाई।
बुरी कुलच्छनि नारि, सास घर बुरो जमाई ॥
बुरो पेट चण्डाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
गंग कहै अकब्बर सुनो सबसे बुरो है माँगनो ॥

बोले तब इस भाँति विभीषण, चिन्ता नहीं मुझे जो मारा,
अग्रज हो; पर तुमसे बढ़कर मुझे कुटुम्ब-देश-हित प्यारा।
उसकी रक्षा हेतु मुझे अब न्याय-पक्ष अपनाना होगा,
जिन्हें न लाना चाह रहा था, शरण उन्हीं को जाना होगा।

बैठी मैं दलान में कलान भरी बाल बाँकी,
आवत छलान की छमक कान में गई।
ज्यों ही मनमोहिनी मजे की मंजु मीसी दिए,
मन्द मन्द आय नेह फंद में फँसै गई।
ग्वाल कवि लोनी वह लंक लचकाय,
हाय जीन से उतर सुधर सोना दिखै गई ॥
चितवन चकोर की अनीसी दृग कोर की,
छोटी नथ मोर की मरोर मन लै गई ॥

वैद्य सुषेण यहाँ यदि आये, हो संजीवन जड़ी सहाय।
तो सम्भव है भ्राता लक्ष्मण का जीवन अब भी बच जाय।
कहने की थी देर, बढ़ चले उभय सिद्धि के हित हनुमान।
और आ गये दिन के पहिले उषा सदृश लक्ष्मण के प्रान ॥

बाल से ख्याल बड़े से विरोध, अगोचर नार से ना हँसिये।
अन्न से लाज अगिन्न से जोर, अजानत नीर में ना धँसिये ॥
बैल को नाथ घोड़े को लगाम, मतंग को अंकुश में कसिये।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, क्रूर तें दूर सदा बसिये ॥

विनत पवन-नन्दन मुंदरी ले लौटे सबके साथ हो गये,
किन्तु विकट सागर जब देखा सबके सहसा धैर्य खो गये।

अणिमा महिमा गरिमा लघिमा शाली केवल हनुमान थे,
कार्य-सिद्धि के साधक वे ही एक, बुद्धि बल के निधान थे।

विविध विधान के अनेक पकवान जेते,
होते हैं जहान मेरे जान सब सीठे हैं।
रसिक विहारी, फल सरस रसाल आदि,
तेऊ यह स्वाद पाइ सकल उबीठे हैं।
कन्द-मूल अधिक अतुल रुचिकारो सोऊ,
नेकहूं न इनके समान मोहिं दीठे हैं।
रचहूं न सीठे यों न दीठे न उबीठे बन्धु,
लखन कहो तो सत्य कैसे बेर मीठेहैं।

ब्रह्म के उपासी तप रासी सुख रासी बर,
बिपुल मुनीसन के आश्रम सिधायौं मैं।
कीन्हें सनमान तिन सहित विधान तऊ,
काहूं ठौर पेट भरि कबहूं न खायौं मैं।

अमृत समान शबरी के इन बेरनि में,
रसिक बिहारी मन-भायो स्वाद पायौं मैं।
अवध विहाय बन आयों जबते हो बन्धु,
तब ते बिचारो सत्य आज ही अघायौं मैं।

वैद्य की औषध खाय कछू न, करै सुनि संजम री सुनि तोसे,
तो जलपान कियो रसखानि, सुजीवन जानि लियो सुख मोसे।
ऐरि सुधामयि भागीरथी ! सब पथ्य कुपथ्य बनै तोहिं पोसे,
आक धतूर चबात फिरै बिष खात फिरै शिव तेरे भरोसे ।।

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके।

भारत लंका बीच संधिसी सिंधु-सेतु की छबि लहराई।
मनुज-दनुज आराध्य एक है संस्कृतियों का साध्य एक है।
यही दिखाने सागर तट पर महादेव की मूर्ति बनाई।
हम जैसे बानर लोगों से, मानस विद्युत के योगों से।

लंका की भौतिक विद्युत पर भाँति-भाँति की विजय दिखाई ।
किन्तु देह भौतिक थी आखिर, आकस्मिक दैत्यास्त्रों से घिर ।
संजीवन-इच्छुक संगर में, मूर्च्छित पड़ा लखन सा भाई ।।

भक्त प्रति पालक दैत्य बल घालक लज्जा,
है तिहारे हाथ आज वीर पारथ की ।
गहो दृढ़ डोरी हांथ माखन की न चोरी यहाँ,
रखनी है प्रतिज्ञा मोहि आर्य भव्य भारत की ।

पालो निज बैन राजिव नैन चतुराई सो,
सुन लो पै हाय एक बिनती दास भारत की ।
अपनी प्रतिज्ञा छोड़ धारोगे मुरारी शस्त्र,
यही है प्रतिज्ञा भीष्म बाल ब्रह्मचारी की ।।

भारत की वह नारी ।
कल थी वधू, आज माता सी, दिव्य देवियाँ हारी ।।
भोजन लेकर चली माण्डवी जहाँ भरत व्रतधारी ।
जीवन रक्षक कन्दमूल फल बस, सामग्री सारी ।।
आई उतर तपस्या भूपर नारी बन सुकुमारी ।
पर सुकुमारी अग्नि शिखा थी जगअग पावन-कारी ।।
तन पर दो खादी के टुकड़े चार चूड़ियां प्यारी ।
एक क्षत्र शासक की यह थी आधी देह दुलारी ।।
दोनों एक परन्तु बीच थी असि धारा वह भारी ।
चौदह वर्षों तक न भावना जिसने अन्य निहारी ।।

मूर्त अहं वह समझ रहा था अपने ही को जग-सर्वेश ।
स्वार्थ-सिद्धि के हेतु न हिचका वह देने में जग को क्लेश ।
प्रभु का नहीं किंतु प्रभुता का ग्राहक था वह भूप कठोर ।
सभी देश आतंकित उससे, सभी ओर था उसका जोर ।।

मरें सूम सरदार मरें वह कट्टर टट्टू,
मरें हठीली नारि मरें वह पुरुष निखट्टू ।
ब्राह्मण सो मरि जाय हाँथ लैं मदिरा प्यावैं,
पूत वही मर जाय जो कुल में दाग लगावे ।

बे निआउ राजा मरैं, नींद धड़ाधड़ सोइये,
बैंताल कहे बिक्रम सुनो इनके मरे न रोइये ।।

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा वस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन ।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूलकदम्बकी डारन।।

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जिन तनु दियो ताहि विसरायो ऐसो निमक हरामी ।
भरि भरि उदर विषय को धायौ, जैसे सूकर गामी ।।
हरिजन छोड़ हरी बिमुखन की निसदिन करत गुलामो ।
पापी कौन बड़ो है मोते सब पतितन में नामी ।
सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिवे श्रीपति स्वामो ।।

मन धीरज क्यौं न धरै ।
एक सहस नौ सं के ऊपर ऐसो जोग परै ।।
मेघनाद रावण कर बेटा पूरब जनम धरै ।
पूरब पछिम उत्तर दखिन चहुं दिशि राज करै ।।
सं० १४ में दल बिगड़े जहं तहँ काल परं ।
भविष्य पुराण वेद असगावं ऐसो ध्यान परै ।।

मूर्ति बनी करुणा सी सीता टप टप टप अश्रु गिराती ।
बैठ गई निश्चेष्ट धरा पर फिर से अपनी मृत्यु मनातीं ।।
छाते हैं आकाश देश पर नित्य-प्रति इतने अंगारे ।
मुझे भस्म करने को मुझ पर टूट न पड़ते कोई तारे ।।

मैं सब अनर्थों का जनक, माता हृदय का शूल हूं ।
रघुवंश का अंगार हूं, सब विग्रहों का मूल हूं ।।
मानो मही पर हो गया, मेरा अपरिमित भार है ।
मुझसे अभागे को सदा, धिक्कार है, धिक्कार है ।।

मेघनाद ने कसकर मारी सांग, कि जो थी जग-विख्यात ।
लक्ष्मण वपु के साथ-साथ ही गिरी भूमि पर काली रात ।।
थमा युद्ध, रावण दल-गरजा, मचा राम-दल हाहाकार ।
विकल हुआ उर रामचन्द्र का बिचलकर उठा शोक अपार ।।

हा प्रिय बन्धु ! उठो तुमको खो, रह न सकेंगे मेरे प्राण ।
यदि तुम गये गया सारा जग, चूल्हे जाय न्याय निर्माण ।।
नारी की क्या खोज, गंवाया मैं सब हो विधि हारा बन्धु ।

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है,
जमी तो जमी आसमाँ जल रहा है।
तुम्हें देखने को तो बाकी थी दुनिया,
हमारा यहाँ आशियाँ जल रहा है।
जिगर फुंक रहा है निकलते हैं आँसू,
बरसता हैं पानी मकाँ जल रहा है।

मरणोत्तर क्या बैर, बन्धु अब मेरा भी है रावण तात,
उसी भाँति की प्रेत क्रिया हो जैसा था वह जग विख्यात ।
कहा विभीषण ने, रावण की गुण-गाथा बहु भाँति बखान,
मंदोदरी आदि को सहृदय होकर दी सांत्वना महान ।

या लकुटी अरु कामरिया पुर राज तिहूंपुर को तजि डारौं ।
आठहुं सिद्धिनवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं ।
रसखानि कबौं इन आखिन सों ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर बारौं ।।

यह ही नहीं अनेक भाँति के सिद्ध उसे थे मायाचार ।
कभी अनल संचार करे तो कभी बहा दे जल की धार ।
कभी पवन का वेग बढ़ा दे कभी धूल के घन दे तान ।
कभी एक अणु से प्रकटा दे जारक मारक शक्ति महान ।

यह कह अस्त्र-शस्त्र सज्जित रथ लेकर वह आया मैदान ।
देख विभीषण विरथ रामको सोच हुए मनमें कुछ म्लान ।
हँसकर बोले राम विजय का रथ तो है कुछ और अनूप ।
शौर्य धैर्य चक्रों पर चलता भक्ति सारथी के अनुरूप ।।

राम ब्रह्म हों, राम विष्णु हों, किन्तु राम नर तो हैं निश्चय ।
युग द्रष्टा ही नहीं आप ही युगकर्ता भी जो निःसंशय ।
ग्राम-वृद्ध बालों से कहते राम बनो, रावण मत होना ।
राम राज्य के अवयव रहकर, जगमग कर दो कोना-कोना ।

रघुपति ! जो न इन्द्रजीत मारौं ।
तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ जौ न प्रतिज्ञा पारौं ।।
यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू, एकहिं बान निवारौं ।
सपथ राम परताप तिहारे, खण्ड-खण्ड करि डारौं ।।
कुंभकरन, दससीस बीसभुज, दानव-दलहि बिदारौं ।
तबै 'सूर' संधान सफल हौं, रिपु कौ सीस उतारौं ।।

रे मन मूरख जनम गँवायो ।
करि अभिमान विषय रस राच्यो श्याम शरण नहिं आयो ।
यह संसार फूल सेमर का सुन्दर देख लुभायो ।
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि हाथ कुछ नहिं आयो ।
कहा भयो अबके मन सोचे पहिले नाहिं कमायो ।
कहत सूर भगवंत भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछतायो ।

लक्ष्मण ने तब उस दुष्टा को नाक कान से किया विहीन ।
निर्लज्जा की नाक बृथा है कान बृथा यदि सीख सुनीन ।
अधिक कुरूपा होकर कुटिला भाग चली करती चीत्कार ।
स्वतः सुधरना दूर बिगाड़े उसने राक्षस वृन्द उभार ।

लो देखो जा रहा है जिन्दगी का काफला,
हँसता हुआ आया था रोता हुआ चला ।
करने आए थे दिल आबाद अपना,
तेरी महफिल से चले बरबाद होकर ।

जिन्हें थी तलास मूसखों की,
लौट चले हैं आज बरबाद होकर ।
आज हुश्न के रंगीन आशियाओं,
जालिम इश्क ने लूटा शैयाद होकर ।

एक सीने से लगाकर बरबादियों को,
खुश है आज आबाद होकर ।
एक डोली में बैठी है सुहाग लेकर,
एक जाती है जेरे जमीन देखो ।
कमखाब के पहने लेबास एक ने,
और एक है खाक नसीन देखो ।

जिसके लाश पर कोई न रोए आकर,
यही है वह महजबीन देखो।

एक टहनी के दोनों हैं फूल लेकिन,
एक है मुरझाया एक हसीन देखो।

लोक तिहुं जारौं सातों सागर सुखाय डारौं,
गिरिन दहाय डारौं भूमि उलटाऊं मैं।

रंच में बिदारि डारौं दसों दिगपालन को,
खगन समेत ससि सूरहि गिराऊं मैं।।

नभ से पताल लेके कितहू कहूँ जो नेक,
'रसिक बिहारी' प्रान प्यारी सुधि पाऊं मैं।

जानकी न लाऊं तौ पै छत्री न कहाऊं,
राम नाम पलटाऊं धनु बान न उठाऊं मैं।।

लिखो लेख रेख निज कर्म को मिटै न मूढ़,
चाहैं चित्त आवैं सो उपाव लाख कर ले।

भाग्य बिन कोड़ी एक मिलें ना, उधार यार,
याही तें धरम को मरम हियै धर ले।

देख देख औरन की साहिबी करै क्यों,
दुःख पूरब कर्म को बिचार अनुसर ले।

'सोहन' कहत भरे सागर असंख्य तोपें,
तू तो तेरे बासन समान पानी भर ले।।

शोकाकुल सुग्रीव विभीषण, हनूमान अंगद चुपचाप
देख रहे थे व्यथा व्यथित श्री रामचन्द्र का करुण विलाप।
कहा विभीषण ने तब प्रभुवर ! जब तक साँसा तबतक आस,
बिपत क्रिया ही से कटती है, रोने से तो बढ़ती त्रास।

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटो अग जीव जतीन को छूटी तटी।
अघ-ओघ को बेरी कटी विकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी।
चहुं ओरनि नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी वन पंचबटी।।

शक्ति सिंहिका और लंकिनी से निज दुर्ग सुरक्षित कर,
सुखी किये उसने निज सैनिक, दिया देश सोने से भर।

यज्ञ और तपबल से उसने तुष्ट किया सर्जन संहार,
इन दोनों के चमत्कार से संरक्षण पर पड़े प्रहार।

संतो धोखा कासूं कहिए।
गुण में निर्गुण निर्गुण में गुण है, बाट छाँड़ि क्यों बहिए।
अजय अमरकं कथैं सब कोई अलख न कथणां गाई।
नाति सरूप वरण नहिं जाके, घट घट रह्यो समाई।
अंड ब्रह्माण्ड कथै सब कोई, वाके आदि अरु अन्त न होई।
अंड ब्रह्माण्ड छाणि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई।

सुनि रन घायल लखन परे हैं।
तात जाहु कपि संग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलक पेस पूरे जनु बिधि बश सुढर ढरे हैं।
अम्ब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।

सीता को हरन भयो लङ्का को जरन भयो,
रावन मरन भयो सती के सराप तें।
पांडव बरन भयो द्रुपद सुता को,
सत्यभामा को डरन भयो नारद मिलाप तें॥

राम बनवास भयो सीता अविसास भयो,
द्वारिका बिनाश भयो योगी के दुराप तें।
बड़े बड़े राना केते संकट सहाना नेक,
'सोहन' बखाना एक कर्म के प्रताप तें॥

श्री मुख आपुन करत बड़ाई।
तूँ कपि आज भरथ को ठाहर, जिहिं मिलि बिपति बटाई॥
लछिमन हेत मूरि लै आयौ, लाँघत अगनित घाटी।
दसहूँ दिसा भयौ हम कारन बौछाहर की टाटी॥
तूँ सेवक, स्वामी तोही बल, तो तजि और न मेरें।
निधरक भए, मिटी दुचिताई, सोवत पहरें तेरें॥

इतनौं सुनत दौरि पद टेके अरु मनहीं मन फूल्यो।
पिता मरन कौ दुःख हमारौ तोही ते सब भूल्यौ।
जो कछु करी सुप्रताप तुम्हारें, हौं का करिबे लायक।
'सूर' सेवकहि इती बड़ाई, तुम त्रिभुवन के नायक॥

राम के प्रति हनुमान् जी की प्रार्थना—

रघुपति ! मन संदेह न कीजें।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजें।
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि-दिसि बाढ़ैं ताम।
कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न, राम।
कहौ तौ कालहि खंड-खंड करि, टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तो मृत्युहि मारि डारि कैं, खोदि पतालहि पाटौं।

कहौ तौ चंद्रहि लै अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं।
कहौ तौ पैंठि सुधा के सागर, जल समस्त मैं घोरौं।।
श्री रघुबर ! मोसौ जन जाके, ताहि कहा सँकराई।
'सूरदास' मिथ्या नहिं भाषत, मोहि रघुनाथ-दुहाई।।

हौं प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि पार लै आऊँ।।
अबहीं जम्बू द्वीप इहाँ तैं, लै लंका पहुंचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपिदल, छिनक बिलंब न लाऊँ।।
अब आवैं रघुबीर जीति दल, तौ हनुमंत कहाऊँ।
'सूरदास' सुभपुरी अजोध्या, राघव सुबस बसाऊँ।।

साधु साधु साधक धीर धर्म धन धन्य राम।
कह लिया भगवती ने राघव का हस्तथाम।
देखा राम ने सामने श्री दुर्गा भास्वर।
वाम पद असुर स्कन्ध पर रहा दक्षिण हर पर।
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दस, विविध अस्त्रसज्जित।
मन्दस्मित मुख लख हुई विश्व की श्री लज्जित।

हैं दक्षिण में लक्ष्मी सरस्वती वाम भाग।
दक्षिण गणेश कार्तिक बाँम रण रंग राग।
मस्तक पर शंकर पद पद्मों पर श्रद्धा भर।
श्री राघव हुत प्रणत मन्द स्वर वन्दन कर।
होगी जय होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

ऐसी प्रीति मची बृन्दबन गोपिन नाच नचाई।
'सूर' क्रूर यहि लायक नाहीं केहि विधि करौं बड़ाई।

सिकन्दर ने कहा सुकरात से क्या तुमको लाऊँगा।
फतह कर हिन्द को वापस मैं जब ईरान आऊँगा।
सुनो शाहे सिकन्दर यदि फतेह भारत को तुम जाना।
हमारे वास्ते भारत से एक ज्ञानी गुरु लाना।

लाना अगर ब्रेली सुनो राजन कमल गीता।
नृपति तुम भूल मत जाना कहानी राम और सीता।
कहा सुकरात ने फिर बाँस की एक बाँसुरी लाना।
बजाकर हम भी देखेंगे कि कैसा स्वर है मस्ताना।

हाँथ में कमण्डल ले करके गंगा जल भी भर लाना।
जिसे पी करके ऋषियों ने है गहरे तत्व को जाना।
हमारी ये चीजें नृपति जब भारत से लावोगे।
सभी द्वीपों के नर नामी शाहनशाह कहावोगे॥

सीलै सिंगार सजी अति सुन्दर, रैन रमी सो पिया संग रानी।
ऊठ प्रभात मुखाम्बुज धोवत, टीकि खिसी हथेरी लिपटानी॥
ता मध चित्र हतो गजराज अजीविक बूबक काहू पिछानी।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, डूबत हाथि हथेरो के पानी॥

शुक्र है लैला मुकद्दर रंग दिखलाता है क्या ?
आदमी क्या सोचता है और हो जाता है क्या ?
जुज्म है फाते अमल को यहाँ पाना है क्या ?
आदमी दुनियाँ में आकर और ले जाता है क्या।
बुल बुला पानी का है पर जोश में आता है क्या ?
आदमी दम पर हवा के फूलता जाता है क्या॥

सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँव उपानह को नहीं सामा।
द्वार खड्यो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
दीन दयाल्नु को पूछत नाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

सहिदानी सी, चिन्ह रूप सी, यह मुद्रिका सती को देना,
लंका का कल्याण मार्ग भी समझ भली विधि मन में लेना।

फिर बतलाना राह मुझे वह सबको हो सब बिध सुखदाई,
तुम्हीं कार्य यह कर सकते हो, तुम में ही यह शक्ति सुहाई।

हाँथ पै हाँथ धरो जबही तब चौंक उठी वृषभानु दुलारी।
श्याम सिखे छल छंद बड़ो तुम काहे को वेष बनावत नारी।
देखन को तोहिं प्रेम बढ़ो तब ही हम रूप कियो लिलहारी।
पद्माकर यों वृषमान कहे हम हैं हरि को पग धोवन हारी।

हाँथी के दाँत के खिलौना बनैं भाँति भाँति,
बाघन की खाल तपसीन मन भाई है।
मृगन की खालन को ओढ़त हैं योगी-यती,
छेरी की खाल थोरा पानी भर लाई है॥
साँबर की खालन को बाँधत सिपाही लोग,
गैंडा की खाल राजा रायन सुहाई है।
कहै कवि 'दयाराम' राम के भजन बिन,
मानुष की खाल कछु काम नहिं आई है।

हक से नाहक़ में जुदा था मुझे मालूम न था।
शक्ले इन्सा में खुदा है हमें मालूम न था।
मतलए दिल पै मेरे छाया था जंगारे खुदी।
चाँद बदली में छिपा है मुझे मालूम न था।
बावजूदे कि मुझे दए तेरा नहनो अक़बर।
सफहे मसहफ पे लिखा था मुझे मालूम न था।
होके सुल्ताने हकीकत इसी आबो गिल में।
दर बदर मिस्ले गदा था मुझे मालूम न था॥

सबसे ऊपर प्रेम सगाई।
दुर्योधन को मेवा त्यागो, साग विदुर घर खाई।
जूठे फल सबरी के खाये बहु विधि प्रेम लगाई।
प्रेम के वस अर्जुन रथ हांके आप बने हरि नाई।
प्रेम के वस नृप सेवा कीन्ही भूल गये ठकुराई।
राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हें तामें जूठ उठाई।

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोना होय।

गगन मंडल पै सेज पिया की किस विधि मिलना होय।
घायल की गति घायल जाने की जेहि लागो होय।
जौहरि की गति जौहरि जाने कि जिन जौहरि होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं वैद मिला नहिं कोय।
मीरा के प्रभु मिटै पीर जब वैद सँवलिया होय॥
है अकबर मैं तोहिं समझावहुं मन में ध्यान करै,
चैत मास तिथि सुष्टमी दिन बुधवार पड़े।
शान्ति निकेतन होइहैं म्लेच्छन दिल्ली छत्र फ़िरैं,
सं० १६४८ में आनन नाम परै॥
सोना फल पृथ्वी पर फलै राजा राज्य करै,
असी बरस तक सतजुग व्यापै धर्म की बेलि बढ़े।
'सूरदास' हरि की माया यह टारे नाहिं टरैं॥

हम केवल दुष्कृत्य-विरोधी, व्यक्ति जाति से हमें न बैर,
संयोजक हम, कभी न देते बृथा ध्वंस के पथ पर पैर।
किन्तु न्याय अधिकार हमारा, उसपर जो करता है वार,
ढाल हमारी तन कर बनती उसके लिए तीक्ष्ण तलवार॥
त्रेतायुग का रामराज्य वह, कलियुग का आलोक दिखाये,
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन-स्वप्न सत्य बन जाये।
भारत की सीता-समृद्धि को रावणत्व से मुक्त कराकर,
खिल जाये रामत्व मनुज का, ऐसा योग रचें विश्वेश्वर।
राम चरित के साथ ही, राम राज्य के तत्व।
जन मनमें अक्षय रखें, अपना अमर महत्व॥

ज्ञात विभीषण को रहस्य था, दिया उन्होंने वह संकेत,
हनूमान अंगद यज्ञ स्थल गये, छोड़कर रण का खेत।
यज्ञ और तप शुभ हैं फिर भी यदि वे अशुभ-सहायक आप,
तो उनका भी ध्वंस, नीति में कभी न माना जाता पाप।

ज्ञान घटै कोई मूढ़ की संगत, ध्यान घटै बिन धीरज लाये।
प्रीति घटै परदेस बसै, अरु भाव घटै नित ही नित जाये।
सोच घटैं कोई साधु की संगत रोग घटैं कुछ ओखद खाये।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, पाप कटै हरि के गुण गाये॥



भारतीय युग पुरुष व अद्भुत कथामृत

१—रामायण में कथित अंधमुनि का वास्तविक नाम सान्त्वन था। उनकी पत्नी का नाम ज्ञानवती था। पुत्र का नाम विद्या श्रवण कुमार के नाम से विख्यात थे।

२—विवाह प्रथा का शुभारम्भ :—

वैदिक ग्रन्थों में विवाह पद्धति का कोई संकेत नहीं प्राप्त होता। उद्दालक के पिता पुत्र श्वेत केतु ने सर्व प्रथम इस प्रकार के असंयमित जीवन के विरोध में स्वर ऊँचा किया और नियम बनाया कि यदि स्त्री पुरुष के प्रति या पुरुष स्त्री के प्रति असत्य होगा तो वह भयंकर अपराध या पाप का अपराधी होगा। इस विषय में म० भा० के सभा पर्व में भी देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त ऋषि दीर्घतमा ने भी विवाह प्रथा के निमित्त श्वेत केतु द्वारा निर्धारित पद्धति का स्वागत किया है।

—दे० धर्म शास्त्र का इतिहास।

३—राधा बृषभान की पुत्री थी। पति रायण वैश्य था जो यशोदा का भाई था। राधा की माँ का नाम कीरति था। राधा के भाई का नाम दामा जी था।

४—तन्त्रवार्तिकी पृष्ठ २०९ पर उल्लिखित है कि कई द्रौपदियाँ थीं अथवा कुन्ती सभी पुत्रों का बधुओं को द्रौपदी ही कह कर सम्बोधित करती थी। तन्त्रवार्तिकी-कुमारिल भट्ट।

५—कृष्ण के दो प्रमुख गुरु थे—एक उपमन्यु और दूसरे संदीपन। कृष्ण ने काशी और उज्जैन में शिक्षा ग्रहण की थी।

म० भा० अनु० १४।४५।६३

६—रावण निम्न विजेताओं से पराभूत हुआ था। यथा—
१. सहस्रार्जुन २. बलि ३. बाली ४. बाण ५. राम ६. मान्धाता ७. पुलत्स्य ८. कपिल मुनि ९. विद्याधर (हनुमान के पूर्वज या पिता) हनुमान (विष्णु पुराण, महाभारत व रामायण मीमांसा ग्रन्थ)।

७—गुरु की महिमा कम न हो जाय इस कारण राम ने अपने अवतार होने का संकेत अपने गुरु वशिष्ठ को नहीं बताया।

—योग वशिष्ठ

८—शिव हनुमान युद्ध—बीरमणि ने राम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को बाँध रखा था जिसे छुड़ाने के लिए हनुमान गए। शिव हनुमान में युद्ध छिड़ गया और शिव हनुमान द्वारा पराजित हो गए।

९—इन्द्र-गरुड़ युद्ध :—

एक बार पक्षियों के सरदार खग श्रेष्ठ गरुड़ को अमृत का अपहरण करने के लिए जाते देख इन्द्र ने रोष में आकर उनके ऊपर बज्र से आघात कर दिया।

विहंग प्रवर गरुड़ ने उस युद्ध में बज्राहत होकर भी हँसते हुए मधुर वाणी में इन्द्र से कहा—देवराज! जिनकी हड्डी से यह बज्र बना है, उन महर्षि का सम्मान मैं अवश्य करूँगा। तुम्हारे बज्र के प्रहार से मेरे शरीर में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई है। ऐसा कहकर पक्षिराज ने अपना एक पंख गिरा दिया और इनमें मित्रता हो गई।

[१०—हनुमान जी का गर्व-सर्व संहार :—

भगवान श्रीरामचन्द्र जब समुद्र पर सेतु बाँध रहे थे, तब विघ्न निवारणार्थ पहले उन्होंने गणेशजी की स्थापना कर नवग्रहों की नौ प्रतिमाएँ नल के हाथों स्थापित करायी। तत्पश्चात उनका विचार सागर-संयोग पर एक अपने नाम से शिवलिंग स्थापित कराने का हुआ। इसके लिये हनुमान जी को बुलाकर कहा—मुहूर्त के भीतर काशी जाकर भगवान शंकर से लिंग माँगकर लाओ। पर देखना, मुहूर्त न टलने पाये।' हनुमान जी क्षण भर में काशी पहुंच गये। भगवान शंकर ने कहा—मैं पहले से ही दक्षिण जाने के विचार में था; एक तो श्रीराम के तथा दूसरे अपने नाम पर स्थापित करने के लिए इन दो लिंगों को ले चलो इस पर हनुमान जी को अपनी महत्ता तथा तीव्रगामिता का थोड़ा सा गर्वाभास हो आया।

इस पर भगवान को अपने भक्त हनुमान की अहं भाव की बात मालूम हो गई। उन्होंने सुग्रीवादि का बुलाया और कहा—अब मुहूर्त बीतना ही चाहता है, अतएव बालुकामय लिंग को ही स्थापना किये देता हूं। यों कहकर मुनियों को सम्मति से उन्हीं के बीच बैठकर विधि-विधान से उस बालुकामय लिंग की स्थापना कर दी।

भगवान से अभिपूजित होकर ऋषिगण अपने घर चले गये। रास्ते में उनकी हनुमान जी से भेंट हो गई। उन्होंने मुनियों से पूछा, महाराज! आप लोगों की किसने पूजा की है? उन्होंने कहा—श्री राघवेन्द्र ने शिवलिंग की प्रतिष्ठा की है, उन्होंने ही हमारी दक्षिणा दान-मानादि से पूजा की है, अब हनुमान जी को भगवान की मायाबश क्रोध आया। वे सोचने लगे—'देखो! श्रीराम ने व्यर्थ का श्रम कराकर मेरे साथ यह कैसा व्यवहार किया है। दूसरे ही क्षण वे प्रभु के पास पहुंच गए और कहने लगे क्या लंका जाकर सीता का पता लगा आने का यही इनाम है? जो काशी भेजकर लिंग मंगा मेरा उपहास किया जा रहा है? यदि आपके मन में यही बात थी तो व्यर्थ का मेरे द्वारा श्रम क्यों कराया?

दयामय भगवान ने बड़ी शान्ति से कहा—पवन-नन्दन! तुम बिलकुल ठीक ही तो कहते हो। क्या हुआ? तुम मेरे द्वारा स्थापित इस बालुकामय लिंग को उखाड़ डालो। मैं अभी तुम्हारे लाये लिङ्ग को स्थापित कर दूं। 'बहुत ठीक' कहकर अपनी पूंछ में लपेट कर हनुमान जी ने उस लिङ्ग को बड़े जोरों से खींचा। पर आश्चर्य-लिङ्ग का उखड़ना या हिलना डुलना तो दूर की बात है, वह टस से मस तक न हुआ, उलटे हनुमान जी की पूंछ ही टूट गई। बीरशिरोमणि हनुमान जी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वानर सब जोरों से हँस पड़े। स्वस्थ होने पर हनुमान जी सर्वदा के लिए गर्वहीन हो गये। वे प्रभु के चरणों पर गिर कर नमस्कार किये और क्षमा माँगी। प्रभु को क्या था। क्षमा तो पहले ही से दी हुई थी। भक्त में भयंकर रोग उत्पन्न होते न होते दूर कर दिया। तत्पश्चात विधि पूर्वक अपने स्थापित लिङ्ग के उत्तर में

विश्वनाथ लिङ्ग के नाम से उन्होंने हनुमान जी द्वारा लाये गये लिङ्गों की स्थापना कराई और वर दिया—कोई यदि पहले हनुमत्प्रतिष्ठित विश्वनाथ लिङ्ग की चर्चा न कर मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर लिङ्ग को पूजा करेगा तो उसकी पूजा व्यर्थ होगी।

अर्जुन-कृष्ण युद्ध :—

एक बार महर्षि गालव जब प्रातः सूर्यार्घ्य प्रदान कर रहे थे, उनकी अञ्जलि में आकाश मार्ग से जाते हुए चित्रसेन गंधर्व की थूकी हुई पीक गिर पड़ी। उन्होंने जाकर इस घटना की श्रीकृष्ण से फरियाद की। कृष्ण ने २४ घण्टे के भीतर चित्रसेन का वध करने की प्रतिज्ञा ठान ली।

गालव जी की भेंट नारद जी से हो गई। श्री कृष्ण को उदास देखकर नारद जी ने पूछा—भगवन ! आप इतना उदास क्यों हैं ? इस पर श्रीकृष्ण ने २४ घण्टे के भीतर चित्रसेन के वध करने की प्रतिज्ञा सुनाई। यह सुनकर नारद जी अविलम्ब चित्रसेन के पास जा पहुंचे। नारद जी ने चित्रसेन के बध करने की सब कथा सुनाई। नारद जी ने कहा—तुम्हारे बचने का केवल एक ही उपाय है। आज आधी रात को यमुना तट पर एक स्त्री आयेगी। उस समय उसे देखकर तुम ऊँचे स्वर में विलाप करते रहना। जब तक वह तुम्हारे कष्ट को दूर करने की प्रतिज्ञा न कर ले, तब तक तुम अपने कष्ट का कारण भूलकर भी मत बताना। नारद जी इसके विपरीत सुभद्रा के पास पहुंच गये। सुभद्रा नारद के कथन के बाद यमुना में स्नान करने गईं। उन्हें किसी के रोने की आवाज सुनाई पड़ी। उन्होंने चित्रसेन को रोते सुना। उन्होने रोने का कारण पूछा पर उसने बिना प्रतिज्ञा किए नहीं बतलाना चाहा। अन्ततः सुभद्रा ने उसकी रक्षा की प्रतिज्ञा की। घर आकर सुभद्रा ने सब बातें अर्जुन को कह सुनाईं। अर्जुन का चित्रसेन मित्र था। अर्जुन ने सुभद्रा को सान्त्वना दी और कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। नारद जी ने द्वारका जाकर ये सब बातें श्रीकृष्ण से कहा कि महाराज ! अर्जुन ने चित्रसेन को आश्रय दे रक्खा है, इसलिये आप सोच विचार कर ही युद्ध के लिये चलें। भगवान

ने कहा—'नारद जी !' एक बार आप मेरी ओर से अर्जुन को समझाकर लौटाने की चेष्टा करें। अब देवर्षि पुनः दौड़े हुए द्वारका से इन्द्रप्रस्थ पहुंचे। अर्जुन ने सब बातें सुनकर साफ कह दिया—यद्यपि मैं सब प्रकार से श्री कृष्ण की ही शरण हूं, तथापि अब तो उनके दिये हुये उपदेश से कभी विमुख न होने की बात पर दृढ़ हूँ। दौड़कर अब देवर्षि द्वारिका आये और ज्यों-का-त्यों अर्जुन का वृत्तान्त कह सुनाया। दोनों महारथियों में युद्ध की तैयारी हो गई। यादव और पाण्डव सेना युद्ध क्षेत्र में आमने-सामने उपस्थित हो गयी। युद्ध छिड़ गया। घमासान लड़ाई होने लगी। घनघोर युद्ध को देखकर भगवान शंकर श्रीकृष्ण के पास पहुंचे। शंकर ने कहा—भगवान ! यह क्या हो रहा है ? अब तो इस लीला को समाप्त करें। प्रभु युद्ध से बिरत हो गये। अर्जुन को गले लगाकर उन्होंने युद्धश्रम से मुक्त किया। चित्रसेन को अभय किया। पर गालव को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा मैं कृष्ण, अर्जुन, सुभद्रा समेत चित्रसेन को जला डालता हूँ। इस पर सुभद्रा बोल उठीं—मैं यदि कृष्ण की भक्त होऊँ और अर्जुन के प्रति मेरा पातिव्रत्य पूर्ण हो तो यह जल ऋषि के हाथ से पृथ्वी पर गिरे। ऐसा ही हुआ। गालव ने लज्जित होकर प्रभु को नमस्कार किया और अपने आश्रम को लौट गये।

अर्जुन का अभिमान-भंग :—

कर्ण का चन्दन दान—

यह प्रसिद्ध है कि कर्ण महादानी महायोद्धा और महागुरु भक्त था। अर्जुन को भी अपने गुणों पर बड़ा गर्व था। श्रीकृष्ण कर्ण की बराबर प्रशंसा किया करते थे। अर्जुन कृष्ण के इस प्रकार के व्यवहार को अच्छा नहीं समझते थे। भगवान चुप थे। अन्त में इसकी परीक्षा का समय आ ही गया। एक दिन एक ब्राह्मण अर्जुन के दरवाजे पर पहुंचा और कहने लगा, 'धनंजय' ! सुना है आपके दरवाजे से कोई भी याचक लौट कर नहीं जाता। उसने कहा कि मेरी स्त्री का देहावसान हो गया है और उसने मरते समय मुझसे कहा था कि मेरा दाह संस्कार चन्दन काठ से ही

करना। क्या आप इतने चन्दन की लकड़ियों का प्रबन्ध कर सकेंगे? क्यों नहीं। उन्होंने कोठारी को बुलाकर कहा कि इन्हें तुरन्त पच्चीस मन चन्दन की लकड़ी तौल दो। बाजार में इतनी चन्दन की लकड़ी न पाने पर वह अर्जुन के पास आया और कहने लगा कि महाराज, चन्दन की लकड़ी का प्रबन्ध सर्वथा असम्भव है। अब वह ब्राह्मण कर्ण के यहाँ पहुंचा। वहाँ भी इसका पूरा प्रबन्ध न हो सका। ब्राह्मण ने कहा – महाराज, मैं निराश होकर वापस जाऊँ। कर्ण ने कहा-- महाराज! मैं अभी काष्ठ का प्रबन्ध कर देता हूं। देखते-देखते कर्ण ने अपने महल में लगे चन्दन के खम्भे निकाल उसको दे दिया। महल गिर गया। शाम को श्रीकृष्ण और अर्जुन टहलने को निकले, देखा कि एक ब्राह्मण श्मशान पर कीर्तन कर रहा है। पूछने पर उसने कहा कि कर्ण को बार-बार धन्यवाद है जिसने मेरे संकट को दूर किया। जिसने इसके लिए चन्दन काठ के खम्भे निकाल कर सोने को महल को ढहा दिया। अब श्रीकृष्ण अर्जुन की ओर देखने लगे और बोले—'भाई' चन्दन के खम्भे तो तुम्हारे महल में भी थे, पर तुम्हें उनकी याद नहीं आई। यह सुनकर अर्जुन को बड़ी लज्जा आई।

नारद का अभिमान भंग—

एक बार श्री नारद जी के मन में यह दर्प हुआ कि मेरे समान इस त्रिलोकी में कोई संगीतज्ञ नहीं। इसी बीच उन्होंने मार्ग में कुछ दिव्य स्त्री पुरुषों को देखा जो घायल पड़े थे और उनके विविध अंग कटे हुए थे। नारद के पूछने पर उन देवियों ने निवेदन किया हम सभी राग रागिनियाँ हैं। किन्तु आजकल नारद नाम का एक संगीतानभिज्ञ व्यक्ति दिन रात राग रागिनियों का अलाप करता है, जिससे हम लोगों का अंग भंग हो गया है। नारद जी ने जब अपने संगीतानभिज्ञता की बात सुनी, तब वे बड़े दुखी हुए। जब वे भगवद्धाम को पहुंचे, तो उनको उदास देखकर कारण पूछा। नारद जी ने महादेव जी से सारी बातें कहीं, तब भगवान ने उत्तर दिया—मैं ठीक ढंग से राग-रागिनियों का अलाप करूँ तो निस्संदेह वे सभी अङ्गों से पूर्ण हो जायँगी, पर मेरे संगीत का श्रोता कोई उत्तम अधिकारी मिलना चाहिए। जो हो, उन्होंने भगवान शंकर

से ही उत्तम संगीत श्रोता चुनने की प्रार्थना की। उन्होंने भगवान नारायण का नाम निर्देश किया। प्रभु ने भी यह बात मान ली। संगीत समारोह आरम्भ हुआ। महादेव जी के राग अलापते ही उनके अंग पूरे हो गये। नारद जी का अहंकार दूर हो गया।

इन्द्र का गर्व-भङ्ग—

शचीपति इन्द्र कोई साधारण व्यक्ति नहीं, एक-एक मन्वन्तर पर्यन्त रहने वाले स्वर्ग के अधिपति हैं। इन्द्र के गर्व भंग की अनेक कथाएं हैं। दुर्वासा ने शाप देकर स्वर्ग को श्रीविहीन किया, वृत्रासुर, विश्वरूप, नमुचि आदि दैत्यों को मारने पर बार-बार ब्रह्म हत्या लगी आदि आदि! इस प्रकार इनके गर्व भञ्जन की अनेकानेक कथायें हैं? तथापि ब्रह्मवैवर्त पुराण में इनके गर्वापहार की एक विचित्र कथा है।

एक बार इन्द्र ने एक बड़ा विशाल प्रासाद बनवाना आरम्भ किया। इसके बनवाने हेतु विश्वकर्मा को पूरे सौ वर्ष तक छुट्टी नहीं दी विश्वकर्मा जी बहुत घबड़ाये। वे ब्रह्मा जी की शरण गये। ब्रह्मा जी ने भगवान से प्रार्थना की। भगवान एक ब्राह्मण बालक का रूप धारण करके इन्द्र के पास पहुंचे और पूछने लगे—देवेन्द्र! मैं आपके अद्भुत भवन निर्माण की बात सुनकर यहाँ आया हूं। मैं जानना चाहता हूं इस भवन को कितने विश्वकर्मा मिलकर बना रहे हैं, और कब तक यह तैयार हो जायगा? इन्द्र बोले—बड़े आश्चर्य की बात है। क्या विश्वकर्मा भी अनेक होते हैं, जो तुम ऐसी बातें कर रहे हो?

इस तरह इन्द्र और बटु में संवाद चल ही रहा था कि वहाँ दो सौ गज लम्बा-चौड़ा एक चींटों का विशाल समुदाय दिखाई पड़ा। उन्हें देखते ही बटु को हँसी आ गई। इन्द्र ने उनके हँसी का कारण पूछा। बटु ने कहा—हंसता इसलिये हूँ कि यहाँ जो ये चींटें दिखलाई पड़ रहे हैं वे सब कभी इन्द्र हो चुके हैं। किन्तु कर्मानुसार इन्हें अब चींटों की योनि प्राप्त हुई है। इसी समय वहाँ एक तिलक लगाये महात्मा आ पहुंचे। बटु ने महात्मा से पूछा—आपका नाम क्या है? आपके मस्तक पर यह चटाई क्यों है।

तथा आपके वक्षस्थल पर यह लोम चक्र कैसा है ? आगन्तुक मुनि ने कहा—थोड़ी सी आयु होने के कारण मैंने न कहीं घर बनाया न विवाह किया, और न कोई जिविका ही खोजी। लोग मुझे वक्ष स्थल के लोमचक्रों के कारण लोमश कहा करते हैं। सभी मृत्यु के अधीन हैं। भक्ति ही सर्वोपरि है।

दुर्लभं श्री हरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी।
स्वप्नवत सर्वमैश्वर्यं सद्भक्ति व्यवधायकम्।

यों कहकर लोमश जी अन्यत्र चले गये। बालक भी वहीं अन्तर्धान हो गया। इन्द्र का तो होश ही ठंढा हो गया। उन्होंने सोचा मुझे कितने दिन रहना है। विरक्त होकर बनस्थली की ओर चल पड़े। बाद में बृहस्पति जी ने उन्हें समझा-बुझाकर पुनः राज्य कार्य में नियुक्त किया।

श्री मारुति गर्व-भङ्गः—

हनुमान जी को लंका दहन, सीतान्वेषण, रावण मद मर्दन आदि कार्यों के करने के बाद कुछ गर्व हो गया। भगवान इसे ताड़ गये। हनुमान जी बड़े बेग से जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें प्यास लग गयी। उन्होने एक मुनि को देखा उन्होंने मुनि से कहा—मुने ! मैं सीतान्वेषण का कार्य करके लौट रहा हूँ। मुझे प्यास लगी है, थोड़ा जल पीने के लिए दें या जलाशय का पता बता दें। मुनि ने उन्हें अपनो अंगुली से इशारा करके जलाशय की ओर इशारा किया। हनुमान जी सीता जी द्वारा दिए गए चूड़ामणि मुद्रिका एवं ब्रह्मा जी द्वारा दिया हुआ एक पत्र सब मुनि जी के पास रखकर जल पीने चले गये। मुनि के आश्रम में अचानक एक बन्दर आकर हनुमान जी की सभी वस्तुओं को मुनि के कमण्डलु में डाल दिया। हनुमान जी ने लौट कर आने पर मुनि से अपनो वस्तुओं को मांगा। मुनि ने संकेत से कमण्डलु की ओर निर्देश किया। हनुमान जी को कमण्डलु में रामाङ्कित हजारों मुद्रिकायें उसी तरह की दिखाई पड़ीं। हनुमान आश्चर्य चकित होकर पूछें कि ये सब मुद्रिकायें कहाँ से मिलीं। इनमें कौन सी मेरी मुद्रिका है ? मुनि ने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामावतार होता है और सीता हरण

के पश्चात हनुमान जी सीता का पता लगाकर लौटते हैं तब-तब शोध मद्रिका यहीं छोड़ जाते हैं। बस, हनुमान जी का गर्व गल गया। उन्होंने पूछा—मुने! कितने राघव यहाँ आये हैं? मुनि ने कहा—यह तो मुद्रिका की गणनाओं से हो पता लग सकता है। हनुमान जी ने देखा कि उन मुद्रिकाओं का कोई अन्त ही नहीं। उन्होंने सोचा कि अनगिनत लोगों ने ऐसे कार्य कर रक्खे हैं। मेरी क्या गणना। वहाँ से चकित होकर प्रभु के पास आए। अत्यन्त डरते हुये उन्होंने कहा—प्रभो! मुझसे एक घोर अपराध हो गया हैं। प्रभु ने कहा—भक्त प्रवर—तुम्हारे कल्याण हेतु मैंने ही यह कौतुक रचा था। देखो—वह अंगूठी तो मेरी अँगुली में ही है। अब श्री हनुमान जी का सब गर्व सर्वथा के लिए नष्ट हो गया।

भीम सेन का मान भंग—

एक बार हनुमान जी मार्ग में अपनी पूँछ फैला कर बैठे थे। भीम उसी मार्ग से जा रहे थे। उन्होंने हनुमान जी से मार्ग से अपनी पूँछ हटा लेने को कहा। भीम सेन पूँछ को टस से मस भी न कर सके। अन्त में हनुमान और भीम में आपसी परिचय के बाद मित्रता हो गई। इसी समय हनुमान ने भीम को बचन दिया था कि महाभारत युद्ध में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। अपनी प्रतिज्ञानुसार हनुमान जी ने अर्जुन के रथ के झण्डे के ऊपर बैठकर अर्जुन के रथ को इतना बोझिल कर दिया था कि कर्ण के बाण का रथ पर असर नहीं होता था।

गरुड़, सुदर्शन चक्र और रानियों का गर्व भङ्गः—

एक बार श्रीकृष्ण ने गरुड़ को कुबेर के सरोवर से कमल लाने का आदेश दिया। गरुड़ को अपनो तीव्र गति का बड़ा अभिमान था। वह तीव्र गति से गन्धमादन कमल लाने के लिये पहुंचे। पुष्प चयन करने लगे। हनुमान जी पुष्प वाटिका की रखवाली कर रहे थे। हनूमान जी गरुड़ से बोले—तुम किसके लिये यह फूल ले जा रहे हो। गरुड़ ने उत्तर दिया, हम श्रीकृष्ण के लिए ये पुष्प ले जा रहे हैं। भगवान के लिए अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती। हनुमान जी क्रुद्ध होकर गरुड़ को अपनी काँख में दबा कर द्वारिका

की ओर चल पड़े। सुदर्शन चक्र हनुमान जी की गति को रोकने के लिये उनके सामने आ पहुंचा। हनुमान जी ने उसे अपनी दूसरी काँख में दबा लिया। भगवान कृष्ण ने तो यह सब लीला ही रची थी। श्रीकृष्ण ने रानियों से कहा—देखो; हनुमान क्रुद्ध होकर आ रहे हैं। इस समय यदि उन्हें सीताराम के दर्शन न हुए तो वह द्वारिका को समुद्र में डुबा देंगे। अतः मैं राम बन गया हूं तुम सीता का रूप धारण कर लो। पर जानकी जी का रूप कोई भी न बना सकी। अन्त में उन्होंने श्री राधा जी को स्मरण किया और वे श्री सीताजी का स्वरूप बन गयीं। हनुमान जी उन्हें सीता राम समझ कर उनके चरण में गिर पड़े। इस समय भी हनुमान जी गरुड़ और सुदर्शन चक्र को अपनी काँख में दबाये हुए थे। भगवान श्रीकृष्ण ने (राम वेश में) उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा—'वत्स' तुम्हारी काँखों में यह क्या है ? हनुमान जी ने उत्तर दिया—कुछ नहीं महात्मन ? ये मेरे राम भजन में बाधा डाल रहे थे इस कारण इन्हें पकड़ लिया। यदि आपको पुष्पों की आवश्यकता ही थी तो मुझे क्यों नहीं स्मरण किया ? भगवान ने कहा—बहुत ठीक ! अब कृपा कर इन्हें छोड़ दो। हनुमान जी ने उन्हें तुरन्त छोड़ दिया। हनुमान जी 'जयराम' कह कर गन्ध मादन की ओर चले गये। गरुड़ को अपने गति का तथा सुदर्शन को शक्ति का गर्व एकदम चूर्ण हो गया।

कृष्ण का इन्द्र आदि देवताओं के साथ युद्ध—

खाण्डव बन की रक्षा के लिए हनुमान पहरा दे रहे थे। लक्ष्मण उसी बन में फूल तोड़ने गये। हनुमान बाग की रखवाली कर रहे थे। उन्होंने लक्ष्मण को फूल तोड़ने से मना किया। न मानने पर हनुमान ने लक्ष्मण को वहाँ से भगा दिया। लक्ष्मण ने इस घटना का बृतान्त राम से कहा। इस पर राम ने क्रोधित होकर इन्द्र और हनुमान को युद्ध में परास्त कर दिया। तब से हनुमान राम भक्त सेवक हो गए।

गरुड़ हनुमान युद्ध :—

कृष्ण ने किसी अवसर पर गरुड़ को हिमालय से एक नील कमल फूल ले आने का आदेश दिया। गरुड़ हिमालय को सिधारे

वहां उनका हनुमान बाग की रखवाली कर रहे थे। हनुमान ने गरुड़ को फूल तोड़ने से मना किया पर गरुड़ ने उनके विरोध पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया और दोनों महारथियों में युद्ध आरम्भ हो गया। हनुमान ने गरुड़ को नील कमल सहित काँख में दबाकर द्वारिका के लिये प्रस्थान कर दिये। सुदर्शन ने हनुमान को महल के द्वार पर रोकने का प्रयास करने पर वे असमथ रहे और अपनी हार स्वीकार कर ली। इतने में कृष्ण ने यह देखा कि हनुमान भीतर प्रवेश कर रहे हैं, राम का रूप धारण कर लिया तथा सत्यभामा को सीता का रूप धारण करने को कहा। सत्यभामा सीता का रूप बनाने में असमर्थ रही, अतः रुक्मिणी को सीता का भाग लेना पड़ा और सत्यभामा की सखियाँ उनकी हँसी उड़ाने लगी। हनुमान ने 'राम' के चरणों पर नील कमल रखकर गरुड़ को अपने काँख से निकलने दिया।

हनुमान का पराक्रम—पउम चरियं जैन साहित्य में हनुमान के पराक्रम के विषय में अनेक प्रकार से वर्णन है। पउम चरियं (पर्व १६) के अनुसार हनुमान ने रावण के साथ बरुण के बिरुद्ध युद्ध करते हुए बरुण के पुत्रों को कैद कर लिया था। इस रचना के अन्य स्थल पर (पर्व ५०) इसका वर्णन किया गया है कि किस प्रकार हनुमान ने अपने दादा महेन्द्र को सेना सहित परास्त किया था।

शिवार्जुन युद्ध :—

बाणासुर की राजधानी के लिए शिव और अर्जुन में युद्ध हुआ अर्जुन का किरात भेष धारण करके धनुष बाण ले नाना भेषधारी भूतों, से युद्ध हुआ। फिर अर्जुन के साथ शिव का विवाद और घोर युद्ध आरम्भ हो गया। परन्तु अर्जुन युद्ध में बिलकुल विफल रहे। पराजित होकर अर्जुन भगवान शिव के चरणों पर गिरकर उनकी पार्थिव मूर्ति का पूजन करने लगे और अपनी चढ़ाई हुई माला को किरात के सिर पर देखकर और इन्हें पहचान कर अर्जुन का इनके चरणों में पड़ना। इस पर भगवान शिव प्रसन्न होकर उन्हें पाशुपतास्त्र देने के लिये कहना।

अर्जुन का नाम कपिध्वज क्यों पड़ा ?

एक बार विष्णु दास ने पूछा कि अर्जुन का नाम कपिध्वज क्यों पड़ा ? द्वापर के अन्त में किसी दिन रामेश्वर के पास अर्जुन की हनुमान से भेंट होने पर अर्जुन ने कहा सर सेतु क्यों नहीं बना ? हनुमान ने कहा—मुझ जसे कपियों के भार से सेतु समुद्र में डूब जाता इस कारण सर सेतु नहीं बन सका। अर्जुन ने कहा-यदि वह आपके भार से डूब जाय तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। इस पर हनुमान ने कहा यदि मेरे अँगूठे के भार से सेतु नष्ट नहीं हुआ तो मैं आपकी ध्वजा पर बैठकर आपकी सहायता करूँगा। इस पर अर्जुन ने अपने शरीं से सेतु बना दिया। हनुमान ने अपने अँगूठे से सेतु को समुद्र में मग्न कर दिया। अतः इससे शर्मिन्दा होकर अर्जुन चिता में जलने को तैयार होने लगे। उसी समय कृष्ण वटु रूप में वहाँ पहुंच गये। कृष्ण ने दोनों अर्जुन और हनुमान से कहा—मेरे सामने आप दोनों अपना-अपना सामर्थ दिखाइये। कृष्ण ने अपना चक्र सेतु के नीचे रख दिया जिससे हनुमान असमर्थ हो कुछ भी न कर पाये। वे समझ गये कि इसमें श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण ने बटु रूप त्याग कर अपना वास्तविक कृष्ण रूप धारण कर लिया और हनूमान का आलिगन किया। तब भगवान ने सेतु भी जल में डुबाकर अर्जुन का गर्व खर्व कर दिया। तब से हनुमान अर्जुन की ध्वजा पर बिराजमान हैं।

नारायण का शिव से युद्ध—

महाभारत शांति पर्व ३४२।११०-११६ के पाठ में कथा वर्णित है कि एक बार नारायण और शिव में किसी विषय को लेकर वाद विवाद शुरू हो गया। शिव की पराजय और नारायण की विजय हुई।

ध्रुवः—

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। सुरुचि और सुनीति। दोनों रानियों के एक-एक पुत्र थे। किन्तु राजा छोटी रानी सुरुचि को अधिक प्यार करते थे। बड़ी रानी सुनीति के पुत्र ध्रुव एक दिन पिता की गोद में जा बैठे। सुरुचि से यह नहीं देखा गया।

उसने ध्रुव को राजा की गोद से नीचे उतार दिया। रोते हुए ध्रुव अपनी माता के पास गये। माता ने कहा—भगवान की गोद से बढ़कर कोई गोद नहीं है। ध्रुव माता के सदुपदेश से घर छोड़ कर भगवान का भजन करने निकल गये। मार्ग में उन्हें नारद जी मिल गये। नारद जी ने मंत्र दिया। मथुरा के पास यमुना के किनारे ध्रुव ने छः माह कठोर तपस्या की। भगवन ने तपस्या से प्रसन्न होकर अविचल पद पाने का वरदान दिया। घर लौटने पर राजा ने ध्रुव को युवराज बनाया। अन्त तक राज्य करने के बाद भगवान के भेजे हुए बिमान में बैठकर सशरीर ध्रुवलोक को चले गये।

गजेन्द्र मोक्ष—

एक सरोवर में मतवाला हाथी हथिनियों के साथ जल विहार कर रहा था। इतने में एक ग्राह ने आकर उसका पैर पकड़ लिया। हाथी अथक जोर लगाने पर भी ग्राह से छुटकारा नहीं पा सका। निराश होकर गज ने भगवान को पुकारा। उसकी करुण पुकार को सुनकर भगवान नंगे पाँव उसकी रक्षा के लिए आ गये। अपने चक्र से भगवान ने ग्राह का बध करके भक्त की रक्षा की। गजराज भगवान के धाम चला गया और भगवान द्वारा मारे जाने के कारण ग्राह को भी सद्‌गति प्राप्त हुई।

महर्षि भृगु द्वारा बिष्णु की सब देवों में श्रेष्ठता की परीक्षा—

एक बार सब ऋषियों में यह विवाद छिड़ गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में सर्वश्रेष्ठ कौन है? महर्षि भृगु इनकी परीक्षा लेने गये। पहले वे ब्रह्मा जी के पास गये और बिना प्रणाम किये वहाँ खड़े हो गए। ब्रह्मा जी को यद्यपि क्रोध आया पर वह शान्त रह गए। वहाँ से भृगु जी कैलाश शंकर जी के पास पहुंचे। शंकर जी उनका आदर सत्कार करने आगे बढ़े पर भृगु जी ने उन्हें अपवित्र मानकर अपने को छूने से मना किया। शंकर जी ने भृगु का वध करने हेतु जब अपना त्रिशूल उठाया तो पार्वती जी ने ऐसा करने से मना किया। तत्पश्चात भृगुजी वहाँ से क्षीर सागर विष्णु के पास गए। शेषशैया पर सोये हुए भगवान की छाती में एक

लात मारा। भगवान विष्णु चकित होकर उठे और सामने भृगु जी को देखकर उनका चरण दबाते हुए बोले—भगवन्! मेरे कठोर वक्ष पर पाँव से प्रहार करने के कारण कष्ट हुआ होगा, मुझे क्षमा कर। आज से आपके चरण का चिह्न सदा मेरे वक्षस्थल पर विराजित रहेगा। महर्षि भृगु ने लौट कर सब बातें सब ऋषियों को बता दी। भगवान विष्णु में सब ऋषियों की श्रद्धा दृढ़ हो गई।

शिव-मोह—

समुद्र मंथन के समय जब क्षीर सागर से अमृत निकला, तब दैत्यों ने उसे छीन लिया। देवताओं को निराश देखकर भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके दैत्यों को मोहित करके उनसे अमृत कलश ले लिया और देवताओं को अमृत पिलाया। जब शंकर जी को यह समाचार मिला, तब वे पार्वती जी और गणों के साथ बैकुण्ठ गये और उन्होंने भगवान से उस मोहिनी रूप को दिखलाने को प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना से भगवान मोहिनीरूप में प्रकट हो गये। शंकर जी उस पर मोहित होकर मोहिनी के पीछे दौड़ते फिरे। अन्त में जब आवेश समाप्त हो गया, तब उन्हें अपनी दशा पर विस्मय हुआ। भगवान फिर अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए और उन्होंने शंकर जी को आश्वस्त किया।

देवर्षि नारद का गृहस्थ :—

एक बार देवर्षि नारद जी ने भगवान की माया देखने की इच्छा प्रकट की। भगवान ने उन्हें एक सरोवर में स्नान करने को कहा। स्नान करके जल से निकलने पर नारद जी अपने आपको भूल गये। वे अपने को साधारण मनुष्य मानने लगे। उन्होंने विवाह कर लिया। उनकी पत्नी से उन्हें साठ पुत्र और बारह पुत्रियाँ हुईं। घर में उन्हें बहुत कष्ट भोगने पड़े। उन कष्टों से ऊबकर वे वन में आये और उसी सरोवर में स्नान करने प्रविष्ट हुए। स्नान करके जल से निकलने पर उन्होंने देखा कि भगवान किनारे खड़े मुस्करा रहे हैं। भगवान की माया का यह प्रभाव देखकर नारद जी भगवान के चरणों पर गिर पड़े।

जल पर शिला तैरना—

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम जब वानरी सेना के साथ लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र तट पर पहुंचे, तब समुद्र से यह बात पूछने का निश्चय किया कि सेना कैसे समुद्र पार करे ? समुद्र श्रीराम के क्रोधित होने पर देवरूप में प्रकट हुआ और उनसे उपाय बताया। नल और नील नाम के दोनां सगे भाई, जो श्रीराम की सेना के मुख्य नायकों में थे, समुद्र पर पुल बनाने लगे। बचपन में ऋषियों ने उन्हें शाप दिया था कि उनके द्वारा फेंके गए पत्थर पानी में नहीं डूबेंगे। अन्य वानर बड़े-बड़े शिला खण्ड ला लाकर नल-नील को देते थे। एक शिला पर 'रा' और एक पर 'म' लिखकर उन्हें परस्पर मिलाकर नल-नील समुद्र पर रख देते थे। ऋषियों के शाप तथा राम नाम के प्रभाव से शिला पानी पर तैरतीं रहती थीं। इस प्रकार लंका तक समुद्र पर पुल बन गया। उस पुल पर से समुद्र पार करके श्रीराम सेना के साथ लंका पहुंचे।

द्रौपदी की लज्जा-रक्षा—

दुर्योधन के कपट-जुए में युधिष्ठिर अपना सारा राज्य, धन, अपने आपको, भाइयों को और अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगा कर हार गये। दुर्योधन की आज्ञा से उसका छोटा भाई दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़ कर घसीटता हुआ उन्हें सभा में ले आया। दुर्योधन ने द्रौपदी को नंगी कर देने के आज्ञा दी। भीष्म, द्रोण आदि सब सिर झुकाये बैठे थे। द्रौपदो ने चारो ओर देखा; पर जब कोई सहायक उसे दिखाई नहीं पड़ा, तब व्याकुल होकर उसने भगवान श्रीकृष्ण को पुकारा। भगवान ने द्रौपदी की पुकार सुन ली। दुःशासन की भुजाओं में दस हजार हाँथियों का बल था; किन्तु द्रौपदी की साड़ी तो भगवान के प्रभाव से अनन्त हो गयी थी। साड़ी खींचते-खींचते दुःशासन थक गया, वस्त्रों का अम्बार लग गया, द्रौपदी के शरीर से थोड़ा भी वस्त्र हटा नहीं, बढ़ता ही गया।

सुदामा—

जब श्रीकृष्ण उज्जैन में संदीपन मुनि के यहाँ अध्ययन करने

गये, तब सुदामा नाम के ब्राह्मण कुमार भी वहीं विद्याध्ययन करते थे। श्रीकृष्ण की उनसे मित्रता हो गयी थी। पीछे गुरुकुल से लौट कर सुदामा गृहस्थ बने। वे अति कंगाल और संतोषो थे। निरन्तर उपवास से दुःखी होकर उनकी पत्नी बार-बार आग्रह करती थीं कि एक बार अपने मित्र श्रीकृष्ण चन्द्र के पास द्वारिका जाँय। पत्नी के आग्रह के कारण अपने मित्र को देने के लिए चार मुट्ठी चिउड़ा एक पुराने कपड़े में बाँधकर सुदामा द्वारिका को चल पड़े। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण को जैसे ही पता लगा कि सुदामा आए हैं, भगवान उनसे मिलने दौड़ पड़े। सुदामा को श्रीकृष्ण ने गले लगाया; अपने भवन में उन्हें ले आकर उनके चरण धोये, उनका स्वागत सत्कार किया। श्रीकृष्ण ने अन्त में पूछा—'आप मेरे लिए क्या उपहार लाये हैं? संकोच के मारे सुदामा कुछ कह नहीं सके। उन्हें गठरी छिपाते देख श्री कृष्ण ने कहा—यह क्या है? ऐसा कहकर उसे खींच लिया। पुराना कपड़ा फट गया। चिउड़े बिखर गए। बड़े प्रेम से उन्हें समेट कर त्रिलोकी नाथ ने एक मुट्ठी खा लिया; जब दूसरी मुट्ठी भरी, तब रुक्मिणी जी ने प्रभु का हाथ पकड़ लिया। द्वारिका से जब श्री सुदामा जी बिदा हुए तब प्रत्यक्ष उन्हें कुछ नहीं मिला था। लेकिन वे श्रीकृष्ण के प्रेम में विभोर थे। अपने नगर में पहुंचने पर पता लगा कि श्याम सुन्दर ने विश्वकर्मा को आज्ञा देकर उनकी नगरी को द्वारिका के समान ऐश्वर्यमयी बनवा दिया है, सुदामा के घर में इतना वैभव श्री कृष्ण ने दे दिया था कि वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ था।

गर्भ में परीक्षित की रक्षा—

अश्वत्थामा ने पाण्डवों के कुल का ही नाश कर देने का संकल्प करके ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र से पाण्डवों की रक्षा कर दी; किन्तु वह अमोघ अस्त्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने चला। उत्तरा व्याकुल होकर श्री कृष्ण के शरण में आयी। अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करके श्रीकृष्ण उत्तरा के गर्भ में प्रविष्ट हो गए। चतुर्भुज रूप से वे दस महीने तक उत्तरा के गर्भ में स्थित बालक की ब्रह्मास्त्र के तेज से रक्षा

करते रहे। उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न वही बालक परीक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ।

व्याध का उद्धार—

परमधाम-गमन के समय भगवान श्रीकृष्ण प्रभास क्षेत्र में एकान्त में एक पीपल के वृक्ष के नीचे एक चरण ऊपर किए बैठे थे। उनके चरण के लाल-लाल तलवे को देखकर एक व्याध ने समझा कि मृग है। उसने भगवान के चरण में बाण मार दिया; किन्तु पास आने पर श्रीकृष्ण चन्द्र को देखकर भय के मारे उनके चरणों पर गिर पड़ा। भगवान ने उसका अपराध क्षमा तो कर ही दिया, उसे सशरीर विमान में बैठा कर स्वर्ग भेज दिया।

अजामिल—

अजामिल ब्राह्मण था और पहले सदाचारी, भगवद्भक्त तथा माता-पिता का अनन्य सेवक था। किन्तु एक दिन बन से फल-कुश आदि लेकर लौटते समय उसने एक शूद्र को एक व्यभिचारिणी स्त्री के साथ निर्लज्ज हास-परिहास करते देखा। क्षण भर के इस कुसंग से उसकी वासनाएं जाग उठीं। उसी स्त्री को उसने रख लिया और नाना प्रकार के अनुचित कर्मों से उसको ही संतुष्ट करता रहा। उस स्त्री से अजामिल के कई पुत्र हुए। छोटे पुत्र का नाम उसने नारायण रक्खा था। मृत्यु के समय जब अजामिल को लेने दूत आये और बलपूर्वक उसके प्राण देह से निकालने लगे, तब व्याकुल होकर उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। पुत्र के बहाने मरते समय उसके मुख से 'नारायण' नाम निकला, इसलिए भगवान के पार्षद वहाँ तुरन्त आ पहुंचे और उन्होंने अजामिल को यम दूतों से मुक्त करा दिया। भगवान की कृपा से अजामिल को कुछ और आयु मिल गयी। वह घर छोडकर हरद्वार चला गया और वहाँ भजन करने लगा। अन्त में मरणोपरान्त भगवान के दिव्य धाम चला गया।

गणिका का उद्धार—

एक वेश्या ने तोता पाल रखा था। वह तोते को 'सीताराम' पढ़ने को कहा करती थी। एक दिन वह तोते को 'सीताराम-

'सीताराम' पढ़ा रही थी कि उसकी मृत्यु हो गई। भगवन्नाम लेते हुए मरने के कारण भगवान के पार्षद उसे बैंकुण्ठ ले गए।

सत्येन न पन्था:—

राजा हरिश्चन्द्र की १०० सहपत्नियाँ थीं पर एक से भी पुत्र न हुआ। एक बार उनके यहाँ दो विद्वान यथा पर्वत और नारद आये और उनसे वरूण देव की उपासना करने को कहा। वरूण ने वरदान दिया कि पुत्र होगा पर मैं उत्पन्न पुत्र को वापस ले लूँगा। राजा पुत्र देने में हीलाहवाली करने लगे। फिर वरुण ने कहा कोई भी बिना दबाव के अपना पुत्र दे दे तो स्वीकार कर लूँगा। तब अजीगर्त ब्राह्मण ने अपने तीन पुत्रों में से शुन: शेष की बलि चढ़ाने के लिए सब देवों से प्रार्थना की पर निराश होकर लौटा। उसके पिता आजीगर्त सबके इनकार करने पर १० गौयें लेकर पुत्र की बलि करने पर तैयार हो गया। इसी बीच वहाँ विश्वामित्र आ पहुंचे। बालक विश्वामित्र के यहाँ श्रेष्ठ पुत्र रूप में रहने लगा। पिता के प्रलोभन देने पर भी पिता के साथ नहीं गया। हरिश्चन्द्र को बड़ा पाश्चाताप हुआ। हरिश्चन्द ने सत्य व्रत धारण कर लिया। सत्यमेव जायते नानृतम।

धर्म व्याध—

कौशिक मुनि ने एक बार एक बगुले को जिसने उनके ऊपर बीट कर दिया था अपने क्रोध से भस्म कर दिया। मुनि एक बार एक ब्राह्मणी के यहाँ भिक्षा के लिए गए। उसका पति उसी समय बाहर से आया और आने पर उसकी पत्नी आते ही पति की सेवा में लग गई और आगन्तुक मुनि पर ध्यान नहीं दिया। मुनि इस पर क्रुद्ध हुए। इस पर उसने कहा—आप धर्म नहीं जानते। आप मिथिला में धर्म व्याध के यहाँ जाइए और धर्म सीखिए।

जाजालि और तुलाधार—

जाजालि अति उदार संतोषी मुनि थे। उनके जटाजूट में गौरैये पक्षी ने एक अण्डा दे दिया। वहीं वह बड़ा हुआ। फिर भी जाजालि धर्म की महिमा को नहीं समझ पाये। आकाश वाणी हुई कि बाराणसी में जाकर तुलाधार नामक व्यापारी से धर्म

सोखो। तुलाधार ने कहा हमको सब मालूम है कि गौरेया पक्षी ने आपके जटाजूट में अण्डे दिये हैं। जाजालि को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि तुलाधार को यह बात कैसे मालूम हुई। उसने कहा—ब्रह्म को जानना ही सबसे उत्तम धर्म है। धर्म क्या है जानने का प्रयत्न करें। जाजालि का गर्व खर्ब हो गया।

एक बार नारद से ऋषियों ने पूछा—आप उदास क्यों रहते हैं ? नारद ने कहा—मैं सारे विश्व में घूम आया पर मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिली। यमुना के किनारे हमने एक स्त्री को उदास खिन्न मना देखा। उसके पास दो बृद्ध पुरुष बैठे हुए थे। भक्तिरूपी स्त्री ने कहा—ये दोनों पुरुष मेरे पुत्र ज्ञान और वैराग्य हैं। भक्तिरूपी माता तो बृन्द्रावन में तरुण हो गई पर पुत्र तरुण न हो सके। नारद बहुत चेष्टा करने पर भी अपने प्रताप से बृद्धों को युवा न बना सके पर हरि भक्ति ने हरि कथा सुनने से उन्हें युवा बना दिया। नारद ने आकाशवाणी सुनी कि हरि कथा सुनो। सतकर्म करो। अतः सनकादिकों ने उन्हें हरि कथा सुनाई। साथ ही साथ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की कथा भी उन्हें सुनाई और नारद चित्त शुद्ध हो गए। हरि कथा सुनने से नारद को शान्ति मिली और वे दोनों पुरुष युवा हो गए।

राजा परीक्षित ने पापी कलियुग क्यों रहने दिया ?

इसलिए कि कलियुग में हरिकीर्तन से मुक्ति मिलती है।

भगवान के नाम पर सात पुत्र प्राप्ति—

एक बार नारद ने अपने किसी भक्त को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया पर पुत्र न प्राप्त हो सका। एक सूरदास ने उसे पुत्र होने का आशीर्वाद दिया और उसे पुत्र प्राप्ति हुई। उसे सात पुत्र मिले। इस पर नारद व्यथित होकर अपना परिवाद लेकर विष्णु के पास गये। भगवान ने कहा—नारद ! पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दें, फिर बताऊंगा कि तुम्हारे आशीर्वाद से याचक को पुत्र क्यों नहीं हुआ। और सूरदास के कहने या आशीर्वाद से उसे सात पुत्र क्यों प्राप्त हुए। विष्णु ने कहा ! मुझे ९९९ सिर बलिदान देने के लिए मिल गये पर १००० बलिदान देने के लिए १०००

वाँ अंतिम सिर बलिदान के लिये नहीं मिल रहा है। अन्त में सूरदास ब्राह्मण अपना सिर देने को तैयार हो गया। उसकी भक्ति सच्ची त्यागमय थी। इसलिए भगवान की कृपा से उसका आशीर्वाद यथार्थ सिद्ध हुआ।

सत्संग की महिमा—

विश्वामित्र को अपनी १००० वर्ष की कठिन तपस्या पर गर्व हो गया और उन्होंने अपनी कठोर तपस्या का फल जाकर वशिष्ठ से कहा। इसके विपरीत वशिष्ठजी ने अपने आधे घण्टे सत्संग का बहुत अधिक महत्व बताया। इससे विश्वामित्र कुछ खिन्न हुये। वशिष्ठ जी ने कहा कि तपस्या और सत्संग दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है? इसका निर्णय होना चाहिये। ये दोनों महर्षि अपने प्रश्न को लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास गये। और इस विवाद का निर्णय करने को कहा। इन तीनों विभूवों ने अपनी-अपनी असमर्थता प्रकट की। फिर विष्णु ने इसका समाधान और निर्णय करने के लिये शेष नाग से कहा। शेष ने कहा हम पृथ्वी के बोझ से दबे हुये हैं। अतः तुम में से कोई भी इस पृथ्वी को हमारे सिर से हटा दे तभी हम निर्णय कर सकते हैं। विश्वामित्र की तपस्या पृथ्वी के बोझ को न हटा सकी। लेकिन आधे घण्टे के सत्संग के प्रभाव से वशिष्ठ के अनुरोध पर पृथ्वी अपने आप ही शेषनाग के सिर से हट गयी। सत्संग महिमा की विजय हुई।

भगवान कहाँ रहते, क्या करते और क्या खाते हैं—

१–भगवान माता-पिता की सेवा करनेवाले के घर में रहते हैं।
२–पातिव्रता के घर में रहते हैं।
३–सत्यवादी के घर में रहते हैं।
४–जितेन्द्रिय के घर में रहते हैं।
५–भगवान अहंकार खाते हैं।
६–भगवान रहते हैं भक्तों के हृदय में।
७–भगवान कब हँसते हैं? मृत्युशील को भगवान मारना चाहते हैं और दूसरे बचाता, तब हँसते हैं।

८-भगवान कब रोते हैं ? मनुष्य जब दोष निकालता है।

९-भगवान क्या करते हैं ? धनो से निर्धन और निर्धन से धनी।

द्रौपदी का चीर हरण—

एक बार नदी में स्नान करते समय एक साधु की लंगोटी बह गई थी। द्रौपदी ने अपनी साड़ी को फाड़ कर उसका कुछ हिस्सा नदी में नहा रहे साधु को देकर नदी के बाहर निकाला। उसी साधु के आशीर्वाद ने द्रौपदी के चीर हरण के समय उसकी साड़ी दुशासन के खींचने और दौपदी को नंगा करन के घोर परिश्रम को निरर्थक कर दिया क्योंकि जितना ही दुशासन साड़ी को खींचता जाता था साड़ी बढ़ती जाती थी।

पाय अनुशासन दुशासन के कोप धायो,
द्रुपद सुता को चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करण, द्रोण बैठे व्रतधारी जहाँ,
कामिनी को और काहू नेक न निहारो है।
सुन के पुकार द्वारिका से यदु नाथ आए,
बाढ़त दुकूल खंचे भुजबल हारो है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।
कि नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है।

दारे कनी में हैं अच्छे नहीं आने वाले।
राहे उल्फा में हैं बस दिल लगाने वाले।
आके दुनियाँ में जो लेते नहीं भगवान का नाम।
खाली हाथों चले जाते हैं सब आने वाले।

इस दुख में पावोगी सुख की धुंधली एक निशानी।
आहों के धुंधले शोलों में तुम्हें मिलेगा पानी।
रो रो देते मूर्ख यहाँ पर हँस हँस देते ज्ञानी।
अरी दिवानी सोच समझकर सुनना करूण कहानी॥
यहीं मिलेगी आग यहीं पर तुम्हें मिलेगा पानी।
अरे मिलेगी स्वर्ग नरक की तुमको यहीं निशानी।

इतना रखना याद यदपि है बीती बात पुरानी।
बह जाते हैं मूर्ख यहाँ और रह जाते हैं ज्ञानी।।

जग में आकर इधर उधर देखा,
तूँ ही आया नजर जिधर देखा।
कुछ न इधर है न उधर तूँ है,
जिस तरफ नजर कीजिये नजर तूँ है।

समाया है जब से तूँ नजरों में मेरी,
जिधर देखता हूं उधर तूँ ही, तूँ है।।
नशेमन न जलता निशानी तो रहती,
हमारा था क्या ठीक रहते न रहते।

लहू था तमन्ना के आँसू नहीं थे,
बहाये न जाते तो हरगिज न बहते।
बताते हैं आँसू कि अब दिल नहीं है,
जो पानी न होता तो दरिया न बहते।

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना,
तुमी सो गये दास्ताँ कहते - कहते।।

जिधर देखता हूं जहाँ देखता हूं।
खुदाई का जलवा वहाँ देखता हूं।
न तन देखता हूं न जाँ देखता हूं।
तुमी को यहाँ औ वहाँ देखता हूं।।

चाको कहाँ तूँ खोजे बन्दे मैं तो तेरे पास।
नहीं आँगन में नहीं पवन में नहीं जल थल आकाश में।
नहिं मक्का में नहिं मदीना में नहिं काशी कैलास में।
नहिं मंदिर में नहिं मस्जिद में मैं आतम विश्वास में।

मैं तो सब स्वासों के स्वांस।।
मानव की पदवी पाकर कुछ तो, कुछ कीर्ति कमा लो।
नर जन्म बृथा क्यों खोता, ओ मानव महिमा वालो।
कितने सुयोग से मिलती, मानव की कर्मठ काया।
रे नीच! नराधम तूने इसका क्या मूल्य चुकाया।।

कब से दरकाते हो तुम माया की यह प्याली।
भर न सके तुम जन्म-जन्म भर यह अंजलि है खाली।
देख चुकी मैं विश्व तुम्हारा रे निर्धन यदुवंशी।
बेचो अपना मोर मुकुट तुम बेचो अपना बंशी।।
कर अम्बर रोता है, नीचे धरती अकुलानी।
यह मुकुट बेच दो राजा यह महल बेच दो रानी।

भाई रे ई मुरदन के गाँव।
पीर मरे पैगम्बर मरि गे मरि गे जिन्दा जोगी।
राजा मरिगे परजा मरिगे मरि गे बैद और रोगी।
चन्दौ मरिहैं सुरजो मरिहैं मरिहैं धरनि अकासा।
चौदह भुवन चौधरी मरिगे एनहूं के का आसा।
नवौं मरिहौं दसवौं मरिहौं मरिहैं सहस अठासी।
तैंतीस कोटि देवता मरि गये पड़ि गये काल के फांसी।
नाम अनाम जगत में साँचा दूजा सत नहिं कोई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो भटक मरै न कोई।

कृष्ण की प्रतिज्ञा—

भक्त प्रति पालक, दैत्य दल घालक,
लज्जा है तिहारे हाथ आज बीर पारथ को।
गहो दृढ़ डोरी नाथ, माखन की न चोरी यहाँ,
रखनी है प्रतिज्ञा मोहि आर्य भव्य भारत की।

पालो निज बैन राजिव, नैन चतुराई से,
सुन लो पै हाय एक बिनती ह्रास आरत की।
अपनी प्रतिज्ञा छोड़ धरोगे मुरारी शस्त्र,
यही है प्रतिज्ञा भीष्म बाल ब्रह्मचारी की।

सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति है। निमित्त कारण परमात्मा है। जीवात्मा व्यक्त जगत का उपभोक्ता है। प्रकृति मूल रूप में अव्यक्त, अनादि और आदर है। उसके सत्व, रज: और तम: तीन गुन है। परमात्मा की प्रेरणा से इनकी साम्यावस्था भंग हो जाती है, उसी से सृष्टि का व्यक्त रूप होता है।

जब तक आराध्य के स्वरूप आदि का ज्ञान न हो जाये तब

तक भक्ति का आश्रय ही क्या होगा। भक्ति सुदृढ़ स्नेह का नाम है जो कि आराध्य के उनके महात्म्य को जानकर किया जाता है। भक्त को ईश्वर तक पहुंचने में ११ भूमिकाएं पार करनी पड़ती हैं। महत सेव, महापुरुषो की सेवा से हृदय की चंचलता शान्त होने पर धैर्य का उदय होता है।

खातिरे मजबूत दिल तवाना रक्खो,
उम्मीद अच्छी खयाल अच्छा रक्खो।
हो जायगी सब तुम्हारी मुश्किलें आसान,
अकबर अल्लाह पर भरोसा रक्खो।।

प्राण तुम प्रेरक बने और मैं तुम्हारी प्रेरणा हूं।
मैं अकम्पित दीप की लौ और तुम तम के उजाला।
मैं वनू साधक तुम्हारा तुम हमारी साधना हो।
मैं अकथ आराधना से भक्त को भगवान कर लूं।

जेरे गर्दू उम्र अपनी दिन व दिन कटती गई।
जिस कदर बढ़ते गए हम, जिन्दगी घटती गई।।

नर्म युक्तं बचनं हि नास्ति न स्त्रीषुराजन विवाह काले।
प्राणात्यये सर्व घनाप हीर पंचा नृतान्याहुर पात कानि।।
म. भा. शान्ति १८५।३०

शंकराचार्य—
पुण्य और पाप दोनों आदमी को बाँधते हैं,
इसलिए दोनों पाप हैं। जंजीर चाहे लोहे की हो,
चाहे सोने की, दोनों जंजीर ही तो हैं।

क्या कर्म और अकर्म है भूले यही विद्वान भी।
जो जान पापों से छुटो, वह कर्म कहता हूं सभी।।
हे पार्थ! कर्म अकर्म और विकर्म का क्या ज्ञान है।
यह जान लो सब, कर्म की गति गहन और महान है।।

जो कर्म में देखें अकर्म, अकर्म में भी कर्म ही।
है योग-युत ज्ञानी वही, सब कर्म करता है वही।।

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।
गीता—अ. क श्लोक १७

मुझसे परे कुछ भी नहीं संसार का विस्तार है।
जिस भाँति माला में मणी, मुझमें गुथा संसार है।
कहते उसे ही योग जिसमें सर्व दुख वियोग है।
दृढ़ चित्त होकर साधने के योग्य हो यह योग है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत, क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत कवयो वदन्ति। उठो, जागो, श्रेष्ठता को प्राप्त हो, श्रेष्ठता का बोध करो। कवियों ने कहा है ? तीक्ष्ण छुरे की भाँति यह पथ दुर्गम है।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।
गीता १८।६१

ईश्वर हृदय में प्राणियों के बस रहा है नित्य ही।
सब जीव यन्त्रारूढ़ माया से घुमाता है वही।।

१—शत्ताक्षी=१०० नेत्र वाली दुर्गा।
२—शाकम्भरी=क्षुधा मिटाने वाली दुर्गा।

कृष्ण चन्द्रमा के सम्पूर्ण १६ कलाओं ये युक्त थे। तौल में १२ मासे और १६ मासे का भी तौल होता है। १२ मासे में ८ रत्ती फी मासे के हिसाब से १६ रत्ती होता है। १६ मासे में ६ रत्ती के हिसाब से ९६ रत्ती होता है। अतः दोनों में पूर्णता है। यथा राम और कृष्ण दोनों बराबर है।

हैं गुण में दोनों पूरे बराबर न कम हैं रघुबर न कम कन्हैया।

समझा इस मैं में और तुझमें किसी तरह का भेद नहीं।
इस विशाल मैं की व्यापकता में कोई है बिच्छेद नहीं।।
तुझसे भरे हुए इस मैं में हुआ कभी भी भेद नहीं।
सदा ब्रह्म रिपूर्ण एक रस कोई भेदा भेद नहीं।।

बिगड़ता बनता यह संसार, किंतु तूँ चिर नूतन सुकुमार।
मैं तथा तूँ का यह उपचार, सभी कुछ है तेरा विस्तार।।
धन्य तूँ और तेरा व्यापार, परम प्रिय मेरे प्राणाधार।

अभिज्ञ भगवान भक्त—

माया को खोज में आत्मा को खो बैठे, प्रकृति की पूजा में परमात्मा को भूल गए मेरी उपेक्षा कर या अनादर कर जो केवल प्रतिमा की पूजा करता है वह विडम्बना मात्र है।

राम कथा किसने किसको-किसको सुनाई—

१—ब्रह्मा ने काकभुषुण्डि को सुनाई।
२—राम ने भी काकभुषुण्डि को सुनाई।
३—लोमष ऋषि ने काकभुषुण्डि को सुनाई।
४—याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को सुनाई।
५—काकभुषुण्डि ने शिव को सुनाई।
६—अगस्त मुनि ने शिव को सुनाई।
७—शिव ने नारद जी को सुनाई।
८—शिव ने पार्वती को सुनाई।
९—शिव ने काकभुषुण्डि को सुनाई।
१०—नारद ने सनत कुमार को सुनाई।
११—बाल्मीकि ने भरद्वाज को सुनाई।
१२—काकभुषुण्डि ने याज्ञबल्क्य को सुनाई।
१३—राम ने सीता को प्रमोद वन में सुनाई।
१४—सीता ने लक्ष्मण को सुनाई।
१५—लक्ष्मण ने भरत को सुनाई।

मैं ढूढ़ता तुझे था जब कुंज और बन में।
तू ढूढ़ता मुझे था तब दीन के वतन में।।
मैं आह बन किसी की तुझको पुकारता था।
तूँ था मुझे बुलाता संगीत और भजन में।।

कुम्भकर्ण ने विभीषण से पूछा—

१—मूर्ख साधू कौन है? उत्तर-राम, जो सीता को छोड़कर कपट मृग को मारने चले गए।

२—सीधे दाँत का हाथी कौन है ? रावण जो अपनी पत्नी से संतुष्ठ न होकर पर पत्नी को हर ले गया।

३—चालाक स्त्री कौन है ? सूर्पणषा।

४—दुष्ट मनुष्य कौन है ? विभीषण राजद्रोही।

भाष्कर शंकराचार्य के विरोधी थे। भाष्कर जगत को सत्य मानते थे। शंकर ज्ञान को महत्व देते थे। पर भाष्कर ने ज्ञान व कर्म दोनों को महत्व दिया।

राजा भोज के समय वाराणसी में उड़न खटोला यानी वायुयान बनाने की फैक्टरी थी। रावण के पुष्पक विमान में (Mercury) पारा का प्रयोग होता था। पारा (Mercury) से भाष्प उत्पन्न किया जाता था।

कर्ण का धर्म के विपरीत आचरण—

१—द्रौपदी के चीर हरण के समय विरोध न करना।

२—जुवा खेलने के समय कपट करना।

३—दुर्योधन द्वारा भीम को विष देना।

४—लक्षा गृह में सोए हुए पाण्डवों को जला डालने के लिए आग लगाकर मार डालने का षडयंत्र।

५—द्रौपदी को अन्य पति वरण करने की सलाह देना।

६—छल से अभिमन्यु का वध करवाना।

विष्णु जी के सान्निध्य में रहने वाली यही सरस्वती गंगा के साथ कलह करने के कारण और उनसे अभिशप्त होने से भारत में नदी बनकर बहती हैं। इस नदी का सेवन करने वाले गुणी और विद्वान बनते हैं और बैकुण्ठ धाम को जाते हैं।

नमो देव्यं ससस्वते-यह दिव्य मंत्र—

१—नारायण ने बाल्मीकि को सुनाया।

२—भृगु ने बाल्मीकि को सुनाया।

३—शुक्राचार्य ने पुष्कर तीर्थ में बाल्मीकि को सुनाया।

४—मारीचि ने बाल्मीकि को सुनाया।

५—नारायण ने बृहस्पति को सुनाया।

६—नारायण ने जरत्कारू को सुनाया।
७—नारायण ने शृङ्गी ऋषि को सुनाया।
८—नारायण ने शिव को सुनाया।
९—नारायण ने गौतम मुनि को सुनाया।
१०—नारायण ने सूर्य को सुनाया।
११—नारायण ने याज्ञवल्क्य को सुनाया।
१२—नारायण ने भरद्वाज को सुनाया।
१३—नारायण ने शाकटायन को सुनाया।

आश्चर्य-सराहना और भय।

आसक्ति-विषय को बार बार करने और उसमें लिप्त रहना।

ईड़ा-जिसके बिना मन काम न कर सके।

सौन्दर्य-वस्तु व आनन्द।

श्रद्धा-विश्वास।
आकांक्षा-विवेक की अभियाचना।
प्रमाण-यथार्थ ज्ञान पाने का कारण।
प्रमेय-जो प्रमाण के द्वारा जाना जाय।
दृष्टान्त-सर्वसम्मत उदाहरण।
निर्णय-निश्चित ज्ञान।
राग-सुखान्त वस्तु में अनुरक्ति।
वृत्ति-सूत्रों का जिसमें सारांश हो।
पंजिका-जिसमें कठिन पदों का विवरण हो।
कारिका-जिसमें सिद्धान्त का प्रदर्शन मात्र हो।
वितंडा-एक विषय पर निश्चित न रहना, अनिश्चितता।
स्मृति-अतीत वस्तु का ज्ञान।
धारणा-चित्त का अभीष्ट विषय पर लगान।
उपरति-वासनाओं से पराङ्मुख होना।
तितिक्षा-दुख का सहन करना।
शिव-जो शयन करे।
उपासना-मन को किसी एक रूप में स्थिर करना।

शब्दों की व्याख्या—

शोक-आत्मीय जन के वियोग के कारण उत्पन्न दुख को शोक कहते हैं।

स्नेह-अन्तः जनित प्रसन्नता युक्त द्रव भाव।

क्रोध-हिंसाजनित मन में संकल्प का भाव।

तृष्णा-उपरति भोग्य विषयों का चिन्तन करना।

ईच्छा-भूख और प्यास की कामना।

दम्भ-तृष्णा और लोभ।

ईष्या-क्रोध मन में जब देर तक स्थिर हो जाय।

द्वेष-प्रतिकार या बदले की भावना।

अपरिग्रह-मन में ममत्व राग का अभाव न होना।

आत्मा-शरीर में ईश्वर की उपस्थिति या शरीरी ईश्वर।

मृत्यु-स्थूल शरीर जब आत्मा की ओर धावित होता है।

निर्वाण-तीनों शरीर से जीव का सम्बन्ध छूटना या सृष्टि के साथ मिल जाना जिसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं।

सुसुप्ति-इन्द्रिय, मन और बुद्धि की प्रकृति से कोई अलग सत्ता नहीं रह जाती। सब प्रकृति में लीन हो जाती है। केवल कारण शरीर कार्य करता है।

जाग्रत--तीनों स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर जब कार्य रत रहते हैं।

स्वप्न--सूक्ष्म और कारण शरीर जब कार्य रत रहता हैं।

तुरीय--कोई शरीर भी जब कार्य नहीं करता।

मरजीव--जो १०० वर्ष तक जीवित रहे।

अमर--जो अपनी इच्छा से मरते हैं।

अपरिग्रह--मन में ममता राग का भाव न होना।

मति--वर्तमान वस्तु का वर्णन।
प्रज्ञा--भविष्य वस्तु का वर्णन।
करियित्री कवि--प्रतिभाशाली।
भावयिकी कवि--रसास्वादन।
प्रमा--निश्चित ज्ञान।
चेतना--अन्त:करण को अपने व्यापारों का बोध होना।
बुद्धि--जो सत्य असत्य का निर्णय करे।
संस्कृति--बौद्धिक बिकास युक्त सुघरा विचार।
पुरुष--चैतन्य प्राणी।
प्रकृति--अचेतन स्वभाव।
अहंकार--हम तुम का भेदाभेद का बोध होना।
जीव--आत्मा जब बासनामय होकर मननरूप धारण करे।
माया--सांसारिक विषयों सुख दुख का भोगना।
शोक--आत्मीय जन के वियोग के कारण उत्पन्न दुख।
अस्तेय--आत्म निष्ठा।
विरह--प्रणय के अलाप जनित दुख को।
भय--चैतन्य स्तम्भित व विस्मृति मूर्छित।
आद्या--ईश्वर की पराशक्ति।
स्नेह--अन्त:जनित प्रसन्नता युक्त द्रव भाव।
स्वधा--ईश्वर का नि:स्सीम ज्ञान बल।
स्पृहा--बासना द्वारा अपर स्वभाव कर्मण।
जीना--मनुष्य अपने भावों, व्यापारों व व्यवहारों के लिए दिए दूसरों के भावों व्यापारों के लिए दिए दूसरों के भावों व्यापारों इत्यादि के साथ मिलता लड़ता चला आता हो।
विवेक--विद्या और अविद्या को जानना।
अविद्या--माया से मोहित सुख दुख कर्म भोगना।
चित्त--भाव जब अवलम्बन करता है।
संसय--मन का बन्धन-अनिश्चित बुद्धि।
स्वांस--प्राण रुपिणी वायु।
शक्ति--पुरुष प्रकृति का संयोजक।

मन--जो सुख-दुख उत्पन्न करे।
सम्यक ज्ञान-ब्रह्ममय होना-भक्ति प्रेम व श्रद्धा से।
वृत्त-मन में बिचारों का आवेग।
दम्भ-तृष्णा और लोभ।
श्रुति-चित्त का निरन्तर स्थापित करने का अभ्यास।
मनीषी-शास्त्र के विचार करने का ज्ञान।
शम-बासना का शान्त करना।
दम-बाह्य प्रवृत्तियों का रोकना।
प्रपंच-जिस वस्तु को मन जानने की कोशिश करे।
समाधि-मन ध्यान में लग्न हो।
रहस्यवाद-असत को सत करने का प्रयास।
(आधार, कल्पना और भावना)
सृष्टि-निर्गण व सगुण।
अमर्ष-क्रोध व घृणा।
सनक-मन में अचानक परिवर्तन।





पावन व्यक्तित्व की पावन स्मृति

स्व० जगत नारायण सिंह 'विरक्त'

लम्बी किन्तु स्वस्थ देह यष्टि, गौर वर्ण, तेजस्वी त्रिवली लिए उन्नत दैदीप्यमान भाल, स्वाध्याय से परिपूर्ण, संयम और परोपकार के धनी, गुरुगम्भीर वाणी, आजानुबाहु का भ्रम उत्पन्न करने वाली बाहें तथा पहली भेंट में मन पर अपनी योग्यता की विशेष छाप छोड़ने वाले एक अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व से परिपूर्ण नगवाँ (वाराणसी) निवासी अच्छे एवं सराहनीय पुरुष का नाम श्री जगत नारायण सिंह था, जिनकी इह लीला ६ दिसम्बर को प्रातःकाल ग्राम्य देवी चौरामाई का अन्तिम दर्शन करने के पश्चात् समाप्त तो नहीं हाँ सम्पन्न हो गयी। इस युग में जब कि ऊल-जुलूल खान-पान से बच पाना असम्भव भले न हो किन्तु कठिन तो अवश्य है, वे सबसे बड़ी संख्या ९ वें दशक को पार करके १० वें दशक में प्रवेश कर गये थे। इस उम्र में भी वे झुके बिल्कुल नहीं थे। इसका एक मात्र कारण उनका संयमित जीवन ही था। सच पूछिए तो वृद्धावस्था अपने आप में स्वयं एक बीमारी है। पर थोड़ा मोड़ा अस्वस्थ होकर वे बहुत ही शीघ्र चले

गये। चारपाई पर पड़े-पड़े भोगने का दुर्भाग्य विधाता के यहाँ से लेकर आये ही नहीं थे।

मेरा उनका प्रथम साक्षात्कार जहाँ तक मुझे स्मरण है आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व हुआ था। काशी स्थित जगन्नाथ मंदिर (जिसका प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था) के परिसर में एक कवि सम्मेलन था। उसका संयोजन जगत बाबू के ही भतीजे, उनके अनुज स्वर्गीय सकल सिंह के पुत्र स्वर्गीय बच्चा सिंह ने किया था, उसी में श्रोताओं के बीच में बैठे उस प्रभावकारी आर्य पुरुष का दर्शन मैंने किया था। उनकी भावुकता तथा विद्वत्ता की छाप उसी समय मेरे ऊपर पड़ी जिसका कारण यह था कि वे कविता की सराहना सही स्थान पर करते थे। भावुक तो इतने अधिक थे कि करुण रस की रचना सुनकर विह्वल हो जाते थे वहीं से और उसी क्षण से हमारी प्रगाढ़ता बढ़ती ही गयी।

जगत बाबू का पुस्तकालय

नगवां स्थित उनके पुराने आवास में उनका एक पुस्तकों के मामले में बहुत ही धनी व्यक्तिगत पुस्तकालय है। में समझता हूं कि उस पुस्तकालय में कम स कम पांच-छ हजार पुस्तकें होंगी। मैं तो उस पुस्तकालय को देखकर दंग रह गया था। ऐसा लगता था जैसे— जगत बाबू कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि अपने आप में एक संस्था थे। क्योंकि ऐसे पुस्तकालय तो संस्थाओं में ही हुआ करते हैं। पुस्तकों के प्रति कितनी रुचि थी उनमें इसका अनुमान इसी से लगाया जा है कि वे सभी ग्रन्थ बड़े करीने से रखे गये थे। उन्हें धूल-धक्कड़ से बचाना उनकी शौक में था। नगवां गाँव तो ऐसे स्थान पर है जहाँ प्रायः प्रतिवर्ष गंगा जी की बाढ़ आती है। बाढ़ आने के कारण जमीन में सीड़न का आना भी स्वाभाविक है और सीड़न के कारण पुस्तकों में दीमकों का लगना भी स्वाभाविक ही है। किन्तु क्या मजाल कि पुस्तक तो छोड़िए उनके एक भी पन्ने या चिट में दीमक लग जाय। ऐसी देख-भाल रखते थे अपनी पुस्तकों की। असल में दुनिया, दुनियादारी तथा उसके फन्द-फन्द से अलग-

अलग रहने वाले एवं आध्यात्मिक विचारों में खोये हुए जगत बाबू अपने ढंग के यूनिक पीस थे। मैंने उन्हें उ के कक्ष में सदैव पुस्तकों में खोया हुआ पाया। मुझे तो ऐसा लगता है कि नगवां की धरती में कुछ ऐसा गुण है कि वहाँ यदि कोई अध्ययनशील व्यक्ति रह ले तो उसे पुस्तकों का प्रेमी होना ही पड़ेगा। ऐसा इसलिए लिख रहा हूं कि जगत बाबू के पूर्व यहाँ उन्हीं को रुचि के दो विद्वान् और हो गये हैं। उसी कड़ी में जगत बाबू आते हैं। उनमें एक थे दैनिक सन्मार्ग के प्रधान सम्पादक पंडित गंगा शंकर मिश्र जो 'एक किताबी कीड़ा' के नाम से खोज पूर्ण लेख लिखने में पूरे भारत वर्ष में विख्यात थे। दूसरे पंडित कान्ता नाथ पाण्डेय जो दो नामों से कविताएँ लिखते थे-१-राजहंस और २-चोंच। इन दोनों साहित्य पुरुषों की अपनी-अपनी एक धनी लाइब्रेरी थी। उक्त दोनों विद्वानों के लिखे गये ग्रन्थ आज भी हिन्दी साहित्य में धरोहर के रूप में सम्मानित हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस स्वाध्याय प्रिय त्रयी को पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय महापण्डित, महा महोपाध्याय स्वर्गीय शिव कुमार शास्त्री का आशीर्वाद प्राप्त रहा होगा। तभी ये तीनों इतने स्वाध्यायी हुए।

रामायण कथामृत सिन्धु

जगत बाबू का लगभग ५०० पृष्ठों का सद्यः प्रकाशित ग्रन्थ 'रामायण कथामृत सिन्धु' अपने आप में बेजोड़ एवं संग्रहणीय ग्रन्थ है। किसी एक स्थान पर रामकथा का इतना वृहद् संग्रह शायद ही प्राप्त हो सकता है। भारतवर्ष में जो रामकथाएं प्रचलित हैं उनका संग्रह तो है ही इस ग्रन्थ में। उनके अलावा विदेशों में भी जो रामकथाएँ प्रचलित हैं उनका भी रोचक संग्रह मिलेगा। इतना संग्रह करने के बावजूद जगत बाबू अपनी रुचि से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हो पाये थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जिस दिन उनकी इह लीला समाप्त हुई थी, उसी दिन पड़ोसी होने के कारण मैं लगभग घण्टे-डेढ़-घण्टे पश्चात् जब उनके कक्ष में गया तो उनके छोटे से टेबुल पर पड़ा किसी पत्रिका से काटा गया एक कतरन देखा। उस कतरन में छपे हुए लेख का शीर्षक था—

'विदेशों में प्रचलित अद्भुत रामलीलाएं' अब आप ही सोचिए, ५०० पृष्ठों का ग्रन्थ लिखने के बाद भी उनका मन भरा नहीं था अ र संग्रह की प्रक्रिया सतत् चल रही थी। उसे यदि किसी ने इधर-उधर नहीं किया होगा तो मैं समझता हूँ कि अभी भो सजोकर रख लेना चाहिए।

जब यह ग्रन्थ तैयार हो गया तो मैंने उन्हें राय दी कि किसो विद्वान् से उसकी भूमिका लिखवायी जाय। मेरी बात सुनते ही उन्होने उत्तर दिया कि 'कवि जी, मैंने इस ग्रन्थ को आत्म प्रचार के लिए नहीं अपितु आत्म सुख के लिए लिखा है। इसलिए मैं कहीं भी और किसी से भी भूमिका लिखवाने नहीं जाऊंगा। हाँ मरी यह इच्छा अवश्य है कि एक मित्र होने के नाते यदि आप स्वयं 'रामायण कथामृत सिन्धु' की भूमिका लिख सकें तो अच्छा रहेगा। मुझे तो उनके आदेश का पालन करना ही था, सो किया। अपने समय के विख्यात व्यक्ति श्री राम जियावन सिंह के पुत्र के रूप में जन्म लेने वाले जगत बाबू में सामंती स्वाभिमान न होकर एक अलग स्वाभिमान था।

जगत बाबू ने अपना उपनाम विरक्त' रखा था। सचमुच वे एक वानप्रस्थ जीवन निर्लिप्तता के साथ कई वर्षों से जी रहे थे। अतः उक्त उपनाम उचित ही था।

कलकत्ता जैसे महानगर में युवाकाल का अधिकांश जीवन उन्होंने बिताया था। वहाँ वे हरियाणा चैरेटेबुल सोसायटी के कई वर्षों तक सम्मानित प्रबन्धक के रूप में कार्यरत रहे। वहाँ भी ऊँचे-ऊंचे सम्पन्न मारवाड़ियाँ तथा विद्वानों की भीड़ बराबर लगी रहती थी। मैं तो जब भी कलकत्ता जाता था वहीं रहता था। एक बार उन्होंने मेरे गंगा सागर जाने की पूरी व्यवस्था कर डाली थी।

वैसे सच पूछा जाय तो मेरे पास उनके अनेक संस्मरण हैं। यदि उन सबको लिखने बैठूँ तो हो सकता है एक अच्छी सी पुस्तक ही तैयार हो जाय। किन्तु उन्हीं में से एक मजेदार संस्मरण यहाँ लिख रहा हूँ।

हुआ ऐसा कि एक बार मैं कलकत्ता में आयोजित काव सम्मेलन में गया। उस बार मैं उनके यहाँ नहीं ठहर पाया था। सम्मानित औद्योगिक श्री पोद्दार जी के यहाँ ठहरा था। दूसरे दिन मैंने पोद्दार जी से कहा कि आज आप मेरे साथ चलें मैं अपनी तरफ से एक विद्वान् के आपका परिचय कराऊंगा। श्री पोद्दार जी को लेकर जब हरियाणा भवन पहुँच तो मैं उन्हें लेकर जगत बाबू के कक्ष में गया। मैंने देखा कि वे दोनों पहले से ही आपस में परिचित थे। मैं परिचय क्या कराता उलटे पोद्दार जी मुझ और मैं पोद्दार जी को देखकर हंसने लगा।

आज मुझे जगत बाबू पर इस प में लिखना पड़ रहा है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। समय की कैसी विडम्बना है कि मैंने ही भूमिका लिखी और मैं ही उनको स्मृतियाँ लिख रहा हूं।

जगत बाबू अपने पीछे एक भरा पूरा परिवार (पूजा पा० गंगा स्नान तथा व्रत उपवास में विशेष रुचि वाली धमपत्नी. सुपुत्र श्री जितेन्द्र नारायण सिंह (मुन्ना सिंह) तथा पौत्र-पौत्री एव भ्रातृज पौत्र अमरेन्द्र नाथ (पप्पू सिंह) को छोड़ गये हैं।

भगवान उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें तथा परिवार वालों को विछोह का कष्ट सहने की शक्ति दें।

—चन्द्रशेखर मिश्र

